CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

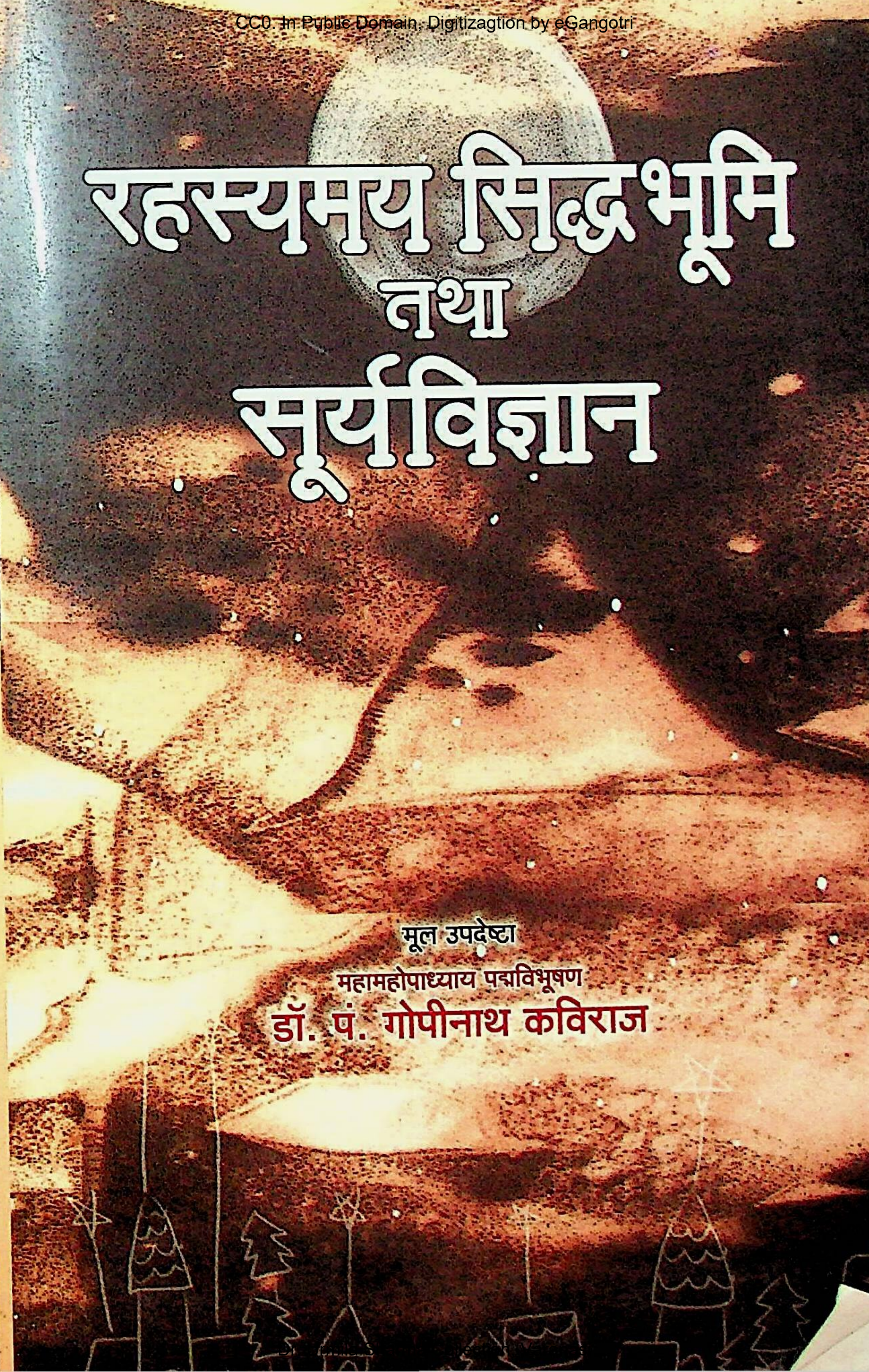

रहस्यमय सिद्धभूमि तथा सूर्यविज्ञान

मूल उपदेष्टा

महामहोपाध्याय पद्मविभूषण
डॉ. पं. गोपीनाथ कविराज

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

5.5 CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहस्यमय सिद्धभूमि तथा सूर्यविज्ञान

मूल उपदेष्टा
महामहोपाध्याय पद्मविभूषण डॉ० पं० गोपीनाथ कविराज

संग्रह एवं अनुवाद
एस०एन० खण्डेलवाल

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

RAHASYAMAYA SIDDHBHUMI TATHĀ SURYAVIJÑĀNA

Collected & Translated by

S.N. Khandelwal

© प्रकाशक

ISBN : 978-81-7124-776-9

प्रथम संस्करण : 2011 ई०

मूल्य : नब्बे रुपये (Rs. 90.00)

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी–221 001

फोन व फैक्स : (0542) 2413741, 2413082

E-mail : vvp@vsnl.com ● sales@vvpbooks.com

Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी–221 001

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवेदन

सूर्यविज्ञान सम्बन्धित इस ग्रन्थ के विषय में सुविज्ञ पाठकगण से यह कहना है कि इस ग्रन्थ को पढ़कर कोई भी त्रिकाल में सूर्यविज्ञान में निष्णात नहीं हो सकता। इसे पढ़कर योगिराजाधिराज विशुद्धानन्द परमहंसदेव के समान सूर्यविज्ञान जनित सृष्टि चमत्कार करने में भी कोई सफल नहीं हो सकता, क्योंकि यह विज्ञान दीर्घकालीन अध्यवसाय, नियमानुवर्तिता तथा गुरुकृपा से ही प्राप्त हो सकता है। यह प्रायोगिक विज्ञान है। मात्र सैद्धान्तिक नहीं है। जबकि यह ग्रन्थ इसके सैद्धान्तिक पक्ष पर मात्र क्षीण प्रकाश-प्रक्षेपण है।

तब इसे लिखने का तथा संयोजित करने का क्या प्रयोजन? जब यह ग्रन्थ पढ़कर अथवा कण्ठस्थ करके भी सूर्यविज्ञान आयत्त नहीं हो सकता, तब इसे भाषाबद्ध करके पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना तथा पाठकों द्वारा इसे पढ़कर केवल इसके सम्बन्ध में आलोचना-प्रत्यालोचना करना व्यर्थ श्रम मात्र नहीं तो और क्या है? आपात् दृष्टि से ऐसा प्रतीत होना सम्भव है। परन्तु वास्तविकता कुछ और है। हो सकता है कि इसे पढ़कर किसी भाग्यशाली के मन-मस्तिष्क में इस विज्ञान को प्राप्त करने की प्रकृत इच्छा का उदय हो, उसके अन्दर इसे प्राप्त करने की उद्दाम लालसा उत्पन्न हो। ऐसी स्थिति में नियम यह है कि जिसकी जिस विषय के प्रति यथार्थ तथा सात्विक इच्छा होती है, जो इस प्रकार की सद्इच्छा के आकर्षण तथा अतिरेक के कारण अपने भौतिक (अहं) अस्तित्व के विलोप के साथ-साथ सर्वतोभावेन सर्वेच्छामयी विज्ञाननिधि महाशक्ति के अंक में जा पड़ता है, उसकी वह इच्छा पूर्ण होकर रहती है। अतः इस ग्रन्थ के संयोजन का मात्र उद्देश्य है ऐसी प्रेरणा देना तथा इच्छा का उद्‌बोधन कराना, जिससे इस लोकोत्तर विज्ञान के प्रति रुचि का जागरण हो सके। प्रत्येक शास्त्र का यही आशय है। उस-उस शास्त्र का अवगाहन करके व्यक्ति उसमें वर्णित तत्त्व के प्रति जाग्रत् तथा आकांक्षित होकर तदनुरूप कर्म में व्यापृत हो जाता है। यही इस ग्रन्थ का प्रयोजन है।

इस ग्रन्थ में जो कुछ अंकित है उसमें मेरी कल्पना का लेशमात्र नहीं है। गुरुमुख से सुने गये, प्रामाणिक ग्रन्थों में वर्णित किये गये तथा प्रत्यक्ष द्रष्टागण द्वारा देखकर पुस्तकाकृति में प्रकाशित किये गये तथ्यों पर यह ग्रन्थ आधारित है। इसमें योगिराजाधिराज विशुद्धानन्ददेव के शिष्य श्री अक्षयकुमार दत्त गुप्त, महामहोपाध्याय डॉ० पं० गोपीनाथ कविराज महोदय के वचनों का मुख्यतः समावेश है। इनमें प्रत्येक की उपलब्धि को उनके नाम से मुद्रित किया गया है, जो मूल से हिन्दी भाषा में मेरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा अनूदित है। कहीं-कहीं जहाँ इन महापुरुषों द्वारा वर्णित अंश सूत्र रूप में तथा क्लिष्ट अथवा संकेत रूप में है, उनकी स्वमति के अनुसार व्याख्या भी प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ। पुस्तक के प्रारम्भ में ज्ञानगंज सिद्धभूमि का भी यथासाध्य वर्णन अंकित है। साथ ही कुछ साधकों की कृतियाँ भी संयोजित हैं।

इसके अतिरिक्त श्रद्धेय कविराजजी से इस सम्बन्ध में उनके श्रीमुख से जो सुना था, उसे इस ग्रन्थ में कहीं भी उद्धृत करना उचित नहीं लगा, क्योंकि 'मैंने ऐसा सुना' इसका प्रमाण प्रस्तुत करने का कोई आधार मेरे पास नहीं है (जैसे टेप, सहश्रोता आदि)। जो लोग उस काल में उनके यहाँ जाकर यह सब प्रसंग सुनते थे, उनमें से किसी ने वह लिपिबद्ध किया हो, ऐसा पता नहीं चला। अधिकांश श्रोता कालकवलित हो चुके हैं। यह कसक मन में है कि यदि यही प्रयास आज से 25 वर्ष पूर्व करता, तब पाठकों के समक्ष उन सब महानुभावों द्वारा श्रुत तत्सम्बन्धित श्रद्धेय कविराजजी की आप्तवाणी का भी इस ग्रन्थ में समायोजन कर सकता!

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में विश्वविद्यालय प्रकाशन के अधिष्ठातागण ने प्रभूत मनोयोग प्रदर्शित किया है। यह श्रद्धेय कविराजजी के प्रति उनकी भक्ति तथा श्रद्धाभावना है। श्रद्धा सदा विजयिनी है। सर्वार्थसाधिनी है।

शारदीय नवरात्रि, सन् 2010 ई० **एस०एन० खण्डेलवाल**

बी 31/32, लंका
वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानगञ्जोक्त अखण्ड महायोग का तत्त्व

योगज्योतिषाचार्य पण्डित डॉ० ब्रह्मगोपालजी भादुड़ी
एम०ए०, पीएच०-डी०

समय, गति, वस्तु एवं पथ का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। गति के लिए वस्तु आवश्यक है। वस्तु गति पाकर पथ का अवलम्बन लेती है। गति की माप के लिए समय का महत्त्व सर्वत्र मान्य है। प्राचीन काल से मनीषीगण उपरोक्त चतुर्व्यूह का अनुशीलन करते रहे हैं। इसी अनुशीलन का एक पथ है अणुरूप देह को प्रकाशमय एवं अप्रकाशमय-उभय स्थिति में अडिग बनाना अथवा समतुल्य बनाना। प्रकारान्तर से इसका वर्णन दोनों स्थिति के केन्द्रबिन्दुरूप में किया जा सकता है। अर्थात् प्रकाश एवं अप्रकाश का मिलनबिन्दु या केन्द्रबिन्दु ही देह बने, यह परिकल्पना की गई। अखण्ड महायोग में एक ऐसी देह का वर्णन है, जिसमें मरदेह एवं देवदेह दोनों का सम्मिलन है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ में कविराजजी ने एक ऐसे मार्ग का विवरण दिया है जो प्रत्येक मत-धर्म का सारतत्त्व है। विभिन्न धर्मों के अन्तर्निहित गुप्त तत्त्व में परस्पर ऐक्य होते हुए भी लौकिक विरोधाभास का परिचय मिलता है। कविराजजी ने उन विरोधाभास का एकत्रीकरण करते हुए क्षण एवं अनन्त का एकीकरण किया है। अखण्ड महायोग के दृष्टिकोण से सत्य, सत्यासत्य, असत्य एवं असत्यासत्य में कोई भेद नहीं। आवश्यक है पूर्वोक्त केन्द्रबिन्दु में अवस्थान।

विश्लेषण द्वारा ज्ञात होगा कि वास्तव में केन्द्रबिन्दु एक नहीं, दो है। प्रथम है देव-जगत् से मरजगत् में प्रवेश का केन्द्रबिन्दु—द्वितीय है मरजगत् से देवजगत् में प्रवेश का केन्द्रबिन्दु। अब विचारणीय है कि इन दोनों की स्थिति में एक केन्द्रबिन्दु का तत्त्व-ज्ञान। शरीरधर्मी एवं शरीरहीन दोनों ही इस केन्द्रबिन्दु में प्रवेश कर समान स्थिति प्राप्त करते हैं या विभिन्न स्थिति प्राप्त करते हैं, यह भी विचारणीय है। उदाहरणार्थ, हम संधिबेला का विचार करते हैं। प्रातः संधिबेला में शरीर जागृत रहता है, किन्तु आत्मिक सुषुप्ति रहती है। सायं संधिबेला में शारीरिक सुषुप्ति एवं आत्मिक जागृति का भाव होता है। इन दोनों स्थितियों की पर्यालोचना के पूर्व अखण्ड महायोग के प्रयोजन पर प्रकाश आवश्यक है। यह सुनिश्चित है "एक दिन प्रत्येक चरमस्थिति की प्राप्ति करेगा"। फिर भी साधक इस महाकर्म को अंगीकृत करे तो बिना प्रतीक्षा के स्वयं इस स्थिति की प्राप्ति करेगा। सृष्टि अर्थात् प्रकाशबिन्दु के समष्टिकरण तथा गति की विशिष्ट नियन्त्रण प्रणाली द्वारा ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड का पृथकीकरण किया गया है। (इसके पूर्व की स्थिति के बारे में कुछ भी बताना सम्भव नहीं है) कविराजजी के अनुसार बोधगम्य रूप से सर्वप्रथम प्राण (आलोक) एवं काल (अन्धकार) का उदय होता है। प्रकारान्तर से ये हैं चैतन्य अर्थात् गति एवं जड़ अर्थात् गतिशील तत्त्व। उपलब्धि होती है कि प्राण एवं काल, दोनों ही पूर्ण हैं। किन्तु इसमें भी अपूर्णता की छाया है। कारण, ध्वनि ही गतिरूपा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधक खण्ड

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

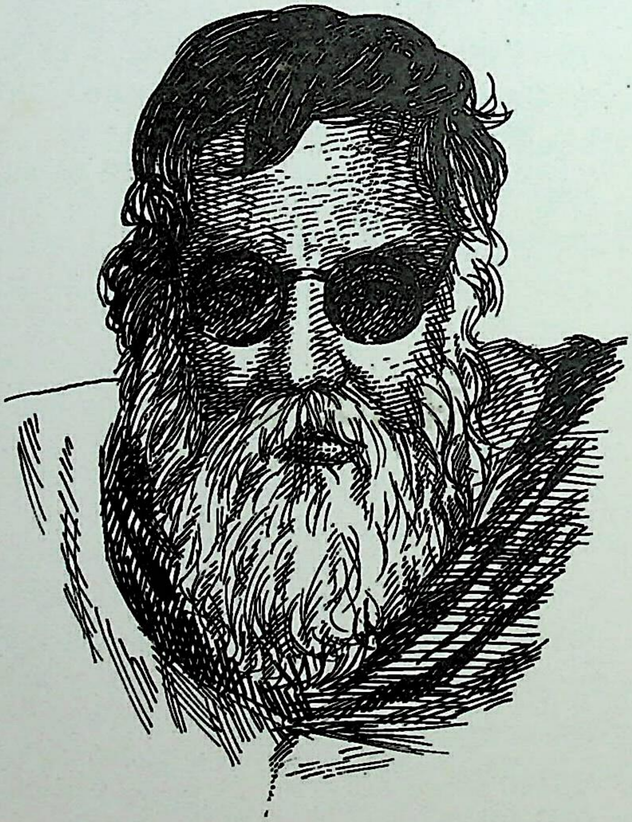

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानगंज

—(रायबहादुर) श्री अक्षयकुमारदत्त गुप्त कविरत्न

मेरे ग्रन्थ 'योगिराजाधिराज श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस' नामक पुस्तक को पढ़कर (जो मेरे गुरुभाई नहीं हैं) एक सज्जन ने मुझे लिखा कि ज्ञानगंज सैकड़ों वर्ष पुराना योगाश्रम है, तब उसका 'गंज' यह म्लेच्छ नाम क्यों है? इन सज्जन की यह धारणा हो सकती है कि 'गंज' शब्द अरबी अथवा फारसी हो सकता है। यह उचित नहीं है। शब्द संस्कृत है। इसके अतिरिक्त सभी देशों में यह देखा जाता है कि कालगति के कारण प्राचीन नाम का परिवर्तन होकर कई स्थान नये नाम से पुकारे जाते हैं। ऐसा आज भी हो रहा है। अतः नाम आधुनिक है, इस कारण से स्थान भी आधुनिक होगा, यह भ्रान्त धारणा है। तब भी ज्ञानगंज के सम्बन्ध में अनेक बाते हैं। तथापि यह भी सत्य है कि अनेक बातों को बल देकर नहीं कहा जा सकता।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर गुरुभ्राता श्री जीवनशंकरजी याज्ञिक ने विश्वविद्यालय के ग्रन्थागार से तिब्बत का बृहत् मानचित्र खोजकर उसमें ज्ञानगंज नामक किसी भी स्थान का उल्लेख नहीं पाया। यह विस्मय की बात नहीं है। प्रथमतः प्रचलित राजनीति, शासन-व्यवस्था, व्यवसाय, भौगोलिक विचित्रता इत्यादि के दृष्टिकोण से मानचित्रों में समुचित मर्यादासम्पन्न स्थान ही दिखलाये जाते हैं। ज्ञानगंज इस सब में से किसी भी श्रेणी के अन्तर्गत नहीं है। द्वितीयतः ज्ञानगंज भारतीय तथा संस्कृतमूलक नाम है। तिब्बतियों को भी (हो सकता है) यह ज्ञात न हो। मानसरोवर तथा उसके पास स्थित रावणहृद (राक्षसताल), गौरीकुण्ड, कैलास आदि नाम भारत में अनेक शती से सर्वत्र विदित हैं। प्रतिवर्ष बहुसंख्यक तीर्थयात्री वहाँ जाते हैं, तब भी तिब्बत में ये सब नाम अप्रचलित हैं। मानसरोवर को तिब्बत में 'त्सोमाफाम' अथवा 'त्सोमावांग' नाम से जाना जाता है। वहाँ रावणहृद को 'लांगाक त्सो' कहते हैं। गौरीकुण्ड को तिब्बत में 'थूक्की जिंग बो' कहा जाता है। कैलास पर्वत को वहाँ पर 'डेम चोक' कहा जाता है। मानसरोवर का नाम अत्यन्त पूर्वकाल से विदेश में प्रचलित है। अतः यूरोपीय प्रकाशनों से छपे मानचित्रों में 'मानसरोवर' नाम ही अंकित है। ज्ञानगंज का कोई न कोई तिब्बतीय नाम अवश्य होगा। हो सकता है मानचित्रों में उसका तिब्बतीय नाम ही अंकित हो!

भारतवर्ष में भी भाषा की विभिन्नता के कारण नाम की विभिन्नता घटित होते देखा गया है। मद्रास (तमिलनाडु) प्रदेशस्थ एक तीर्थस्थान को उत्तर भारतीय पक्षीतीर्थ कहते हैं। साधारण मद्रासी इस नाम को नहीं जानते। वहाँ इसका प्रचलित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम है 'तिरुकालिकुड्रम'। इस तमिल नाम का संस्कृत अनुवाद करने पर होता है 'श्री चिल्लशैल' (चिल्ल = चील)। 'तिरुकालिकुड्रम' नाम केवल लोगों में ही प्रचलित नहीं है, प्रत्युत् सरकारी दस्तावेजों में, पोस्टआफिस के नाम में यह प्रयुक्त होता है। ज्ञानगंज के तिब्बतीय नाम के सम्बन्ध में हमलोगों ने गुरुदेव से कोई प्रश्न नहीं किया था। यदि किसी ने किया भी हो, वह मुझे ज्ञात नहीं है।

इनमें से किसी-किसी की धारणा है कि स्थूलतः ज्ञानगंज नामक कोई स्थान नहीं है। वह सूक्ष्मसत्तायुक्त कोई स्थान है। वह तो प्रयोजनानुसार स्थूल रूप ग्रहण करता है, स्थूल कार्य सम्पादन में भी सहायता करता है, किन्तु उसकी स्थूल सत्ता सदा अवस्थित नहीं रहती। ऐसे लोग उदाहरण में कर्नल अल्काट (थियोसोफिस्ट) के ग्रन्थ 'Old Diary Leaves' का वर्णन करते हैं। इसमें अंकित है कि जब लेखक कर्नल अल्काट मैडम ब्लैवेटस्की के साथ पहली बार मुम्बई आये, तब एक किराये की घोड़ागाड़ी द्वारा मैडम मुम्बई से कुछ दूर इनको ले गयी थीं। इनको घोड़ागाड़ी पर ही छोड़कर वे स्वयं एक मनोरम उद्यान से घिरे एक मकान में चली गयीं। उस उद्यान में कई माली कार्य कर रहे थे। लौटने में मैडम को विलम्ब होता देखकर कर्नल अल्काट उद्यान के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर गाड़ी से उतर पड़े और आगे बढ़कर माली लोगों से एक-दो प्रश्न किये। लेकिन उनकी बात न समझ सकने के कारण अथवा अन्य कारण से माली लोगों ने कोई उत्तर नहीं दिया और अपने कार्य में लगे रहे। कुछ ही समय के अनन्तर मैडम घर से बाहर आईं और यह कहा कि यह माला मुझे गृहपति ने दी है और एक सुन्दर फूल की माला कर्नल को दी। उस स्थान के सम्बन्ध में मैडम ने और कुछ भी नहीं बतलाया जिससे कर्नल के मन में कौतूहल रह गया।

अगले दिन कर्नल एकाकी अपने निवास से निकले। भाग्यवशात् उनको वही पहले दिन वाला घोड़ागाड़ी का कोचवान मिल गया। कर्नल ने उससे कहा कि वह जहाँ मैडम के साथ गाड़ी लेकर गया था, वहीं आज भी वे जाना चाहते हैं। गाड़ीवान उनको लेकर वहाँ तक गया, जहाँ तक का रास्ता उसने पहले दिन पार किया था। एक स्थान पर गाड़ी रोककर वह बोला कि कल यहीं तक वह आया था। कर्नल ने देखा कि वह समुद्र के किनारे का एक स्थान था, लेकिन वहाँ वह उद्यान तथा घर इत्यादि कुछ भी नहीं था। गाड़ीवान भी बोला कि कल वह यहीं आया था, उसे बाग-उद्यान तथा उस घर का कोई पता नहीं। इस बात से अनुमान किया जाता है कि उस बागान तथा घर की कोई स्थूल सत्ता नहीं थी। वह सूक्ष्मधाम की वस्तु थी। मैडम की इच्छाशक्ति से वह स्थान मैडम को तथा कर्नल अल्काट को दृष्टिगोचर हो सका था। गाड़ीवान उसे नहीं देख सका था।

यह भी अनुमान हो सकता है कि यह बागान तथा मठ स्थूल अवश्य था, किन्तु उसका प्रकृत अवस्थान मुम्बई के समुद्रतीर पर कदापि नहीं था। जहाँ वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थान था वह तथा मुम्बई के मध्य जो दूरी (Space) थी, उसे योगबल से संक्षिप्त अथवा अणुरूप में परिणत करके उद्यान तथा गृह को अपने प्रयोजनार्थ यहाँ लाया गया एवं मैडम ने उस स्थूल परिदृश्यमान गृह में प्रवेश करके स्थूल माला को लाकर कर्नल को दिया था। मध्यवर्ती प्रदेश को पूर्वोक्तरूपेण संक्षिप्त करके मुहूर्त मात्र में एक स्थान से अन्य स्थान पर स्थानान्तरण का अनेक वृत्तान्त मिलता है।

श्रीश्रीगुरुदेव ज्ञानगंज के सम्बन्ध में जो विवरण देते थे, वह स्थूल विवरण था। तब भी उसमें यथेष्ट असामान्यता थी। यदि स्थूल विवरण देखा जाये, तब उनके अनुसार ज्ञानगंज जाने का पथ था जालन्धर (पंजाब) से हिमालय के मध्य गोगा तक। यहाँ तक यान-वाहन से ज़ा सकते थे। तत्पश्चात् पैदल जाना पड़ता था। उसमें दो महीने लगते थे। बीच-बीच में चट्टी थी (रुकने का स्थान)। वहाँ चूड़ा तथा दही मिलती थी। मार्ग में बरफ है। कहीं-कहीं ऐसी नरम बरफ थी जिसमें पैर धँस जाते। बरफ के ऊपर चलने का जूता मिलता था, जिसका दाम उस समय था साढ़े तीन आना। ज्ञानगंज में अनेक ब्रह्मचारी, दण्डी, संन्यासी, तीर्थस्वामी, परमहंस, भैरवी, ब्रह्मचारिणी तथा कुमारी हैं। आश्रम में सभी जा सकते थे लेकिन बाहरी व्यक्ति को वहाँ रुकने का आदेश नहीं था। वहाँ पर सर्वत्र योगचर्चा के साथ विज्ञान-चर्चा चलती रहती थी। विज्ञान का अर्थ है सूर्यविज्ञान-चन्द्रविज्ञान-वायुविज्ञान इत्यादि। परमहंसगण अनेक विज्ञानों की गवेषणा करते रहते हैं। विज्ञान तथा वैज्ञानिक यन्त्र की सहायता से अत्यन्त कठिन-कठिन रोगों का प्रतिकार भी करते हैं। रोगों में दैहिक वैकल्यादि का भी उपचार होता है। गुरुदेव के पैरों की एक बड़ी उँगली बाल्यावस्था में कट गई थी। ज्ञानगंज में एक यन्त्र द्वारा उसका नष्ट अंश पुनः योजित कर दिया गया। उन्होंने और भी बतलाया था कि एक बार उन्होंने एक धनी मारवाड़ी को उसकी कन्या के साथ ज्ञानगंज भेजा था। कन्या की यौवनावस्था आ जाने पर भी उसके वक्ष पर यौवनचिह्न उद्‌गत नहीं था। ज्ञानगंज से यह कन्या केवल यौवनचिह्न ही लेकर नहीं लौटी थी, अपितु भगवतीतुल्य रूपवती हो गई थी। ज्ञानगंज में सम्पूर्ण बधिरता का प्रतिकार कर देने का भी यन्त्र है। उसे लाने के लिए व्यय करीब 2000/- लगता था (यह 2000/- उस समय लगता था)। बाबा ने अनेक बार कहा था कि यदि कोई धनी रोगी मिल जाये, तब उस यन्त्र को मँगाकर अक्षय (अर्थात् मेरे) के कान का दोष भी मुहूर्तमात्र में दूर कर दिया जा सकता है।

यह सब स्थूल का ही विवरण है, तथापि इन सबमें अनेक असाधारणत्व है। ज्ञानगंज के परमहंसदेव तथा वहाँ की भैरवी माताओं की आयु 500 वर्ष से लेकर 800-900 वर्ष, यहाँ तक कि इससे भी अधिक की है। जब बाबा विशुद्धानन्दजी ज्ञानगंज में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तब उनके गुरु महर्षि महातपा का 1300वाँ वार्षिक जन्मोत्सव मनाया गया था। यहाँ तक कि उनकी माता क्षेपा माँ भी जीविता हैं। वे तिब्बत के मनोहर तीर्थ में स्वतन्त्र स्थान पर रहती हैं तथा महातपाजी भी वहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहते हैं। इतनी अधिक आयु हो जाने पर भी वे देखने में चिरयौवना लगती हैं। उनके सिर के बाल काले दीर्घ तथा प्रचुर हैं। महर्षि महातपा स्वयं अति स्थूल देह होने पर भी चलने-फिरने में सक्षम हैं। उनके समवयस्क एक गुरुभाई हैं। वे वैष्णव हैं। उनका नाम है भवदेव गोस्वामी। वे ज्ञानगंज अथवा मनोहर तीर्थ में न रहकर अन्यत्र रहते हैं। महर्षि महातपा के परमहंस शिष्यों में सर्वापेक्षा शक्तिशाली हैं श्री श्री भृगुरामदेव परमहंस। उनकी आयु करीब 500 वर्ष है। बाबा उन्हें दादागुरुदेव कहते थे। उन्होंने ही बाबा को योगशिक्षा दी थी। बाबा विशुद्धानन्ददेव को विज्ञान की शिक्षा देने वाले थे परमहंस श्यामानन्द। उनको ज्ञानगंज में विज्ञानचर्चा का भार दिया गया था। ज्ञानगंज में विज्ञानबल से प्रस्तुत आकाशयान है। वहाँ प्रत्येक रात्रि पूर्णचन्द्र के आलोक से आलोकित रहती है। ऐसे अनेक अलौकिक वृत्तान्त हैं।

उक्त परमहंस लोगों में से अभयानन्द स्वामी को एक बार वर्द्धमान में तथा अन्ततः एक बार कलकत्ता गंगातट पर देखा गया था। उनके वर्द्धमान अवस्थान का वृत्तान्त मेरे गुरुभाई परलोकगत पुलिस इन्सपेक्टर उपेन्द्र चौधरी ने 'विशुद्धानन्द प्रसंग' के तृतीय खण्ड में लिखा है। वे महात्मा मानो साक्षात् महेश्वर के समान हैं। श्री नीमानन्द स्वामी, श्री उमानन्द स्वामी परमहंस समय-समय पर आते हैं। कभी-कभी ही किसी के सम्मुख अपना प्रकटीकरण करते हैं। श्री नीमानन्दजी ने ही बाबा विशुद्धानन्द को हुगली गंगातट पर दर्शन देकर उनकी ज्वाला-यन्त्रणा को दूर किया था, और दो वर्ष के उपरान्त बाबा को ढाका से विन्ध्याचल पर्यन्त एक रात्रि में (आकाशमार्ग से) ले गये थे। ज्ञानगंज के और एक परमहंस का नाम है श्री ज्ञानानन्द। इनका अन्य एक नाम है कुतुपानन्द। ये थियोसोफिस्ट सम्प्रदाय में 'कुथुमी' बाबा कहे जाते हैं। यह बात बाबा विशुद्धानन्ददेव ने ही बतलायी थी। इन्होंने बाबा को भेजी एक चिट्ठी में अपने एक म्लेच्छ (विदेशी) शिष्य होने की बात लिखी थी। कुतुपानन्द की शिष्या मैडम ब्लेवेस्टस्की उन्हें 'कुथुमीबाबा' कहती थीं। यह 'कुतुपानन्द' नाम का रूसी भाषागत विकृत रूप है। बाबा विशुद्धानन्द के अनुसार इनकी आयु 500-600 वर्ष होगी। इनको थियोसाफिस्ट सम्प्रदाय में मात्र मैडम ब्लेवेटस्की तथा कर्नल अल्काट ने ही देखा था।

श्री भृगुराम परमहंस को श्रीयुक्त महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज की पत्नी ने पूजा प्रकोष्ठ में देखा था। देखकर वे मूर्च्छाग्रस्त हो गयी थीं। इनके शरीर की ज्योति प्रातःकालीन सूर्य के समान है। बाबा विशुद्धानन्दजी कहते थे कि योगक्रिया के फल से इनके देह के उपादान में परिवर्तन हो जाने से इनका यह रंग हो गया है। रक्तवर्ण ज्योतिपिण्ड रूप से बाबा भृगुरामदेव को (काशी विशुद्धानन्द कानन आश्रम में) बाबा विशुद्धानन्द के प्रकोष्ठ में प्रवेश करते (प्रातः $3^1/_2$ बजे आकाशमार्ग से खिड़की के रास्ते) मेरे गुरुभ्राता रमेश मैत्र, देवेन्द्र बन्दोपाध्याय तथा उनकी पत्नियों ने देखा था। पुनः एक बार ब्राह्म मुहूर्त में विधुभूषण दादा ने उनका दर्शन प्राप्त करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनका किंचित् आदेश भी प्राप्त किया था। ज्ञानगंज की भैरवी मातागण की भी अनेक समय काशी तथा बण्डुल आश्रम में आने की खबर मिली थी। एक बार सन् 1930 ई० में प्रयागस्थ कुम्भ मेला में बाबा के साथ भ्रमण करते समय केदार भौमिक दादा ने दो युवती महिलाओं को देखा था। बाबा उन्हें देखकर कुछ मुस्काये भी थे। प्रतीत हुआ कि नेत्रों की भाषा से कुछ बात हो गयी। बाद में बाबा विशुद्धानन्दजी ने बताया कि वे छद्मवेश में ज्ञानगंज की भैरवी माँ थीं।

इस सब विवरण से ज्ञानगंज को पूर्णतः स्थूल अथवा पूर्णतः सूक्ष्म स्थान मानना भी उचित नहीं है। सभी स्थूल स्थान की एक सूक्ष्मदशा अवश्य है। पुराणादि में इसका वर्णन है। सूक्ष्म काशी का आकार ऐरण्ड (रेंड़) के पत्ते की तरह है। यह स्थूल काशी की पृष्ठभूमि में है। काशी का एक नाम है अविमुक्त क्षेत्र। ज्ञानगंज की आध्यात्मिक सत्ता के सम्बन्ध में समय-समय पर कुछ-कुछ सुना गया था। वे इस विषय में विशेष विस्तार से नहीं कहते थे। इन सब विषयों को हृदयंगम करने का एकमात्र अधिकारी उन्होंने महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज को समझा था। तभी बाबा ने तत्त्वकथा जितनी इनको बतलायी, उतनी किसी को भी नहीं बतायी। मैंने बाबा विशुद्धानन्द देव से जितना कुछ सुना था, उसी के अनुसार मैं यह विवरण लिख रहा हूँ।

ज्ञानगंज के रहस्य को महिमामण्डित करने वाले हैं वहाँ से संश्लिष्ट परमहंसगण तथा भैरवी मातागण। परमहंसगण में से श्री भृगुराम, नीमानन्द, श्यामानन्द, ज्ञानानन्द, अभयानन्द, उमानन्द, धवलानन्द तथा परमानन्द गोस्वामी का नाम मुझे ज्ञात है। रामानन्द नाम से भेजा गया ज्ञानगंज का एक पत्र (बाबा विशुद्धानन्द के पास से) मिला था। लेकिन ये परमहंस हैं अथवा नहीं, यह ज्ञात नहीं हो सका। भैरवी मातागण में श्री उमा भैरवी, श्यामा भैरवी, त्रिपुरा भैरवी, ज्ञान भैरवी, आनन्द भैरवी माता ज्ञानगंज में हैं, यह बाबा विशुद्धानन्द देव से सुना था। इनके अतिरिक्त नाम मैंने नहीं सुना। उमानन्द परमहंस भृगुरामदेव के शिष्य हैं। धवलानन्द श्यामानन्द परमहंस देव के शिष्य हैं। परमानन्द के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। शेष सभी महर्षि महातपा के शिष्य हैं। परमहंसों में तथा भैरवी माताओं में से अनेक की आयु 500 वर्ष से भी अधिक है।

मनुष्य की रक्त-मांस की देह सामान्यतः 100-125 वर्ष से ऊपर स्थायी नहीं होती। 100 वर्ष के पहले से ही देह जीर्ण होने लगती है। परन्तु ज्ञानगंज के महात्मा तथा भैरवीगण इस नियम से चालित नहीं हैं। योगक्रिया के कारण उनके देह का रक्त-मांस अन्य प्रकार का हो गया है। उपादान ही परिवर्तित हो गया है। उन्हें भोजन का प्रयोजन नहीं है, फलतः मल-मूत्रादि का उत्सर्ग भी नहीं है। तथापि शरीर में अमित शक्ति है। ऋद्धि-सिद्धि अतुलनीय है। ज्ञान अप्रतिहत है। उनकी गति अबाध है। वे पर्वत की शिलाओं में से भी निमेषमात्र में प्रवेश कर सकते हैं। अतिदूर तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिनिकट कुछ भी उनके लिए बाधक नहीं है। देश-काल उनकी गति, चिन्ता तथा ज्ञान का नियामक नहीं है।

अब यहाँ प्रश्न उत्थित होता है उनके अतिमानव जीवन का प्रयोजन तथा लक्ष्य क्या है? यदि कोई उद्देश्य न होता, तब वे मोक्ष का ही वरण कर लेते। साधारण लोग जिसे मोक्ष-निर्वाण कहते हैं, उनकी अवस्था तो इस सब से अत्यन्त उच्च है। उन्होंने मोक्ष तथा निर्वाण का लंघन करके उससे उच्च अवस्था प्राप्त की है। किन्तु क्यों? किस आशा में अथवा किस कर्त्तव्य-बोध के चलते वे ऐसा कर रहे हैं?

(ज्ञानगंज हेतु) बाबा से सुना था कि परमहंसगण में से अनेक सर्वदा विज्ञान-चर्चा में लगे रहते हैं। योगीगण योग अवश्य करते हैं। दोनों का फल है ज्ञानवृद्धि तथा शक्ति का प्रसार। ज्ञान तथा शक्ति दोनों ही अनन्त है। दोनों ही अनन्त भाव से ईश्वर में विद्यमान है। ज्ञान स्थिर है, शक्ति में चाञ्चल्य है। इसलिए पूर्ण ईश्वर की शिव तथा शक्तिरूपेण कल्पना की जाती है। एक ओर वे सर्वज्ञ हैं, दूसरी ओर सर्वशक्तियुक्त हैं। दोनों दिशा से पूर्ण हैं। यही है ईश्वरत्व। जीव को सम्पूर्ण ईश्वरत्व प्राप्त नहीं है। योगी ईश्वर है, परन्तु पूर्ण ईश्वर नहीं है। बाबा कहते थे कि जीव कभी भी ईश्वर नहीं हो सकता। ईश्वर के अनन्त ज्ञान-अनन्त शक्ति का रहस्य जानने की चेष्टा द्वारा योगी क्रमशः अनन्त के साथ सन्निहित होते हैं और उनके साथ घन, घनतर ऐक्य तथा सायुज्य प्राप्त करते हैं। यह है उनकी सत्ता का उत्तरोतर विकास। बुद्धदेव के सम्बन्ध में एक लेखक (अंग्रेज) लिखते हैं—

"Buddhism is a process of becoming and admits of no conceivable end." बाबा भी कहते थे कि योगी के कर्म का अन्त नहीं है।

योगी ही ईश्वर है। ज्ञानगंज के परमहंसगण भी ईश्वर हैं। तब भी उनमें उच्चावच भाव है। बाबा विशुद्धानन्ददेव कहते थे कि भृगुरामदेव आयु में अनेक परमहंसगण से कनिष्ठ होने पर भी योगैश्वर्य में महान् हैं। इनमें से कोई गग़ विज्ञान के पथ पर, कोई योग के पथ पर, कोई दोनों पथावलम्बी हैं। अथवा योग तथा विज्ञान एक ही पथ है।

ज्ञानगंज के परमहंसगण में से ज्ञानानन्द (कुतुपानन्द) के व्यापक लोक-हितैषणा व्रत का संवाद बाबा विशुद्धानन्ददेव से सुना था (बाबा विशुद्धानन्ददेव को आगे इस प्रसंग में 'बाबा' शब्द से सम्बोधित किया जायेगा)। ये हैं थियोसाफिस्ट सम्प्रदाय की प्रवर्तयित्री मैडम ब्लैवेटस्की के गुरु। अन्यान्य परमहंसगण भी ऐसे ही कृपाव्रत में होंगे। सभी किसी न किसी रूप में जगत्-कल्याण में लगे हैं। भैरवी माता गण के भी सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है। बाबा ने शरीर त्याग दिया, अपना कोई प्रतिनिधि भी नहीं छोड़ गये। तथा भृगुरामदेव का जगत्उद्धार व्रत समाप्त हो गया लगता है। थियोसाफिस्ट सम्प्रदाय भी इस समय क्षीण-प्रभाव हो गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुतुपानन्द भी अपने जगत्-कल्याण-कार्य को समाप्त समझ कर निःश्चेष्ट हो गये, यह धारणा उचित नहीं है।

यह तो ज्ञानगंज के स्थूल रूप पर किंचित् प्रकाश-प्रक्षेपण किया गया। अब उसके सूक्ष्मरूप के सम्बन्ध में कुछ कहना है। यदि स्थूल रूप को आंग्लभाषा में Material Aspect कहें तब सूक्ष्मरूप को Astral Aspect तथा आध्यात्मिक रूप को Spiritual Aspect कह सकते हैं। स्वर्गीय गुरुभाई कुंजघोष महाशय ने अपनी पत्निवियोग पर बाबा से पूछा था कि अब मेरी पत्नी कहाँ हैं? उत्तर में बाबा ने कहा, "वे इस समय ज्ञानगंज में हैं।" इसी प्रकार से महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज की माता के स्वर्गवास के पश्चात् बाबा ने बताया था कि वे भी ज्ञानगंज में हैं। यह वह ज्ञानगंज प्रतीत नहीं होता जिसके विषय में पहले यह बताया गया कि रेल से जालन्धर जाकर वहाँ से गोगा से हिमालय में ज्ञानगंज जाना पड़ता है। यहाँ जिस सूक्ष्म ज्ञानगंज की बात चल रही है, वहाँ मृत्यु के पश्चात् पहुँचा जाता है। गुरुदेव बाबा से सुना था कि उनके शिष्यों के लिए अमित ऐश्वर्यवान् श्री भृगुराम परमहंसदेव ने एक धाम का निर्माण किया है, जहाँ उनके शिष्यगण तथा उनके परिवार के लोग मृत्यु के अनन्तर जाकर अपना अपूर्ण कर्म पूर्ण करेंगे। उन्हें अब मर्त्यलोक में वापस नहीं आना होगा। उस धाम का कोई नाम बाबा ने नहीं बताया। अतः लगता है कि वही सूक्ष्म ज्ञानगंज है।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशुद्धानन्द स्मरण

—(रायबहादुर) श्री अक्षयकुमारदत्त गुप्त कविरत्न

कुछ लोगों की समझ के अनुसार साधु, विशेषतः वेशधारी साधु मात्र ही योगी हैं। इस सम्बन्ध में उनका मत है कि योगी में नाना प्रकार की अलौकिक सिद्धि रहती है। इसलिए लोग साधुमात्र के ही पास रोग की औषधि, मुकदमे की जय, पुत्र की नौकरी तथा सुमति, कन्या के विवाह तथा सन्तान-लाभ आदि की समुचित व्यवस्था के लिए भीड़ जमाते हैं। साधुगण में भक्त, योगी तथा ज्ञानी का जो श्रेणी विभाग है, इसको तब साधारण व्यक्ति नहीं जानते। ईश्वर के साथ जिनका योग है, साधारण लोगों की धारणा में वे ही योगी हैं तथा वे मानते हैं कि ऐसा (ईश्वर के साथ योग) योग होते ही उनमें समस्त सिद्धि आ जाती है। जो जितने बड़े साधु हैं, उनकी क्षमता उतनी ही अधिक होगी, इसमें वे सन्देह नहीं करते।

पण्डितगण यह स्वीकार करते हैं कि ईश्वर अथवा परतत्त्व के साथ संयोग स्थापना करना साधना का उद्देश्य है। उनका मत है कि साधना में भी प्रकार भेद है। कोई बुद्धिप्रदीप्त विचार द्वारा, कोई भक्ति प्रणोदित सेवा द्वारा, कोई देहेन्द्रिय शोधन समर्थित ध्यान द्वारा उस संयोग साधन की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार इन त्रिविध साधना द्वारा ज्ञानी-भक्त-योगी श्रेणी के साधु (साधक सिद्ध) का श्रेणी विभाग किया गया है। जहाँ श्रेणी विभाग है, वहाँ कौन सा उच्च है, और कौन सा निम्न है, यह तर्क भी उत्थित होता है। इस प्रकार के तर्क को लेकर अनेक जल्प-वाद-वितण्डा होता था और अब भी होता है। अनेक गुरुगम्भीर ग्रन्थ रचित हुए हैं, जिसे पण्डित-विद्यार्थीगण पढ़ते हैं और पढ़कर जल्प-वाद-वितण्डा के लिए प्रस्तुत होते हैं।

साधारण लोगों की विचार बुद्धि एक ही मान को स्वीकार करती है। वह यह है कि जिस साधु का अलौकिक सामर्थ्य जितना अधिक है, वह उतना ही उच्च है। इस प्रकार साधारण मनुष्य सभी साधुओं को ही योगी मानते हैं, वैसे ही वे पण्डितगण द्वारा किये श्रेणी विभागानुसार जो प्रकृत योगी हैं, उन्हें ही उच्चतम स्थान देते हैं। इसका कारण यह है कि योगीगण में अलौकिक सिद्धि अधिक होती है।

सभी साधन-प्रणाली के आदि में एक उद्योगपर्व होता है, मध्य में है युद्धपर्व (क्रिया), अन्त में है शान्तिपर्व। श्रद्धा, आस्तिक्य बुद्धि तथा निष्ठा, सभी श्रेणी में प्रवेशिका रूप है। तदनन्तर मार्ग के अनुसार भिन्न-भिन्न पर्व को अतिक्रम करना पड़ता है। ज्ञानमार्ग के उद्योगपर्व में नित्य-अनित्य वस्तु में अर्थात् आत्मा और देह, ईश्वर या परमात्मा तथा जगत् इनमें जो भेद है उसकी उपलब्धि, तदनन्तर ऐहिक तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पारत्रिक भोगों के प्रति वैराग्य तथा शम-दम इत्यादि का अनुशीलन करना पड़ता है। इसमें एक आनन्द अवश्य ही है, तथापि किसी शक्ति का विकास नहीं है, यह भी कहना पड़ता है। क्रियापर्व में विचार तथा शान्तिपर्व में ज्ञान का परिपाक तथा अखण्ड शान्ति एवं वैराग्य है। शक्ति अथवा सिद्धि का कोई प्रसंग ही यहाँ नहीं है।

भक्ति मार्ग के उद्योगपर्व में सेवा आरम्भ होती है श्री मन्दिर मार्जनादि द्वारा, तदनन्तर कीर्त्तन। क्रियापर्व है गभीरतर नाम साधन, इष्टमूर्ति का भोगराग, इष्टलीला चिन्तनादि। तदनन्तर शान्तिपर्व में है प्रेम परिपाक तथा अखण्डलीला रसास्वाद। यहाँ भी शक्ति की बातें नहीं हैं। भक्त सेवा चाहता है। अलौकिक शक्ति नहीं चाहता।

योगमार्ग की बात पूर्णतः स्वतन्त्र है। उसका उद्योगपर्व जितना दीर्घ तथा दुरतिक्रम है, वैसे ही एक-एक कदम अतिक्रम करने के साथ-साथ अयाचितभावेन शक्ति आती रहती है। साधनावस्था में योगी इन शक्तियों से सन्तुष्ट नहीं रहता। क्योंकि उससे अग्रगति में बाधा होती है। तथापि शक्तियों का परार्थ में प्रयोग हो जाता है। साधारणतः योग को अष्टांग कहते हैं। इनमें यम तथा आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार पर्यन्त उद्योगपर्व कहा जाता है। तदनन्दर क्रियापर्व में है धारणा, ध्यान तथा समाधि। शान्तिपर्व में सम्प्रदाय भेदानुसार कैवल्य, ईश्वरसायुज्य, इत्यादि है। योगमार्ग के उद्योगपर्व से ही योगी में शक्ति आना प्रारम्भ हो जाता है। यही सब योगी का ऐश्वर्य है। इसका अर्थ है ईश्वर का भाव या कर्म। तभी कहा गया है कि योगी ही ईश्वर है, ईश्वर ही योगी है। देवताओं में शिव हैं महेश्वर। वे योगी हैं। ऐश्वर्य अर्थात् विभूति।

आधुनिक काल में बंगाल में योगी कम हो रहे हैं। जो हैं भी, वे योगी के स्वभावानुसार प्रच्छन्न रहते हैं। ऐसे ही थे परलोकगत वरदाचरण मजूमदार। मृत्यु के उपरान्त एक सामयिक पत्र में प्रकाशित होने तक उनके बारे में कोई नहीं जानता था। जो प्रच्छन्न योगी होते हैं, उनके बारे में अधिकतर उनकी मृत्यु के उपरान्त ज्ञात होता है। अथवा किसी घटनाक्रम से उनके बारे में कुछ लोग जान पाते हैं। ऐसे तीन महायोगी इतनी प्रच्छन्न अवस्था में थे कि उनके जीवनकाल में उनके सम्बन्ध में अधिक लोग नहीं जान सके। ये लोग कभी भी आत्मप्रचार का अनुमोदन नहीं करते थे। इनका नाम है काशी के श्यामाचरण लाहिड़ी, वारदी के लोकनाथ ब्रह्मचारी तथा बाबा विशुद्धानन्द परमहंस।

इनमें से एकमात्र श्री श्री बाबा विशुद्धानन्द परमहंस को ही देखा था। अन्य दो को देखने का सौभाग्य नहीं मिला। लाहिड़ी महाशय के एक-दो शिष्यों का नाम अवश्य सुना था। लाहिड़ी महाशय तथा लोकनाथ ब्रह्मचारी के विषय में बहुत कम जानकारी प्रकाशित है, तथापि ये दोनों अत्यन्त उन्नत योगी थे, ऐसा बाबा विशुद्धानन्दजी से सुना था। बाबा गोरखपुर पीठाधीश्वर बाबा गम्भीरनाथ तथा काशी के तैलंगस्वामी को भी योगी मानते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाबा विशुद्धानन्द की कितनी अधिक शक्ति थी उसकी इयत्ता नहीं है। मात्र 14 वर्ष की अल्पायु से ही उन्होंने तिब्बत के ज्ञानगंज आश्रम में 22 वर्ष व्यतीत किये जहाँ सैकड़ो-सैकड़ो वर्ष की आयु के योगीगण से साधकों को योगादि शिक्षा प्रदान की जाती है। साथ ही 'सूर्यविज्ञान' एक अतिप्राचीन तथा अत्यन्त रहस्यमय विज्ञान का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ इस विषय में वहाँ गवेषणा भी चलती है। वह सब वहाँ बाबा ने सीखा। वे चाहते थे कि सर्वसाधारण में इसका वितरण हो तथा लोकोपकार हो, तथापि उनकी इच्छा दैव विपर्यय के कारण फलीभूत न हो सकी।

सूर्यविज्ञान द्वारा सभी शक्तियों में सुदुर्लभ सृष्टि शक्ति को प्राप्त किया जा सकता है। एक लेन्स की सहायता से सूर्यविज्ञान द्वारा बाबा ने कितनी विचित्र वस्तुओं की सृष्टि निमेष मात्र में की थी, उसका अन्त नहीं है। सोचकर ही अवाक् हो जाना पड़ता है! उनके शिष्यों ने, अशिष्यों ने, जर्मन, अमेरिकन तथा ब्रिटिश भ्रमणकारीगण ने तथा पत्रकारों ने भी उसे कुछ-कुछ देखा था। संवाददाताओं ने उसे समाचारपत्रों में प्रकाशित भी किया था। यह सृष्टि क्षमता ऐश्वरिक क्षमता है। प्रकृत ऐश्वर्य है। वाग्मिता बल से चित्तरंजक रूप में धर्मकथा कहना, विद्याबल से गभीर आध्यात्मिक तत्त्व विश्लेषण, भाव के प्राचुर्य से कीर्तन-गायन-नर्तन करके लोगों को मतवाला करना योगक्षमता की तुलना में नगण्य तो है, तथापि दीक्षार्थी का आकर्षण करता है। तत्त्व व्याख्या को करने के अनन्तर वैज्ञानिक प्रयोगशाला में demonstrate करते किसे देखा जाता है? योगशास्त्र का यह तत्त्व 'सर्वं सर्वात्मकम्' सबने सुना है। लोगों ने अनेक युक्ति से इसकी व्याख्या भी की है, किन्तु हाथों-हाँथ गुलाब-फूल को जवापुष्प में, अन्य जवापुष्प को प्रवाल में, एक बेलफूल को स्फटिक पिण्ड के रूप में परिणत करके किसने दिखलाया है, अथच बाबा इसे सर्वदा करते थे। उन्होंने एक दिन कथा-प्रसंग में कहा था कि, "बापू! एक घास का तिनका निर्माण कर सकने वाला कोई व्यक्ति तो मुझे दिखलाओ न!" वे इच्छाशक्ति द्वारा अमरूद-वृक्ष से अंगूर फला देते थे। एक जवा पौधे को चिरकाल के लिए गुलाब के पौधे के रूप में परिणत कर दिया था। एक अमेरिकन संवाददाता को विस्मय-विमुग्ध करते हुए लेन्स की सहायता से एक सूखी लकड़ी को मुहूर्त्त मात्र में पत्थर में परिणत करके दिखलाया था। अन्य एक यूरोपीय दर्शक को उसके द्वारा मारी गयी गौरया चिड़िया को पुनर्जीवन देकर उड़ा देने का चमत्कार दिखलाया था। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज लिखते हैं, "अणिमा-महिमा का प्रसंग समझाते हुए एक दिन अपनी उँगली को मोटा करके दिखलाया था। हीरा-सुवर्ण-मुक्ता-प्रवाल प्रभृति शत-शत प्रकार की वस्तु का निर्माण-व्यापार मैंने अपने नेत्रों से देखा था। उनको मच्छर आदि, मक्खी आदि जीवजन्तु को तैयार करते देखा था।"

उनकी विभूति की सीमा परिसीमा नहीं थी। श्रीकृष्ण ने अपने मुख-विवर में यशोदा को विश्वदर्शन कराया था। यह पुराणों में है। बाबा विशुद्धानन्द ने कथा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसंग में स्वल्प परिमाण में विश्व-दर्शन की सम्भाव्यता के सम्बन्ध में संशयापन्न पुरी के विद्वान् महामहोपाध्याय सदाशिव मिश्र को स्वमुख विवर में विश्वदर्शन कराकर उनके संशय को दूर किया था। विष्णु का पद्मनाभ नाम पुराणों में विख्यात है। नाभि से कमल का उद्भव सिद्ध करने के लिए बाबा ने अपनी नाभि से नालयुक्त कमल विस्फारित करके दिखलाया था। यह थी उनकी वैज्ञानिक परीक्षणयुक्त शास्त्र व्याख्या। इसमें अधिक बोलने का प्रयोजन नहीं रहता, तथापि जिज्ञासु उच्छिन्न संशय हो जाते हैं।

श्री श्री बाबा विशुद्धानन्द के समस्त माहात्म्य की वर्णना मेंरी सामर्थ्य के परे है। मैंने दिङ्गमात्र प्रदर्शन करने की चेष्टा की है।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुप्त योगाश्रम

—एस०एन० खण्डेलवाल

ज्ञानगंज के समान अन्य आश्रमों की स्थिति का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। वाल्मीकीय रामायण में भी ऐसे आश्रमों की अवस्थिति का प्रमाण अंकित है। किष्किन्धाकाण्ड में सीता की खोज करते-करते वानरगण ऐसे ही अलौकिक स्थान पर पहुँचे थे। सीतान्वेषण करते-करते वे एक गुफा के पास आये—

दुर्गमृक्षबिलं नाम दानवेनाभिरक्षितम्।
क्षुत्पिपासापरीतास्तु श्रान्तास्तु सलिलार्थिनः॥

—वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड

इसमें प्रवेश कर सकना कठिन था। इसका नाम था ऋक्षबिल, जो मन्त्रशक्ति द्वारा नियोजित था। एक दानव इसकी रक्षा कर रहा था। वह गुफा रोंगटे खड़े कर देने वाली अत्यन्त भयानक थी। एक योजनपर्यन्त घोर अन्धकार में एक-दूसरे का हाथ पकड़े वानरगण चलते जा रहे थे। एक योजन के अनन्तर उनको प्रकाश परिलक्षित होने लगा। वहाँ के लता-वृक्ष-भवन आदि सभी सुवर्ण वर्ण के थे। यहाँ तक कि वहाँ स्थित जलाशय के जलचर भी स्वर्णिम आभावान थे। वहाँ उन्हें एक तपस्विनी परिलक्षित हुई थी जो नियमित तपस्या कर रही थी। तपस्विनी ने हनुमान को बताया कि मयदानव ने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त तपस्या करके स्वयम्भू भगवान् के वरदानरूप इस स्थान का निर्माण किया है। तात्पर्य यह है कि ध्रुवलोक कुमार ध्रुव की तपस्या से, सुखावती पुरी (लोक) बुद्ध की तपस्या से निर्मित है, यह भी वैसा ही तपः शक्ति से निर्मित स्थान था। वह स्वयंप्रभा तपस्विनी वहाँ की अधिष्ठातृ थी। इस स्थान को कोई इन भौतिक आँखों से नहीं देख सकता जैसे ज्ञानगंज का राजराजेश्वरी स्थान, ज्ञानगंज आदि सामान्य दृष्टि से लक्षित नहीं हो सकता, ऋक्षबिल भी वैसा ही स्थान था। इस स्थान में प्रवेश के अनन्तर पुनः बाह्यजगत् में अपने प्रयत्न से जा सकना असाध्य था। केवल वहाँ के सिद्ध ही अपने तपः-बल से समागत व्यक्ति को बाहर कर सकते थे। अतएव स्वयंप्रभा ने अपनी तपस्या के बल से वानरादि को उस स्थान से बाहर निकाला। सर्वप्रथम वानर-ऋक्षगण को अपने नेत्र बन्द करने पड़े, कुछ क्षण पश्चात् वे सभी स्वयं को गुफा के बाहर समुद्रतट पर पाते हैं।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि गुफा में प्रवेश के समय वानरगण समुद्रतट के पास नहीं थे। वे विन्ध्यपर्वत के नैर्ऋतकोण से खोजते-खोजते दक्षिण भारत की पर्वतमालाओं तक पहुँचे थे। परन्तु जब वे नेत्र ढाँके हुए गुफा से बाहर निकले, तब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखते हैं कि वे सब सागर के सम्मुख प्रस्रवण गिरि के पास पहुँच गये हैं। यही आश्चर्य वाराणसी के केदार मालेकर के साथ घटित हो चुका है। मालेकर वाराणसी में स्थित ऐसे ही आश्रम में विश्वेश्वरगंज से होकर प्रवेश करते थे। परन्तु वे लौटते समय स्वयं को कभी वाराणसी के उत्तर, कभी दक्षिण, तो कभी पूर्व अथवा पश्चिम में पहुँचा पाते, जबकि वास्तव में जहाँ से (विश्वेश्वरगंज) प्रवेश किया था, वहीं से वापस आना था। इसका पूर्ण विवरण महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज प्रणीत 'साधुदर्शन सत्प्रसंग' ग्रन्थ में विस्तार से अंकित है। इसका तात्पर्य यह कि सिद्धभूमियों का कोई निश्चित स्थान संकेतित नहीं किया जा सकता। उसका प्रकाशन कहीं भी हो सकता है।

समस्त अध्ययन से यह ज्ञात हो सका है कि सिद्धभूमियों की सत्ता Time तथा Space के अन्तर्गत नहीं रहती। वहाँ की वस्तुओं पर भी काल का प्रभाव कदापि नहीं पड़ सकता। मतंगाश्रम में श्रीराम ने इसी तथ्य का साक्षात्कार किया था। तब वहाँ भक्तिमती शबरी विद्यमान थी। इस आश्रम का प्रकाशन पम्पासरोवर के पश्चिम में हुआ था, जो सम्प्रति गुप्त है। उक्त है—

ततस्तद्राम पम्पायास्तीरमाश्रित्य पश्चिमम्।
आश्रमस्थानमतुलं गुह्यं काकुत्स्थ पश्यसि॥

—वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड

इस आश्रम पर मत्त एवं हिंस्र पशु भी आक्रमण नहीं करता। वहाँ स्वप्न में व्यक्ति जो कुछ देखता है, जाग्रत् होने पर वही सब प्राप्त कर लेता है। विषम मनःस्थिति वालों को यहाँ के रक्षक प्रहार करके भगा देते हैं। (वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड)

श्रीराम वहाँ शबरी को देखते हैं। वहाँ बहुसंख्यक सिद्ध तपस्यारत थे, जो राम के वनगमन के समय (चित्रकूट निवासकाल में) अर्थात् उस समय से दस वर्ष पूर्व उच्चस्तरीय लोकों में चले जा चुके थे। शबरी ने श्रीराम को यह दिखलाया कि करीब दस वर्ष पूर्व ऋषियों ने स्नान के अनन्तर जो वस्त्र सूखने के लिए फैलाकर छोड़ दिये थे, वे अभी तक उसी प्रकार गीले हैं और सिद्धों द्वारा छोड़ी कमल की मालायें अबतक अम्लान हैं, मुरझाई नहीं हैं, मानो वस्त्र अभी धोकर फैलाये गये हैं तथा मालायें अभी उतारी गयी हैं! इसलिए यह स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ काल-प्रभाव नहीं है।

ऐसे सिद्ध स्थानों में विचित्रता है। ये सभी सूक्ष्मसत्ता में अवस्थित रहते हैं। उपयुक्त व्यक्ति के समक्ष व्यक्त हो जाते हैं। कार्य अथवा प्रयोजन समाप्त होते ही इनकी व्यक्त सत्ता (स्थूल अवस्था) पुनः अव्यक्त में (सूक्ष्म में) प्रविलीन हो जाती है। महाभारत के वनपर्व में भी यही तथ्य अंकित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दमयन्ती राजा नल को खोजते-खोजते वन में चली जा रही थीं। अनेक संकट तथा बाधा का अतिक्रमण करने के अनन्तर उन्हें तीसरे दिन वन में एक सुन्दर तपोवन परिलक्षित होता है। दमयन्ती ने देखा कि उसमें संयमी-मितभोजी ऋषिगण विराजमान हैं। सबने वल्कल तथा मृगछाला धारण कर रक्खी है। ऋषियों ने दमयन्ती को सान्त्वना प्रदान करते हुए भविष्य का यह आभास दिया कि महाराजा नल निषध प्रदेश पर पुनः सिंहासनारूढ़ होंगे और उनके साथ दमयन्ती का पुनर्मिलन होगा। यह कह कर ऋषिगण आश्रम के साथ अन्तर्हित हो गये। दमयन्ती आश्चर्यान्वित हो उठीं। सोचने लगीं कि यह कैसी घटना हो गयी? वे तपस्वी-आश्रम-नदी-फल-फूलों से भरे वृक्ष कहाँ गये?

महाभारत के अनुसार पाण्डवों ने भी अपने वनवास में महर्षि लोमश तथा धौम्य के साथ अनेक सिद्धाश्रमों का दर्शन प्राप्त कर उनसे सम्बन्धित अलौकिकता का साक्षात् किया था। कण्वाश्रम मालिनी नदी के तट पर स्थित कहा जाता है। यहाँ वटदादा का जंगल है। इस अंचल से लेकर चण्डीपर्वतपर्यन्त जो पर्वतमाला चली गयी है, यहीं कतिपय साधकों को कण्वाश्रम का तथा महाभारतकालीन द्रोणपुत्र अश्वत्थामा का दर्शन हुआ था। अश्वत्थामा को 5000 वर्षों के लिए शाप दिया गया था, जो अवधि कभी की व्यतीत हो चुकी है। कैलास पर्वत के पहले मणिमंत प्रदेश को भी सिद्धों की गुप्त स्थली कहते हैं। वर्तमान में इसे माणा शिखर कहा जाता है। भौगोलिक दृष्टि से गंधमादन पर्वत तथा माणा को अलकनन्दा के पश्चिम तट पर तथा नन्दादेवी को अलकनन्दा के पूर्व तट पर स्थित मानते हैं। अलकनन्दा के उभय पार्श्व को सिद्धों की विहरण स्थली कहा गया है। महाकवि कालिदास ने मन्दाकिनी के पार्श्व में स्थित उपत्यका श्रेणी को गौरी का पिता (पार्वती का पिता) कहा है। यह भी अत्यन्त रहस्यावृत प्रदेश है। श्री शंकराचार्य, गोरक्षनाथ, माधवाचार्य, गोस्वामी तुलसीदास, स्वामी रामतीर्थ आदि को इस क्षेत्र में अलौकिक दर्शन मिल चुका है। यमुनोत्तरी पर आज भी कतिपय सिद्ध रहते हैं तथा भीषण हिमपात में भी वह स्थान नहीं छोड़ते। ऐसे ही एक महात्मा ने मुझे बतलाया था कि दीपावली के पश्चात् से लेकर मकर संक्रान्तिपर्यन्त यहाँ भोज्य-सामग्री नहीं मिलती। इस अवस्था में उन्हें बीच-बीच में यक्ष लोग सप्ताहपर्यन्त की भोज्य-सामग्री (कन्द-मूल इत्यादि) दे जाते हैं। इससे भयानक शीतकाल में महात्मागण को कोई कष्ट नहीं होता। मुझे ऐसे ही दिव्य कन्द को उन्होंने दिखलाया था। ऐसे विशाल कन्द बदरीनाथ पैदल मार्ग पर भी मुझे देखने को मिले थे।

मुझे एक समय अजपा सिद्ध जनार्दन स्वामी का सान्निध्य गरुड़चट्टी के पास मिला था। कालान्तर में इन्होंने लछमनझूला पुल के पार 'पूर्णानन्द योगाश्रम' स्थापित किया था। इनके गुरु थे स्वामी पूर्णानन्द। जनार्दन स्वामीजी इच्छासिद्ध महापुरुष थे। मैं इनके यहाँ करीब 7 माह तक था। इनका सम्बन्ध मतंगाश्रम (सिद्धाश्रम) से था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनका कथन था कि मतंगाश्रम आज स्थूल सत्ता में कभी भी प्रकट हो जाता है। वहाँ हजारों योगी सैकड़ों वर्ष से ब्रह्मचिन्तन में लीन हैं। तन्त्र तथा योग की अपूर्व धारा वहाँ बह रही है। पंचवटी नासिक के पास ऐसे ही एक स्थान का सन्धान स्वामीजी को मिला था। जनार्दन स्वामीजी ने वहाँ 49 दिन निराहार रहकर ऐसे ही एक स्थान का दर्शन पाया था।

सिद्ध समुदाय के अनुसार गंगाद्वार से कैलासपर्यन्त का क्षेत्र सिद्धमण्डल है। इसी तरह यमुनोत्तरी से लेकर नन्दादेवी तक का क्षेत्र भी सिद्धक्षेत्र है। इसमें आज भी सिद्ध-विद्याधर-यक्ष-गन्धर्व परिलक्षित होते हैं। इसी प्रकार श्रीशैल पर्वत, नन्दादेवी तथा बिहार स्थित गृद्धकूट पर्वत क्षेत्र में 'प्रत्यक् बुद्ध' श्रेणी के सिद्ध विचरण करते रहते हैं। दक्षिण भारत में सिद्धों की विहरण स्थली के रूप में अरुणाचल पर्वत की भी प्रसिद्धि है। यह भगवान् दक्षिणामूर्ति का तेजोमय रूप है। रमण महर्षि कहते थे कि यहाँ भी कन्दराओं में युगजीवी सिद्धगण रहते हैं। आज भी वहाँ उनकी सत्ता अनुभूत होती है। किंवदन्ती तथा जनधारणा है कि कार्तिक मास के उत्सव में भगवान् सदाशिव भी आते हैं। एक बार एक पंगु व्यक्ति अनेक कष्ट के साथ अरुणाचल की परिक्रमा कर रहा था। उसने निश्चय किया कि अब लौटकर नहीं आना है। परिक्रमा करते समय एक तेजपुंज ब्राह्मण को देखा जो उसे बुला रहे थे। ब्राह्मण ने इस पंगु से कहा, "तुम वैसाखी फेंक दो। आज भगवान् अरुणाचल की कृपा से तुम्हारा रोग दूर हो गया।" यह सुनते ही पंगु व्यक्ति देखता है कि उसके दोनों पैर ठीक हैं। सामने देखने पर उस ब्राह्मण का कहीं सन्धान ही नहीं मिला।

रमण महर्षि इस घटना का उल्लेख करते हुए यह बतलाते हैं कि ये तेजपुंज ब्राह्मण अरुणगिरि योगी थे। एक दिव्य वटवृक्ष के नीचे ये सूक्ष्मदेहधारी महायोगी दीर्घकाल से आसीन हैं। भाग्यशाली साधक (इनकी कृपा होने पर ही) इनका दर्शन पा लेते हैं। इनकी मौन दीक्षा द्वारा रमण महर्षि कृतार्थ हो सके थे। यह घटना सन् 1906 ई० की है। रमण महर्षि पर्वत पर चक्रमण कर रहे थे। हठात् देखते हैं कि वटवृक्ष का एक बड़ा ताजा पत्ता मार्ग में पड़ा है। महर्षि को विस्मय हो गया कि अरुणाचल में तो वटवृक्ष का सर्वथाभाव है। यह पत्ता कहाँ से आ गया। अत्यन्त कौतूहल के साथ वे अन्वेषणार्थ आगे बढ़े। पथ दुर्गम तथा प्रस्तराकीर्ण था। कुछ आगे जाकर देखते हैं कि सम्मुख एक विशाल वटवृक्ष है। कठोर पाषाण के मध्य यह वृक्ष कैसे उगा? यह क्या रहस्य है?

अब महर्षि इस वृक्ष की ओर अग्रसर होते हैं। पास आते ही एक भ्रमर उन्हें काट लेता है, साथ ही अनेक भ्रमर पत्थरों के बीच से निकलने लगे। महर्षि को विवश होकर वापस लौटना पड़ा। सोचा कि इस अलौकिक वटवृक्ष का सान्निध्य होने देना अरुणाचलेश्वर को अभिप्रेत नहीं था। उन्होंने वापस आकर इस घटना का वर्णन अपने भक्तों से किया। आश्रमवासी भक्तगण ने अनेक अन्वेषण के उपरान्त भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस वटवृक्ष का सन्धान कहीं नहीं पाया। जैसे वह वटवृक्षयुक्त सिद्धभूमि आविर्भूत हो गयी थी, वैसे ही वह सूक्ष्म में अन्तर्हित हो गयी।

महाप्रभु विजकृष्ण गोस्वामी के गुरु ब्रह्मानन्द महाराज मानसरोवर के पास मानतलाब नामक गुप्त स्थान पर रहते थे। इनकी ख्याति परमहंसजी के नाम से थी। इनका कथन था कि भौगोलिक मानसरोवर यथार्थ मानसरोवर नहीं है। उसका दर्शन सद्गुरु योगी की कृपा बिना नहीं हो सकता। जो यथार्थ मानसरोवर है वहाँ किन्नर, गन्धर्व तथा सिद्धों का निवास है। वह है दिव्यभूमि। पाण्डवों ने महर्षि लोमश की कृपा से यहाँ का दर्शन पाया था। परमहंसजी को परकाया की अलौकिक विधि यहाँ के सिद्धों ने बतायी थी।

महायोगी त्रिपुरलिंग भी एक गुप्त स्थल पर पहुँचे थे। यह स्थान असम का जयन्तिया पर्वत है। पर्वतांचलस्थ गहन वन में उनको एक स्थान दृष्टिगोचर हुआ। उन्होंने वहीं रात्रि व्यतीत करना चाहा। अर्द्धरात्रि में सम्पूर्ण वन प्रान्तर गम्भीर निस्तब्धता से व्याप्त हो उठा। तब योगीराज त्रिपुरलिंग शिवाराधना में तल्लीन थे। ध्यान से व्युत्थित होने पर देखते हैं कि गर्भगृह एक दिव्य ज्योति से उद्भासित है एक जटाजूट समन्वित तेजोद्दीप्त महापुरुष उनके सामने खड़े हैं। ये योगीराज को अनेक प्रकार का साधनोपदेश देकर अन्तर्हित हो गये। उसी के साथ योगीराज देखते हैं कि वहाँ न तो मन्दिर है, न उन महापुरुष का कोई चिह्न शेष है। प्रतीत होने लगा कि ये सिद्ध महापुरुष उस सिद्ध मन्दिर के साथ आविर्भूत हुए थे और कार्य सम्पन्न करके अन्तर्हित हो गये। उनके साथ-साथ वह सिद्धभूमिरूप मन्दिर भी सूक्ष्मसत्तान्तर्गत समाहित हो गया।

बंगाल के प्रख्यात लेखक-पर्यटक प्रमोद कुमार चट्टोपाध्याय को भी प्रयाग क्षेत्र में झूँसी के पास ऐसी ही सिद्ध गुफा का दर्शन हुआ था। यह विवरण उनके बंगभाषा में लिखित ग्रन्थ 'अवधूत ओ योगिसङ्ग' में अंकित है। वे एक परिव्राजक साधु के साथ झूँसी पहुँचे। वहाँ उल्टा किला के पास देखते हैं कि किले के भग्नावशेष के नीचे पर्वत पर नीचे की ओर कई गुफायें बनी हैं। ऊपर कमरे हैं जिसकी दालान से इनका मार्ग है। 8-10 सीढ़ियाँ उतरते ही एक गली जैसा संकीर्ण मार्ग मिलता है। उसी के दोनों ओर गुहारूपी भूगर्भस्थ प्रकोष्ठ बने हैं। ऐसी ही एक गुफा में दीप जल रहा था। उस दीपक के प्रकाश में मृगचर्मासनासीन एक सिद्ध का दर्शन प्राप्त हुआ, जिसका नाम बाबा कल्पनाथ ज्ञात हुआ। उनकी आँखें तेजोद्दीप्त थी। जब इन लोगों ने उन्हें प्रणाम किया, तब बाबा आशीर्वादात्मक मुद्रा में बोले, "जाओ! बाहर देखो, तब आना।" बाबा का आदेश हो गया, अतः विवश होकर इन लोगों को बाहर आना पड़ा। ये आगे बढ़े। वहाँ भी एक गौरवर्ण साधु आसीन थे, जिनकी देह चन्दन चर्चित थी। इनको देखकर साधु ने बैठने का आदेश दिया और वहीं भोजन करने के लिए कहा। प्रमोद बाबू तथा उनके सहयात्री साधु इससे विस्मयाभिभूत हो गये। उन्हें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वास्तव में क्षुधा का अनुभव हो रहा था। उस निर्जन गुहा में साधु ने घृतसिक्त रोटी, साग, अचार तथा मालपूआ प्रस्तुत किया। सभी वस्तु ताजी तथा गर्म थी। उस गुफा में ऐसा सम्भव कैसे हो सका? कुछ विश्राम करने के अनन्तर प्रमोद बाबू अपने साथी के साथ पुनः कल्पनाथ बाबा की गुफा में गये। इस बार कल्पनाथ बाबा ने इन लोगों को बैठाया। कुशलक्षेम के अनन्तर बाबा कल्पनाथ हठात् उठकर खड़े हो गये। प्रतीत हुआ कि मानों खड़े-खड़े ही कहीं खो गये हों। कुछ समय के अनन्तर वे पुनः आसनासीन हो गये। प्रमोद बाबू ने उनसे अचानक खड़े होने का कारण जानना चाहा। बाबा निःश्वासपूर्ण शब्दों में कहने लगे, "हाय-हाय! परमात्मा का क्या खेल है? क्या समझाऊँ और क्या समझूँ? रेल लाइन में एक मरद ऐसा गिरा कि दोनों चक्के से काटा गया। इंजन भी पटरी से उतर गया, जाओ देखो!"

प्रमोद बाबू तथा उनके सहयात्री साधु अवाक् थे। इस भूगर्भस्थ गुहारूपी प्रकोष्ठ में बैठ कर ये क्या कह रहे हैं? रेल लाइन तो दूर है। वे लोग बाबा के कहने पर बाहर निकले। देखते हैं कि लोगों की भीड़ आगे-सामने भागी चली जा रही है। वे भी उस जनसमूह के साथ भागे। कुछ दूर पर रेल लाइन के पास भारी भीड़ एकत्र थी। वहाँ एक व्यक्ति का रक्तरंजित शव पड़ा था। इंजन भी पटरी से उतर गया था। अब इन लोगों ने विचार किया कि घटनास्थल पर जाने से क्या लाभ? अतएव दोनों पुनः बाबा कल्पनाथ के पास जाने को उद्यत हो गये। वे पुनः उस टीले की ओर बढ़े जहाँ गुफामार्ग को देखा था। चारो ओर घण्टों घूम-फिर कर अन्वेषण द्वारा वह स्थान न मिल सका। अन्त में पूछने पर वहाँ किसी को भी ऐसी गुफा तथा बाबा कल्पनाथ के सम्बन्ध में कोई जानकारी ही नहीं थी। प्रतीत होता है कि वह भी किसी सिद्धभूमि का सामयिक अवतरण-मात्र था।

ज्ञानगंज तथा सूर्यविज्ञान के सम्बन्ध में तथ्य-संकलन के पूर्व ऐसी सिद्धभूमियों के सम्बन्ध में कुछ और विवरण देना आवश्यक प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में श्रद्धेय कविराजजी ने रामठाकुर तथा उनके द्वारा परिदृष्ट कौशिकी आश्रम के सम्बन्ध में प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया था। उनका साक्षात्कार इन महापुरुष से सन् 1923 के फरवरी माह में हुआ था। इस समय वाराणसी में ये महापुरुष केदारघाट के पास चिन्तामणि गणेश मन्दिर के निकट एक सज्जन के घर ठहरे थे। कविराजजी अपने 2-3 साथियों के साथ इनके दर्शनार्थ वहाँ गये। देखा कि एक 60-65 वर्षीय सत्पुरुष एक श्वेत शुभ्र चादर ओढ़े तथा तुलसी की माला पहने बैठे हैं। मुख विनोदपूर्ण हास्य से सुशोभित था। अस्तित्व से धीर-स्थिर-सौम्यभाव टपक रहा था। सबको देखते ही उन्होंने नम्रभाव से नमस्कार करके सबको आदर से बैठाया। उनके साथ कथावार्त्ता से प्रतीत हुआ कि वे वास्तव में महापुरुष हैं। उनका जीवन अद्भुत था। भोजन एक प्रकार से नहीं करते थे, तथापि शरीर अत्यन्त सुदृढ़ था कि उनके साथ पैदल चलना कठिन हो जाता। तदनन्तर परिचय गाढ़ होने पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविराजजी उनको नौका से गंगाविहार करवाते। नौका में ही गम्भीर तत्त्वों की पर्यालोचना चलती रहती।

इनका जीवन अलौकिक था। इनके जीवन की अभिज्ञता इतनी विचित्र थी कि साधारण व्यक्ति को उस पर विश्वास नहीं होगा। हिमालय अवस्थान काल में ये घटनायें घटित हो चुकी थीं। ये प्रचार के विरुद्ध थे। अत: उनके शिष्यों से ही इनके गुरु का वृत्तान्त ज्ञात हो सका। एक दिन इनके गुरुदेव अचानक 2-3 साधकों के साथ इनके सामने प्रकट हो गये तथा पूछा कि कौन-कौन व्यक्ति कुम्भक प्राणायाम की अवस्था में लगातार 4-5 दिन रह सकता है? रामठाकुर महाशय ने तथा गुरुदेव के साथ आये 2 लोगों ने प्रकट किया कि वे यह युक्ति जानते हैं। अब गुरुदेव ने कौशिकी तीर्थ की यात्रा प्रारम्भ की। कौशिकी तीर्थ जाने के लिए बदरीनाथ से एक गुहापथ (गुफा का मार्ग) है जो अतिगुप्त तथा जनमानस से अगोचर है। इस मार्ग से चलकर वहाँ 3 माह में पहुँचा जा सकता है, परन्तु रामठाकुर छः माह में पहुँच सके।

इस प्रकार गुरुदेव के साथ रामठाकुर तथा उन दो साधकों ने कौशिकी की यात्रा प्रारम्भ की। भयानक दुर्गमपथ। कभी-कभी गुफा में चलते-चलते 3-4 दिन व्यतीत हो जाते, प्रकाश का भी दर्शन न होता। हिमालय के उस निभृत स्थल में अनेक महात्मा पता नहीं कितने समय से ध्यानावस्थित आसीन थे। रामठाकुर को पता चला कि इनकी आयु 1000 वर्ष से कदापि कम नहीं है। दूर से देखने पर पता चलता कि ये सब प्रस्तर प्रतिमाएँ हैं। हड्डी पर केवल त्वचा का आवरण-मात्र बचा था। ये महात्मा इतने विशाल थे कि उनके समक्ष खड़े होने पर रामठाकुर उनके मस्तक तक की ऊँचाई तक ही थे, जबकि वे महात्मा पद्मासनस्थ थे और रामठाकुर सम्मुख खड़े थे। इन्होंने छः आसनों पर छः महात्माओं को बैठे देखा। अनेक आसन खाली पड़े थे। प्रतीत हो रहा था मानो उस पर जो आसीन थे, वे देह त्याग कर चुके हैं। उन रिक्त आसनों में अभी भी इतनी शक्ति थी कि उस पर रामठाकुर और उनके साथी नहीं बैठ सके। सर्वान्त ने गुरुदेव ने रामठाकुर और उनके दोनों साथियों को आदेश दिया कि वे लोग उक्त छः महात्माओं की सेवा करते रहें, तथा यह कहकर गुरुदेव अन्तर्हित हो गये।

रामठाकुर अपने दोनों साथियों के साथ उनकी सेवा करने लगे। वहाँ भोजन के नाम पर फल इत्यादि कुछ नहीं था। केवल पत्तों का रस पीकर इन लोगों को समय व्यतीत करना पड़ा। ये लोग पत्तों की टहनी से वहाँ का स्थान साफ करते। वहाँ बगल के झरने का जल छोटे प्रपात के रूप में गिरा करता था, जिससे एक छोटी झील बन गयी थी। पत्तों पर इन पद्मफूलों के डण्ठल के टुकड़े करके महात्मागण के समक्ष रख देते। यदि दैवसंयोग से वन में कोई फल मिल जाता, तब उसे भी वहाँ रखते। महात्मागण के कमण्डलु को उस झरने के निर्मल जल से रोज भरकर रखना इनका कार्य था। वन में प्राप्त पुष्पों से इन महात्माओं की चरण-पूजा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते। दूसरे दिन आने पर पता चलता कि महात्मागण के समक्ष पत्तों पर रखा द्रव्य गायब है। इससे इनको ज्ञात हो जाता कि महात्माओं ने सेवा स्वीकार कर ली है। जिस दिन इन लोगों को वह स्थान छोड़कर जाना था, उस दिन जब वे इन महात्मागण को प्रणाम करने गये, तब महात्मागण ने स्मित हास्य तथा वरमुद्रा द्वारा उन्हें विदा किया।

इसी दिन रामठाकुर के दोनों सहयात्री अपने गन्तव्य की ओर चले गये। अब रामठाकुर मार्ग में परिचित हुए कतिपय साधक संन्यासीगण के साथ तपःक्षेत्र हिमालय के इस रहस्यावृत क्षेत्र की ओर अग्रसर होने लगे। एक दिन पर्वत के एक ओर देखते हैं कि एक अतिवृद्ध संन्यासी धूनी जलाकर बैठे हुए हैं। उनके पार्श्व में एक कमण्डलु तथा चिमटा रखा था। कुछ समय पश्चात् एक विषधर सर्प अपने आप आ गया। वृद्ध संन्यासी ने सर्प को पकड़कर अग्नि में फेंक दिया। वह सर्प अग्निदग्ध हो गया और उसका अवशेष एक पिण्ड में परिणत हो गया। संन्यासी ने चिमटे द्वारा उसे सात भागों में विभक्त किया। चारो दिशाओं में एक-एक तथा उर्ध्व दिशा में एक टुकड़े को विसर्जित करके छठें टुकड़े को अग्नि में अर्पित कर दिया। बचे सातवें टुकड़े का उस वृद्ध संन्यासी ने भक्षण किया और मिट्टी में शवासन में लेट गया। क्रमशः संन्यासी का शरीर फूलते-फूलते एक प्रकाण्ड आकृति में परिणत हो गया। अब उस देह से एक 16 वर्ष का सुन्दर युवक निकला। उस युवक ने अपने वृद्ध निर्जीव पुराने शरीर को धूनी में फेंका और उनका कमण्डलु एवं चिमटा लेकर कहीं चला गया।

इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् रामठाकुर के गुरु पुनः प्रकट हो गये। अब केवल रामठाकुर एवं उनके गुरु ही पथिक के रूप में थे। मार्ग में जिन संन्यासीगण का साथ था, वे अपने-अपने गन्तव्य की ओर चले गये। रास्ते में पुनः अनेक उच्चस्तरीय साधक तथा महात्मागण का दर्शन मिला। एक दिन रामठाकुर अकेले गुरु के लिए फल खोजने निकले। जहाँ पहुँचे वहाँ तो वृक्ष-वनस्पति का दूर-दूर तक नामोनिशान तक नहीं था। चतुर्दिक् था हिममण्डित धवल प्रदेश। इस स्थान पर फल कहाँ से मिले? तब भी रामठाकुर गुरु के लिए फल-संचय हेतु विकल से खोजते जा रहे थे। घूमते-घूमते तुषारमण्डित एक विराट् पर्वतशिखर पर जा पहुँचे। वहाँ देखते हैं एक अपूर्व सुषमायुक्त दृश्य! दिव्यद्युति समन्वित अपरूप युगल नर-नारी। रामठाकुर ने तीव्र गति से वहाँ जाकर उनको प्रणाम किया। उनमें से मातृमूर्ति ने अत्यन्त स्नेह के साथ फल रामठाकुर को दिया और अगले ही क्षण वे दोनों तुषारमण्डित पर्वत में अन्तर्हित हो गये। जब रामठाकुर फल लेकर गुरुदेव के पास पहुँचे, गुरुदेव ने फल रामठाकुर को ही देकर कहा, "फल तुमको माता पार्वती ने दिया है। यह तुम ग्रहण करो।"

(यह सब घटना उसी रहस्यावृत कौशिकी आश्रम की भूमि से सम्बन्धित है, जो हमारी पृथ्वी पर संलग्न होने पर भी इससे अलग है। इसका क्षेत्र कितना विस्तृत है, इसका विवरण नहीं दिया जा सकता। जिस पर आश्रम के सिद्धगण की कृपा हो, वही इसमें प्रवेश पा सकता है।) इस क्षेत्र के निर्जन प्रान्तर में एक विशाल गुफा थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस गुफा में विभिन्न आसनों पर ध्यानमग्नावस्था में योगीगण विराजित थे। कब से विराजित थे और कब तक रहेंगे, कोई नहीं जानता। उसमें से एक आसन रिक्त था। गुरु के आदेशानुसार रामठाकुर उस आसन पर बैठ गये और इसी के साथ गुरुदेव ने वहाँ से प्रस्थान किया। अब रामठाकुर की तपस्या प्रारम्भ होती है। कितने वर्ष वे वहाँ समाधिस्थ थे, कौन बता सकता है? कालान्तर में समाधिस्थ अवस्था में इनको गुरुदेव ने प्रबोधित किया। नेत्र खुलने पर रामठाकुर देखते हैं कि उनके पास ही उनके पहले वाले दोनों सहयात्री भी आसनासीन हैं और एक ने गले में अद्भुत नारायण शिला धारण कर रक्खी है।

कुछ समय पश्चात् रामठाकुर ने कविराजजी को बताया था कि कौशिकी आश्रम, ज्ञानगंज आदि की तरह हिमालय में एक गुप्त साधना केन्द्र है। वहाँ पर रामठाकुर ने एक विराटकाय महापुरुष का दर्शन किया था। तत्पश्चात् वे ऐसे ही एक आश्रम 'वशिष्ठाश्रम' में गये थे तथा वहीं पर रात्रि व्यतीत की। अपने 30 वर्षीय हिमालय-प्रवास में रामठाकुर ने अनेक योगाश्रमों का दर्शन किया जिसमें योगेश्वर स्थान भी था। यह आश्रम नीची भूमि पर स्थित है। यहाँ न बर्फ है न वृक्ष है। कोई मन्दिर भी नहीं है। चारों कोनों में खम्भे बने हैं जिस पर रखे विशाल पत्थर पर आसनासीन एक उज्ज्वल शान्तमूर्ति ऋषि का दर्शन मिला। मुनि का मुखमण्डल जटाजूट से सुशोभित है। इनकी ओर से अनिमेष दृष्टि से एक देवी देख रही हैं। रामठाकुर यहाँ 5 दिन थे। आश्रम के नीचे एक जलस्रोत था जहाँ से जल लाया जाता। आश्रम में प्रतिदिन नृत्यगान करते हुए पुष्पाभूषणशोभित एक बालिका आती थी। शिवगौरी को पुष्पमाला पहना कर पता नहीं सायंकाल कहाँ चली जाती।

रामठाकुर आगे बढ़ने पर एक सुदीर्घ अन्धकारपूर्ण पर्वत गुफा में कई दिन चलते-चलते एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ न दिन था न रात्रि। गोधूलि के समान एक मृदु आलोक प्रसरित हो रहा था। बाद में ज्ञात हो सका कि वहाँ एक स्थान पर बैठे दीर्घकाय महापुरुष की यह अंगद्युति है जो गुफा में प्रकाशित हो रही है। तभी वहाँ न दिन है न रात। उस गुफा से बाहर आने पर तब सूर्य का आलोक परिलक्षित हो सका। इन्हें अब ज्ञात हुआ कि वह मीलों लम्बी सुरंग जैसी गुफा पर्वत भेदकर दक्षिण से उत्तर की ओर गयी है। उसे पार करने के अनन्तर इन्होंने एक विशाल पर्वतशृंग पर (अन्तःप्रेरणा से) आरोहण किया। इसी के नीचे कौशिकी पर्वतमाला थी। इसी के एक ओर कौशिकी आश्रम है। यह कंकणाकृति है। चारो ओर का प्रदेश हिमाच्छादित है, तथापि कौशिकी आश्रम का क्षेत्र हिमरहित है। आश्रम की भूमि शिलामयी है। नीचे अति वेगवती नदी प्रवाहित है, जिसे आश्रम वाले मन्दाकिनी कहते हैं। इसे पार करना अत्यन्त कठिन है। शिलाओं पर पैर रखकर इसे किसी प्रकार पार करना पड़ा। आश्रम में विचित्र जाति के पुष्प-फल के वृक्ष हैं। वैसे इस देश में नहीं मिलते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामठाकुर ने कविराजजी से बताया कि यह आश्रम मानसरोवर से अति दूर उत्तर में है। इस पर यह शंका प्रकट की गयी कि संसार के पर्वतारोहियों तथा यात्रियों ने मानसरोवर के आसपास का समस्त प्रदेश खोज लिया है, परन्तु कहीं ऐसा भौगोलिक स्थान अथवा आश्रम नहीं मिला? रामठाकुर का उत्तर था कि वे स्थान प्रत्येक को परिलक्षित नहीं होते। योगी की कृपा से ही इनका पंता चलता है।

काशी का बालक केदार मालाकर भी एक विचित्र रहस्यमय आश्रम में पहुँचा था। यह बालक सूक्ष्म शरीर से लोकलोकान्तर जाता तथा वहाँ का संवाद कविराजजी को देता रहता था। एक दिन इसके साथ विचित्र घटना घटित हो गयी। यह सब विवरण 'साधुदर्शन सत्प्रसंग' में अंकित है। केदार को लगा कि उनके घर में कोई महात्मा समागत हैं। उन्होंने केदार से कहा कि, "एक महात्मा चाहते हैं कि तुम उनसे मिलो।" केदार ने पूछा कि वे कहाँ रहते हैं। आगन्तुक महात्मा बोले, "तुम विश्वेश्वरगंज (वाराणसी का एक क्षेत्र) पहुँचो, वहाँ जाने पर तुम स्वयं जान जाओगे कि कहाँ जाना है।" और महात्मा अन्तर्ध्यान हो गये।

केदार अपने भानजे की साइकिल माँगकर विश्वेश्वरगंज पहुँचा। सायंकाल 4 बज रहा था। वहाँ पहुँचते ही इसका भाव परिवर्तन होने लगा। दृष्टि के सामने से जनसंकुल भौतिक विश्वेश्वरगंज लुप्त हो गया। सामने एक विशाल मैदान प्रत्यक्ष हुआ जिसके मध्य की भूमि कुछ उच्च थी। वहाँ वृक्ष लगे थे और एक आश्रम था। आश्रम तथा केदार जहाँ खड़ा था उसके मध्य एक खेत था। केदार उस खेत की मेड़ से साइकिल लेकर आश्रम में पहुँचा। वहाँ एक महात्मा आसीन थे। दो घण्टे कथावार्त्ता चली। सन्ध्या अधिक हो जाने पर महात्मा ने वापस जाने को कहा। केदार अपनी साइकिल लेकर खेत पार करते हुए बाहर निकला। देखता है कि विश्वेश्वरगंज न पहुँच कर इलाहाबाद को जाने वाले राजमार्ग पर जा पहुँचा है, जहाँ सन्त कबीर की जन्मस्थली लहरतारा है। वह यहाँ से घर पहुँचा। आश्चर्य तो यह था कि गया था पूर्व दिशा से और जब खेत से बाहर निकला तब पश्चिम की ओर कैसे आ गया?

केदार इसी प्रकार अगले दिन पुनः महात्मा के दर्शन को गया। विश्वेश्वरगंज पहुँचने पर वहाँ का जनसंकुल बाजार लुप्त हो गया और वही खेत मिला, जिससे होकर वह महात्मा के पास पहुँचा। वहाँ केदार ने पूछा, "महाराज! यह स्थान कहाँ है, इसकी स्पष्ट स्थिति क्या है?" महात्मा ने कहा, "अच्छा तुम स्वयं देखो!" और उन्होंने पास पड़े एक बड़े प्रस्तरखण्ड को उठाया। वहाँ से केदार ने देखा कि उस प्रस्तरखण्ड के नीचे अनन्त शून्य है। एक विराट् गहरा गढ़ा जैसा है। इस शून्य में असंख्य ग्रह-नक्षत्र घूम रहे हैं। केदार कुछ भी न समझ सका। महात्मा ने कहा, "आश्चर्य की कोई बात नहीं है, मैं जहाँ हूँ, वहाँ से सभी स्थान सन्निकट है।" और पुनः प्रस्तरखण्ड यथास्थान रख दिया। अब केदार के नेत्रों पर हस्त-संचालन करके महात्मा ने कहा कि, "अब अपना घर देखो"। केदार अपना घर देखने लगा। उसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने परिवार के सभी सदस्यों की आपसी बातचीत भी सुनाई पड़ी। महात्मा ने कहा, "अब तुम घर जाओ।" केदार उसी रास्ते (खेत से) बाहर आया। परन्तु आश्चर्य। आज तो वह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पास निकला, जो काशी के दक्षिण में है। विचित्र रहस्य है। खेत एक ही है, परन्तु बाहर निकलने पर कभी काशी के पूर्व में, कभी पश्चिम में, कभी दक्षिण में स्वयं को पाता है।

वास्तविकता है कि यह सब सिद्धभूमि इस प्रकार से स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों हैं। किसी भौगोलिक स्थान से सम्बन्ध न होने पर भी वे जब चाहे जहाँ सम्बन्धित हो जाती हैं। स्थूल प्रतीयमान होने पर भी कोई इसे देख नहीं सकता। जब वहाँ के अधिष्ठाता की इच्छा हो तभी कोई इसे देख सकेगा। तब यह भूमि किसी भी लौकिक देशकाल के साथ आश्चर्यजनकरूपेण युक्त हो जाती है। यह चाहे जहाँ प्रकट हो सकती है। ऐसा ही तत्त्व ज्ञानगंज का प्रतीत होता है। वही सूर्यविज्ञान की उत्स भूमि है। यहाँ इस आलोचना का यह तात्पर्य है कि केवल ज्ञानगंज का विवरण देने से यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि यह कल्पित वर्णन-मात्र है। इसी कारण अनेक सिद्धाश्रमों का वृत्तान्त यहाँ देना आवश्यक प्रतीत हुआ, जिनका वर्णन प्रामाणिक है। इससे ज्ञानगंज के अस्तित्व के प्रति अध्येता आश्वस्त हो सकेंगे।

इस वृत्तान्त के अनन्तर अब ज्ञानगंज का कुछ परिचय देना आवश्यक है, जिसे कविराजजी के गुरुभाइयों ने बाबा विशुद्धानन्दजी से सुनकर बतलाया था। इस स्थान के चारो ओर उत्तुंग पर्वतमाला नील मेघराशि से सुशोभित है। बीच-बीच में झरने तथा पहाड़ी नदी झंकार के साथ बह रही हैं। उपत्यकाओं के मध्य 7-8 मील की घाटी में एक विशाल आश्रम स्थित है। आश्रम के चतुर्दिक् प्राकार (Boundary) आवेष्ठित है। प्राकार के चारो ओर जलपूर्ण झील बह रही है। बाहर आने-जाने के लिए झील के ऊपर एक धनुषाकृति सेतु निर्मित है, जिसकी विशेषता यह है कि इस पुल का जो छोर प्राकार के पास है उसके ऊपर एक यन्त्र स्थापित है, जिसे स्थान विशेष से दबाते ही यह सेतु ऊपर उठकर अन्दर चला जाता है और बाह्यजगत् से ज्ञानगंज का सम्पर्क नहीं रह जाता। यह यन्त्र सूर्यविज्ञान द्वारा संचालित है। कहते हैं कि ज्ञानगंज तत्कालीन ब्रिटिश राज्य तथा तिब्बत की सीमा पर स्थित है। तथापि यह No Mans Land है। आश्रम स्तरानुरूप सज्जित है। शिक्षा के क्रमानुसार उसका विन्यास है। वहाँ योग तथा विज्ञान की शिक्षा-व्यवस्था अतीव चमत्कारी है। विज्ञान विभाग स्वतन्त्र है। उसके अधिष्ठाता है श्रीमत् श्यामानन्द परमहंस। इस आश्रम के अधिष्ठाता हैं श्रीमत् ज्ञानानन्द परमहंस। यह स्थान अत्यन्त प्राचीन है। पूर्वकाल में इसका नाम था इन्द्रभवन। प्रायः 500 पूर्व इस प्राचीन स्थान का संस्कार करके पूज्यनीय ज्ञानानन्द परमहंस को इसकी व्यवस्था तथा संरक्षा का भार दिया गया। इन सभी के परमगुरु हैं श्रीमत् महातपा। उनकी आयु 1300 वर्ष से अधिक है। इनका अपना कोई आश्रम नहीं हैं। जहाँ (तिब्बत में) इनका स्थान है, वह एक प्रच्छन्न गुफा है। उसमें राजराजेश्वरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवी की पाषाण-प्रतिमा स्थापित है। अतः इस गुफा को ही राजराजेश्वरी मठ कहा गया है। वास्तव में यहाँ मकान जैसा कुछ नहीं है। यहाँ रहने वाले महातपा को इन सबकी क्या आवश्यकता? महर्षि महातपा यहाँ अधिकांश समय रहते हैं। कभी कदाचित् ज्ञानगंज आते हैं। कभी-कभी अपनी गुरुमाता क्षेपा माँ के पास मनोहरतीर्थ जाते हैं। इस हिममण्डित प्रदेश में ऐसे अनेक योगाश्रम हैं। सभी राजराजेश्वरी मठ के शासनाधीन हैं। ये अधिक कथावार्त्ता नहीं कहते। सर्वदा स्वयं में विलीन रहते हैं। उनके प्रधान शिष्य भृगुराम परमहंसदेव सभी मठों के प्रधान अधिष्ठाता हैं। वे ही परिदर्शक-नियामक तथा परीक्षक हैं।

इसी आश्रम में योगिराजाधिराज विशुद्धानन्द परमहंसदेव ने सूर्यविज्ञान की शिक्षा प्राप्त की थी। इस सम्बन्ध में बाबा विशुद्धानन्दजी की जीवनी अक्षयकुमारदत्त गुप्त तथा नन्दलालजी ने लिखी है जो सम्प्रति प्रकाशित है। अतएव ज्ञानगंज के विषय में तथा बाबा विशुद्धानन्द के विषय में यहाँ अधिक लिखना पुनरुक्तिमात्र होगी। जिज्ञासु पाठकवर्ग इन दोनों ग्रन्थों से अपनी एतद्विषयक जिज्ञासा का उत्तर पा सकते हैं।

विख्यात पर्यटक तथा लेखक सर पालब्रन्टन को मद्रास के अवधूत ब्रह्मसुखानन्द ने महासिद्ध ऐरम्बु स्वामी का वृत्तान्त सुनाया था। जब इन ब्रह्मसुखानन्द ने ऐरम्बु स्वामी का दर्शन पाया था तब स्वामीजी की आयु 500 वर्ष थी। इनके सामने ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मद्रास में सबसे पहले पदार्पण किया था। पानीपत की प्रथम लड़ाई का दृश्य इन्होंने देखा था। स्वामीजी का कथन था कि हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में अनेक योगी तथा योगाश्रम आज भी हैं। इन योगीगण की आयु हजारों वर्ष की है। स्वामीजी के गुरु भ्राता थे परमहंस विशुद्धानन्ददेव। जब ब्रह्मसुखानन्द ने इनसे स्वामी परमहंस विशुद्धानन्ददेव की चर्चा की तब स्वामीजी हँसते हुए कह उठे—"विशुद्धानन्द! वह तो मात्र 80 वर्ष का बालक है!" तमिल भाषा में ऐरम्बु का अर्थ है Ant (चींटी)। स्वामीजी कहीं भी Ant को देखते, तब वहाँ कुछ आटा भोजनार्थ छिड़क देते। इसी से इनका नाम ऐरम्बु स्वामी पड़ गया।

परमहंस भृगुरामदेव का अस्तित्व पार्थिव मध्याकर्षण से रहित है। इनका सर्वत्र गमनागमन आकाश से होता है। इनके चरण कभी पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते। खड़े रहने की स्थिति में इनके चरण पृथ्वी से 72 अंगुल ऊपर रहते हैं। परमहंस विशुद्धानन्ददेव कहा करते थे कि ज्ञानगंज एक मायापुरी है। वहाँ अत्यन्त दुर्लभ मणि तथा रत्नों का विशाल भण्डार सुरक्षित है। वहाँ का भवनशिल्प, मूर्तिशिल्प भी अनुपम है। अनेक यन्त्रादि संरक्षित हैं। जिनका उपयोग महाभारत काल तथा उससे भी पूर्व में होता था। वहाँ का मूर्तिशिल्प, भवनशिल्प भी अनुपम है।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यविज्ञान का प्रायोगिक रूप

—(रायबहादुर) अक्षयकुमारदत्त गुप्त कविरत्न

मुझे समय का सम्यक् स्मरण नहीं है। किसी सूत्र से स्वनामधन्य डॉक्टर महेन्द्रलाल सरकार ने गुष्करा (जिला वर्द्धमान) जाकर स्वामी विशुद्धानन्ददेव से परिचय किया। स्वामीजी ने योगविभूति के प्रसंग में उनको यह बतलाया कि सर्वविदित 9 देहद्वार के अतिरिक्त भी देह में अनेक द्वार हैं, यहाँ तक कि प्रत्येक रोमछिद्र भी एक-एक द्वार है। योगी उसका अपनी इच्छानुसार संकोच-प्रसारण करते रहते हैं। डॉक्टर सरकार ने इसका प्रमाण जानना चाहा। स्वामीजी ने अपने शरीर के अनेक स्थान में बिना क्लेश के स्फटिक के दाने भीतर कर लिये तथा उन्हें पुनः बाहर करके उनको विस्मयाभिभूत कर दिया। उन्होंने घृत से भींगे एक वस्त्र के टुकड़े को भी नाभि के भीतर प्रवेश कराकर बाहर खींच लिया। उन्होंने यह भी कहा कि हमारी देहतत्त्व विद्या कितनी असम्पूर्ण है, यह आपने अच्छी तरह से देख लिया।

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र बोस भी स्वामीजी से मिलने आये थे यह भी सुना। डॉ० महेन्द्रलाल सरकार के पश्चात् कलकत्ता से डॉ० चन्द्रशेखर काली एवं डॉ० अक्षयकुमार दत्त भी स्वामीजी से मिलने आये थे। डॉ० अक्षयकुमार दत्त के साथ बाबा की भेंट के सम्बन्ध में मैंने गुरुभ्राता मन्मथनाथ सेन से सुना था। मन्मथनाथ सेन के पिता डिमला रियासत के राजकुमार यामिनीवल्लभ सेन के साथ डॉ० अक्षयकुमार की विशेष मित्रता थी। यह उस समय की बात है जबकि कुमार यामिनीवल्लभ ने स्वामीजी से दीक्षा नहीं ली थी। एक दिन वे तथा डॉ० अक्षयकुमारदत्त कोयला खानों के ख्यातिलब्ध व्यवसायी उमेशचन्द्र बन्दोपाध्याय के घर में स्वामीजी से मिलने गये। तब उस दिन स्वामीजी ने लेन्स से उन लोगों को कोई वस्तु तैयार करके दिखलायी थी। इस समय अविश्वासी डॉ० दत्त ने स्वामीजी के लिए यह सोचा कि शायद यह कोई हाथ की सफाई करके दिखला रहे हैं। और उन्होंने स्वामीजी का हाथ पकड़ लिया। इससे स्वामीजी विरक्त हो गये और उन्हें एक चपत लगाकर बोले, "यह देखो हाथों में क्या है?" यह कह उन्होंने अपने कम्बल के आसन से कुछ रेशे खींचे और बिना सूर्यविज्ञान के लेन्स की सहायता लिये इच्छाशक्ति के बल से तत्क्षण एक अति सुन्दर तथा उज्ज्वल प्रवाल के रूप में उन रेशों को परिवर्तित कर दिया। कहीं इसे भी डॉ० दत्त हाथ का कौशल न मान लें, स्वामीजी ने अपनी नाभि के छिद्र को विस्फारित करके उसमें एक तकिया का आधा हिस्सा भीतर प्रविष्ट करा दिया। इससे डॉ० दत्त भीत होकर मूर्च्छाग्रस्त हो गये और बाद में होश आने पर स्वामीजी के चरणों को छूकर दीक्षा की प्रार्थना और क्षमा याचना करने लगे। किन्तु उनको दीक्षा न मिल सकी। इस समय जो प्रवाल-निर्माण हुआ था, उसे कुमार यामिनीवल्लभ ने स्वामीजी से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माँग लिया और कहा कि यह हमलोगों के घर में वंशानुक्रम से रहेगा। इस समय वह प्रवाल उनके कनिष्ठ पुत्र मन्मथनाथ के पास है।

बाद में स्वामीजी ने बतलाया कि उन्होंने इनकी दीक्षा प्रार्थना के लिए ज्ञानगंज लिखा था, जहाँ से इस आशय का उत्तर मिला, "अक्षयकुमार दत्त की आयु अत्यल्प बाकी है। अब इस दीक्षा से उनका कोई लाभ नहीं होगा"। शिक्षित तथा अल्पाधिक नास्तिक व्यक्ति के उपकारार्थ स्वामीजी सामान्यत: सूर्यविज्ञान की कुछ-कुछ क्रीड़ा प्रदर्शित करते थे। इस सम्बन्ध में पालब्रन्टन प्रणीत 'A Search in Secret India' ग्रन्थ उल्लेखनीय है।[1]

एक दिन बाबा के पास आश्रम में बैठा था। अगले दिन प्रात: 9 बजे कुमारी-भोजन का आयोजन था। शिष्य आपस में बातें कर रहे थे। तभी एक सज्जन से महामहोपाध्याय डॉ० पं० गोपीनाथजी ने कहा, "आपके पास हीरा है तो।" उन्होंने कहा, "हाँ, है।" गोपीनाथजी का आग्रह था कि मुझे दिखलाया जाये। उन सज्जन ने गोपीनाथ से कहा, "आप तथा अक्षय बाबू आइये।"

हम लोग उनके साथ-साथ पास के एक कमरे में गये। उन्होंने अपने कुर्ते की जेब से एक हीराजटित अँगूठी को बाहर करके दिखलाया। मैंने उसे हाथ पर रखकर देखा। मुझे हीरा के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं थी। तब भी वह बड़ा था, उसमें कोई दाग नहीं था। मैंने पूछा, "क्या यह हीरा सृजित होते आपने देखा था?"

उन्होंने कहा, "देखा तो था। पुरी में बाबा के साथ हम कई लोग घूम रहे थे। इस समय समुद्र तीर पर एक रंगीन पत्थर मिला। बाबा ने उसे हाथ पर उठाकर कहा, "इससे एक हीरा तैयार किया जा सकता है। किसे चाहिये? 750/- रुपये देने होंगे। (उस समय रुपये की क्रयशक्ति अत्यधिक थी)।" उन भद्रलोक ने बाबा से हीरा लेने की अपनी इच्छा प्रकट की। बाबा ने पत्थर को दो उँगलियों के बीच पकड़कर दाहिने-बायें हस्त-संचालन करना प्रारम्भ कर दिया। 1 मिनट तक यह करते-करते बोले, "पत्थर अधिक नरम हो गया है, देखो।" मैंने देखा कि वास्तव में पत्थर नरम था। तदनन्तर बाबा उसे उँगलियों में पकड़कर पूर्ववत् हस्त-संचालन करने लगे। एक मिनट बाद उन्होंने कहा, "देखो, कैसा सुगन्धित हो गया है।" सभी ने सूँघ कर सुगन्ध का अनुभव किया। बाबा ने पुन: हस्त-संचालन प्रारम्भ किया। अब अति सुन्दर कटिंग वाला हीरा देखा गया। बाबा ने उसे मुझे दे दिया। उस समय मैंने कहा, "इसे अँगूठी में जड़वा कर पहनूँगा।" बाबा ने कहा, "यदि कुछ पहले कहा होता, तब मैं उसे अँगूठी के साथ प्राप्त करता।"

उन भद्रलोक ने आगे कहना प्रारम्भ रखा, "यह अँगूठी मैं सर्वदा उँगली में नहीं पहनता। केवल क्रिया करते समय पहनता हूँ। इसे अधिक लोगों को दिखलाता भी नहीं।"

1. डॉ० ब्रन्टन का लेख इस ग्रन्थ में आगे दिया जायेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपस्थित एक सज्जन ने कहा, "हीरा अमूल्य है।" और एक ने भी मन्तव्य प्रकट किया, "यह अमूल्य वस्तु है।" यह बात मुझे भी ठीक लगी। इस दिन इससे पहले गुरुभ्राता विजय दादा से सुना था कि बाबा ने (असम) विलासीपाड़ा क्षेत्र के राजा नृपेन्द्रनारायण चौधरी के आग्रह से उनकी ही मुट्ठी के भीतर पकड़ कर रखे गये रूमाल पर मध्य में सिंहवाहिनी की मूर्ति तथा चारों कोनों पर पुष्प अंकित किया था। (दृष्टिमात्र से यह कार्य सम्पन्न हुआ था।) गोपीनाथजी ने बतलाया कि, "आजकल बाबा यह सब अलौकिक कार्य करने के पूर्व कहते हैं कुमारी-भोजन कराओ, तब यह सब समझाऊँगा।"

विजयदशमी का प्रणाम करने के लिए सन्ध्या की क्रिया सम्पन्न करके गोपीनाथ के साथ आश्रम गया। बाबा ने पूछा, "कल क्यों नहीं आये?" क्या उत्तर दूँ, समझ में नहीं आ रहा था। अत्यन्त संकुचित भाव से मैंने कहा कि, "कान से कम सुनाई पड़ता है। यहाँ की बातें समझ नहीं पाया था। न आने का यही कारण था।"

बाबा ने कहा, "जाओ। मुख मीठा करो।"

जब मैं मिठाई खाने आश्रम के अन्दर गया तब पता चला कि यहाँ जो सन्देश मिष्ठान्न खाने को मिलेगा, वह चन्द्रविज्ञान से बनाया जाना था। परन्तु आज प्रातः बाबा का विचार बदल जाने से उन्होंने सूर्यविज्ञान से ही सन्देश तैयार किया। सन्देश में से बेल के मुरब्बे तथा कुछ अदरख की भी गन्ध आ रही थी। इस प्रकार मुख मीठा करके बाबा के हाथ से पान (ताम्बूल) का प्रसाद ग्रहण करके उनके पद-प्रान्त में बैठा। और भी कई लोग उपस्थित थे। उनमें कुञ्जघोष दादा भी थे। उनसे मैंने पूछा, "यह सन्देश कैसे बना?" उत्तर में उन्होंने बताया कि, "बाबा जब प्रातः ऊपर से नीचे कक्ष में आये तब एक खाली मिट्टी की हाँडी में लेन्स से फोकस किया। बताया कि उससे सन्देश बन जायेगा। कुछ क्षणों बाद देखा गया कि वह पात्र तीन चौथाई (3/4) सन्देश से भर गया। बाबा ने कहा कि अब और नहीं बनेगा। जितना फोकस किया जाता है, उतना बनता है। यह मैंने नहीं देखा परन्तु अपने नेत्रों से मैंने पुरी में यही प्रत्यक्ष देखा था। उस बार बाबा ने एक एनामेल के पात्र में सन्देश (सूर्यविज्ञान द्वारा) सृष्ट किया था।" बताकर कुञ्जबाबू मौन हो गये।

मैंने बाबा से पूछा—"यह फोकस क्या है?"

सुनकर वहाँ उपस्थित एक-दो प्राज्ञ व्यक्ति हँस पड़े। बाबा ने उत्तर दिया, "यह मान लो एक लेन्स है। इससे इस प्रकार से सूर्य की किरण पकड़कर इस पात्र में कुछ समय तक छोड़ते रहने से, पात्र में वह तैयार हो जायेगा।"

कुञ्जदादा बोले—"हाँ, यही हुआ था। बाबा जब उस पात्र में (पुरी में) फोकस कर रहे थे, तब लगा कि एक नीले रंग की किरण उस खाली पात्र में पड़ रही है।"

मैं—"खाली पात्र में किरण पड़ी थी?"

बाबा—"सुनो! यह क्या कह रहा है? कहता है पात्र खाली तो था!"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुञ्जदादा—"हाँ खाली पात्र था। और क्या?"

मैं—"किरण की बात सुनकर मुझे लगता है, क्या जानें उस खाली पात्र में जल रहा हो।"

प्राज्ञ लोग पुनः हँसे। गोपीनाथजी कविराज ने कहा—"यह प्रक्रिया खाली पात्र में ही होती है।"

कुञ्जदादा—"पात्र को एक एनामेल के ढकने से आवरित कर दिया गया था। कुछ समय पश्चात् देखा कुछ सन्देश बना है। कई घण्टे के पश्चात् देखा गया कि आधा पाव से कुछ अधिक सन्देश बन गया है। तब बाबा ने कहा था कि इससे अधिक नहीं बनेगा। अधिक बनाने के लिए अधिक फोकस करना होगा। उसकी क्या आवश्यकता?"

मैं—"आज के सन्देश में बेल की गन्ध थी।"

बाबा—"यह अच्छा सन्देश था। पेट शुद्ध करता है। तथापि इसे अधिक खाने से शरीर गरम हो जायेगा।"

इसी बीच फोकस द्वारा एसेन्स तैयार होने का प्रसंग उठाया। गोपीनाथजी कविराज ने वह सब मुझे बताया। जब की यह बात है तब कविराज महाशय उपस्थित थे। एक यूरोपीय साहब तथा उनकी पत्नी के विशेष आग्रह से उनके द्वारा आनीत एक शीशी पर लेन्स की सूर्य-किरण छोड़कर आधा शीशी अपूर्व गन्धयुक्त इत्र बाबा ने तैयार किया था। इसके पूर्व शीशी के चारों ओर नीला कागज बाँधकर उसे ताम्र तार से लपेट दिया गया था।

मैं—"शीशी पर कागज तथा तार इत्यादि लपेटने का तो कोई प्रयोजन नहीं होगा।"

बाबा—"था! नहीं तो शीशी फट जाती।"

कई बार बाबा को यह कहते सुना था कि सभी वस्तुओं में सभी वस्तुओं के परमाणु हैं। योगशास्त्र का भी कथन है सर्वं सर्वात्मकम्। एक खाली एनामेल पात्र में जब 'फोकस' करके सन्देश तैयार हो सकता है, तब यह सब शास्त्रीय कथन स्वीकार करना ही होगा। ऐसी दुर्बोध क्रीड़ा को बाबा सर्वदा दिखलाते रहते थे। श्रीयुक्त गोपीनाथ कविराज अधिक पुरातन शिष्य नहीं थे, तब भी वे लिखते हैं, "कितने समय कितने विषय देखा तथा देखता हूँ, उसकी गणना नहीं है। बाबा ने अणिमा तथा महिमा आलोचना-प्रसंग में अपनी उँगलियों को मोटी करके दिखा दिया था। अधेला से गिन्नी तैयार करना, किसी भी वस्तु को परमाणु रूप में अव्यक्त कर देना, नारियल तेल, पुराना घृत, ताजा घृत, नाना प्रकार के सन्देश, रसगुल्ला, जाफरान, फिनाईल, कुनैन टैबलेट, हीरा, सुवर्ण, मुक्ता, प्रवाल आदि सैकड़ों वस्तुओं को (सूर्यविज्ञान से) निर्मित होते अपने नेत्रों से देखा था। सब लिखकर वर्णन नहीं हो सकता।"

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाराणसी में सूर्यविज्ञान

—डॉ० पालब्रन्टन

बंगाल के भ्रमण तथा बुद्धगया में तिब्बत के तीन लामाओं से अपनी भेंट आदि का मैं उल्लेख नहीं करूँगा क्योंकि मैं हिन्दुओं की परम पुनीत नगरी काशी की चर्चा करने के लिए बड़ा ही उतावला हो रहा हूँ।

शहर के समीप लोहे के विराट् पुल के ऊपर से रेलगाड़ी गड़गड़ाती हुई चलने लगी। उसकी वह आवाज़ मानों एक प्राचीन गतिहीन समाज पर नई रोशनी के एक और दावे का प्रबल प्रमाण थी। जब कि म्लेच्छ विदेशियों ने गंगाजी के जल के ऊपर गरजने वाले अग्नि-रथों को चला ही दिया फिर गंगाजी की वह पवित्रता और कितने दिन तक बनी रहेगी?

यही तो बनारस है।

यात्री आपस में धक्कमधक्का करते हुए स्टेशन से बाहर चलने लगे। उनमें से होकर किसी प्रकार मैं बाहर पहुँचा और एक ताँगे पर, जो मेरी इन्तजारी में खड़ा था, बैठ गया।

तो यही भारतवर्ष की सबसे पुनीत नगरी है। अरे! यहाँ तो बड़ी ही विषैली बदबू फैली हुई है। अपनी प्राचीनता के लिए बनारस बहुत ही प्रसिद्ध है। उसकी इस प्रसिद्धि का यह बदबू प्रबल प्रमाण कहा जा सकता है! दुर्गन्धि के कारण दम घुटने लगा। मेरी हिम्मत छूट गई। विचार हुआ कि ताँगे वाले से कह दूँ कि फिर मुझे स्टेशन वापिस ले चले। ऐसे महँगे सौदे पर भक्ति तथा श्रद्धा की उपासना करने की अपेक्षा परम नास्तिक ही रह कर स्वच्छ वायु का सेवन करना क्या उत्तम नहीं है? धीरे-धीरे मुझे सूझने लगा कि इस पुराने देश में जैसे अन्य अजनबी चीजों के अनुकूल मेरी प्रवृत्ति किसी न किसी तरह बन गई है, उसी भाँति इस आबोहवा और उत्कट दुर्गन्ध के भी अनुकूल वह क्यों न बनेगी?

लेकिन बनारस, नाराज न होना यदि मैं कहूँ कि चाहे तुम हिन्दू-संस्कृति का केन्द्र भले ही बने रहो, परन्तु अनात्मवादी गोरों से कुछ तो कृपा करके सीख लो और स्वास्थ्य विज्ञान की आग में अपनी पवित्रता को थोड़ा सा तपा लो।

बाद में मालूम हुआ कि नगर की सड़कें गोबर और मिट्टी से लिपी हुई हैं और शहर के चारों ओर जो खाई है वह भी कई पीढ़ियों से कूड़ा-करकट फेंकने का बड़ा ही अनुकूल घूरा बन गई है। इसी से इस असहनीय गन्दी बू ने सारे वायुमण्डल को विषैला बना दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि हिन्दुओं के पुराणों आदि का विश्वास किया जाय तो बनारस ईसा से 1200 वर्ष पूर्व से ही एक सम्पन्न नगर था। मध्ययुग में जैसे श्रद्धालु धार्मिक अंग्रेज पवित्र नगरी कैण्टरबरी की यात्रा किया करते थे, ठीक उसी प्रकार हिन्दुस्तानी भारतवर्ष के कोने-कोने से आकर इस नगर के दर्शन से अपने को कृतकृत्य समझते हैं। चाहे राजा हो चाहे रंक, सभी विश्वनाथ पुरी में विश्वनाथ से वर-प्रसाद पाने की चाह रखते हैं। बीमार लोग यहीं, अपने अन्तिम दिन बिताने आते हैं क्योंकि उनका यह विश्वास रहता है कि काशी में मरने से 'शिव सायुज्य' प्राप्त हो जाता है।

दूसरे दिन मैं काशी की पैदल ही सैर करने लगा और उसकी टेढ़ी-मेढ़ी तंग गलियों की खाक छानने में बिलकुल मग्न हो गया।

मेरे घूमने का कुछ प्रयोजन अवश्य था। मेरी जेब में एक करिश्मे दिखाने वाले योगी का पता-ठिकाना बताने वाला एक कागज पड़ा हुआ था। उनके एक शिष्य से बम्बई में मेरी मुलाकात हुई थी।

मैं उन तंग गलियों में, जिनमें कि कोई गाड़ी मुश्किल से ही गुजरने नहीं पाती, भटकने लगा। बाजारों में लोगों की भारी भीड़ थी। दर्जनों जातियों के लोग वहाँ देखने में आते हैं। दुबले कुत्तों का भूँकना और मक्खियों की भिनभिनाहट के मारे वहाँ का शोरगुल बहुत ही बढ़ा रहता है। पके बाल वाली बूढ़ियाँ, चिक्कण तथा मसृण अंग वाली कोमल ललनाएँ, विभिन्न पहनावा वाले यात्री, भस्मधारी वलित शरीर वाले वृद्ध साधु, और भी कितने ही प्रकार के लोग वहाँ की गलियों में नज़र आते हैं। शोरगुल से भरी हुई तरह-तरह की गलियों की भीड़ में अपनी राह खेते हुए अचानक मैं विश्वनाथजी के स्वर्ण मन्दिर पर पहुँच गया।

सारे भारत में इस मन्दिर की बड़ी धूम है। फाटक पर पश्चिमी आँखों को घृणित और जुगुप्साजनक लगने वाले भस्मधारी साधु दबक कर बैठे रहते हैं। लगातार यात्रियों का एक ताँता बँधा रहता है। कई लोग सुन्दर मालाएँ लेकर विश्वनाथजी की पूजा के लिए आते हैं जिससे उस धूम्रमय वायुमण्डल में एक प्रकार की चमक-सी फैल जाती है। श्रद्धालु लोग घर लौटते समय मन्दिर के फाटक के पत्थरों पर माथा टेकते हैं और घूम कर मुझ अंग्रेज को देख क्षण भर के लिए विस्मय से चकित हो जाते हैं। इन यात्रियों और अपने बीच में मुझे भी एक अदृश्य अन्तर प्रकट होने लगा।

सूर्य की प्रखर धूप में सोने से मढ़े हुए दो कलश चमकते रहते हैं। उसके निकट के गुम्बद से चीखने वाले तोतों की फड़फड़ाहट सुनाई पड़ती है। यह स्वर्ण मन्दिर महादेवजी का है। मुझे संशय होता है कि जिन महादेव की ये हिन्दू दुहाई देते हैं, जिनके सामने नाक रगड़ कर प्रार्थना करते हैं, जिनकी पत्थर की मूर्ति पर सुरभित सुमन और लाई की भेंट चढ़ाते हैं, वह ईश्वर आखिर हैं भी कहीं?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वहाँ से चलकर मैंने गोपाल मन्दिर की राह ली। एक स्वर्णमूर्ति के सामने कपूर की आरती उतारी जा रही थी। मन्दिर के घण्टे भक्तों के ध्यान को आकर्षित करते हुए बारम्बार घहराते थे। शंख और घण्टों की तुमुल ध्वनि उनके बहरे कानों में न मालूम क्या मन्त्र फूँक रही थी। एक सौम्य रूप वाले, दुबले और कट्टर पुजारी मन्दिर से निकल कर मेरे पास आये और मेरी ओर घूरने लगे। मानों मुझसे कोई प्रश्न करते हों। तब मैंने अपनी राह ली।

बनारस के मन्दिरों तथा मकानों में रहने वाली असंख्य मूर्तियों को कौन गिन सकता है? गम्भीर प्रकृति वाले इन हिन्दुओं का व्यवहार भी कभी तो बच्चों जैसा होता है और कभी ये दर्शन के निगूढ़ रहस्यों में मग्न होते हैं। क्या कोई भी इस मर्म का ठीक-ठीक समाधान कर सकेगा?

उन धुँधली गलियों में मैं अकेले ही पैदल चल कर अपने विचित्र मायावी योगी का मकान ढूँढ़ने लगा। अन्त में तंग पगडण्डियों के जाल से निकल कर मैं पक्की सड़क पर आ गया। फटे-पुराने कपड़े पहने हुए, छोटे बालकों की एक पंक्ति, जिसमें कुछ क्षीणकाय युवक और वृद्ध भी शामिल थे, एक कतार में मेरे पास से गुजर चली। उनके अगुए के हाथ में एक साधारण-सा झण्डा था। उस पर कुछ लिखा हुआ था, लेकिन वह क्या था मुझे तो पता नहीं चला।

वे तेज आवाज से अजीब नारे लगाते जा रहे थे। बीच-बीच में किसी गाने के कुछ चरण भी सुनने में आते थे। जब वे मेरे पास से गुजरे तो मेरी ओर घोर घृणा के साथ घूरने लगे। इस विचित्र समावेश का राजनैतिक स्वरूप मैंने समझ लिया।

पिछली रात को एक जनाकीर्ण बाजार में, जहाँ किसी गोरे या पुलिस का पता भी न था, कोई मेरे पीछे गरज उठा—"तुम्हें गोली मारेंगे।" मैंने झट घूम कर देखा तो मुझे कुछ कोमल बालकों के चेहरे ही दिखाई पड़े क्योंकि जिसने मेरी जान लेने की धमकी दी थी वह पागल नवयुवक आवाज से वह जवान ही मालूम होता था—किसी गली के मोड़ पर अँधेरे में गायब हो गया। इस छोटे बच्चों के जुलूस को दूर की सड़क पर चलते हुए देखकर मुझे बड़ा ही अफसोस हुआ। सभी को मुँह माँगी वस्तु देने की झूठी आशा दिखाने वाली मायाविनी राजनीति ने अपनी गोद में इतने छोटे-छोटे बच्चों को भी उठा लिया है!

आखिर में मैं एक विशाल राजपथ पर आया। दोनों बगल कतार के कतार आलीशान मकान खड़े थे। विशाल साफ-सुथरे अहाते मन को खुश कर रहे थे। मैं जल्दी चलने लगा और चलते-चलते एक बड़े मकान के फाटक पर पहुँच गया। फाटक के एक स्तम्भ में एक छोटे पत्थर पर 'विशुद्धानन्द' के नामाक्षर खुदे हुए थे। मैंने भीतर प्रवेश किया। इसी घर को इतनी देर से मैं खोज रहा था। बरामदे में कोई पड़े-पड़े पिनक रहा था। चेहरे से वह बुद्धू मालूम होता था। मैंने उस नौजवान से पूछा—"गुरुजी भीतर हैं?" उसने सिर हिला दिया मानों यह कह रहा हो कि इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम का तो यहाँ कोई नहीं रहता। मैंने गुरु का नाम भी बता दिया पर कोई लाभ नहीं हुआ। मुझे बड़ी निराशा हुई। तब भी मैंने धीरज नहीं छोड़ा। दिल में कोई आवाज गूँज रही थी कि यह बुद्धू मेरे गोरे चमड़े को देखकर यह समझने लगा कि यहाँ मेरा क्या काम होगा? इसीलिए उसने समझा कि मैं किसी दूसरे मकान की खोज में हूँ। मैंने और एक बार उस युवक की ओर ताका। मुझे पक्का निश्चय हो गया कि वह निरा बुद्धू है। अतः उसकी मनाही की परवाह किये बिना मैंने सीधे घर के भीतर प्रवेश किया। भीतर एक कोठरी में अच्छी पोशाक पहने हुए कुछ भारतीय व्यक्ति अर्धगोलाकार में नीचे फर्श पर बैठे हुए थे। कमरे में दूर पर एक सोफे पर एक भूरी दाढ़ी वाले एक वृद्ध बैठे थे। उनका आदरयोग्य चेहरा और उच्च आसन, दोनों को देखते ही मैंने जान लिया कि जिनकी मैं खोज कर रहा था वे ये ही हैं। मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और हिन्दुस्तानी रस्म के अनुसार बोला—"नमस्कार"।

मैंने उनको अपने पते आदि का परिचय दिया और बताया कि मैं एक लेखक हूँ और भारत का भ्रमण कर रहा हूँ तथा मुझे भारतीय दर्शनशास्त्र और योग-मार्गों के अध्ययन करने की बड़ी लालसा है। मैंने उनको सूचित किया कि मेरी उनके एक शिष्य के साथ भेंट हुई थी और उस शिष्य ने मुझे सावधान किया था कि उनके गुरु सर्व साधारण में ही नहीं, एकान्त की छाया में भी, अजनबियों तक के सामने अपनी अनूठी विभूतियों का प्रदर्शन नहीं करते। मैंने उन महाशय से प्रार्थना की कि भारतीय प्राचीन विज्ञान के प्रति अभिरुचि होने के कारण वे मेरे बारे में कुछ रियायत करने की कृपा करें।

उनके चेले अचम्भे में आकर अपने गुरुदेव की ओर निहारने लगे और प्रतीक्षा करने लगे कि उनके गुरुदेव पर मेरी प्रार्थना का कैसा प्रभाव पड़ेगा। विशुद्धानन्दजी ढलती उम्र के थे। नाक उनकी छोटी और दाढ़ी लम्बी थी। उनकी आँखें बड़ी विशाल पर धँसी हुई थीं। उनके कन्धे पर जनेऊ सोह रहा था।

उस बुजुर्ग की तीखी नजर मेरे ऊपर पड़ गई। वे मेरी ओर यों घूर कर देख रहे थे मानों मैं कोई सूक्ष्म वस्तु हूँ कि अनुवीक्षण यन्त्र से देखा जाऊँ। मेरे दिल में कोई मोहिनी काम कर रही थी। सारे कमरे में एक अजीब प्रकार की शक्ति के प्रसार का बोध होने लगा। मुझे एक प्रकार की बेचैनी मालूम होने लगी।

कुछ देर के बाद उन्होंने अपने चेले से कुछ कहा। शायद वे बँगला भाषा बोल रहे थे। चेले ने मुझको बताया—"बगैर गवर्नमेण्ट कॉलेज के कविराजजी को लाये कुछ भी बातचीत हो नहीं सकती।" कविराजजी अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे, साथ ही वे विशुद्धानन्दजी के पुराने चेले भी थे; अतः दुभाषी बनने का उनका पहला हक था।

विशुद्धानन्दजी बोले—"कल उनको साथ ले आइये। 4 बजे मैं आप लोगों की राह देखूँगा।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे अब लौटना ही पड़ा। सड़क पर आकर एक ताँगे वाले को बुलाया। फिर टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों से होकर कॉलेज पहुँच गया। लेकिन वहाँ पर कविराजजी नहीं थे। किसी ने बताया कि वे शायद घर पर होंगे। अतः उनके घर का पता लगाने में एक-आध घण्टा और लगा। आखिर को एक पुराने दुमंजिले मकान में वे मुझको मिल गये। मकान की रचना मध्यकालीन इटली के शिल्पों से कुछ-कुछ मिलती थी।

पण्डितजी दूसरी मंजिल पर एक कमरे में फर्श पर बैठे थे। चारों ओर ढेर की ढेर किताबें पड़ी हुई थीं। कागज, स्याही आदि लेखन-सामग्री पास ही रक्खी थी। उन ब्राह्मण देवता का उन्नत ललाट बड़ा ही विलक्षण था। नाक उनकी पतली और सीधी थी और बदन का रंग कुछ हलका था। चेहरे से उनकी संस्कृति और सभ्यता टपकी पड़ती थी। मैंने अपने आगमन का उद्देश्य उन पर प्रकट कर दिया। पहले वे कुछ हिचकिचाने लगे लेकिन किसी प्रकार मेरे साथ चलने के लिए राजी हो गये। दूसरे दिन फिर मिलने की बात पक्की करके मैं उनसे बिदा हुआ। ताँगे वाले को किराया देकर मैंने उसको बिदा किया और स्वयं गंगाजी के दर्शन करने में मग्न हो गया। किनारे पर स्नानार्थियों का बड़ा जमघट था। उनकी सुविधा का ख्याल कर किसी ने बहुत सुन्दर सीढ़ियाँ बनवायी थीं। लाखों यात्रियों के पैरों के तले घिस कर वे कुछ खुरदुरी हो गयी थीं। यह पनघट एकदम गन्दा और मैला था। कहीं पर मन्दिर ढह कर पानी में गिर गये थे, कहीं आँखों को चकाचौंध करने वाले कलशों के अगल-बगल में, सजे-सजाये चपटे और चौरस, गगनचुम्बी महलों की श्रेणी दिखाई देती थी। हर जगह मकान एक के ऊपर एक बनवाये गये-से जान पड़ते थे और प्राचीनता और नवीनता का वहाँ बड़ा ही अनमिल मेल हो गया था।

जहाँ देखो वहीं पण्डों और यात्रियों के झुण्ड नजर आते थे। छोटे और खुले हुए कमरों में अध्यापक शास्त्र पढ़ा रहे थे। उन मकानों की दीवारों पर चूना पुता हुआ था। अध्यापक लोग छोटे-छोटे आसनों पर बैठे हुए थे और चेले बड़ी श्रद्धा के साथ फर्श पर बैठे दत्तचित्त होकर गुरु के सिद्धान्तों की जटिल समस्याओं के समझने में तल्लीन थे।

मैं यों ही घूम रहा था कि मेरी नजर एक अजीब साधु पर पड़ी। उसकी बड़ी लम्बी दाढ़ी थी। पूछने पर मालूम हुआ कि जमीन पर लोट-लोट कर उसने 400 मील का फासला तय किया है। काशीधाम की यात्रा करने का क्या यही विचित्र तरीका था! और कुछ आगे बढ़ा तो इससे भी अजीब बात देखने में आयी। वहाँ मेरे सामने एक आदमी था जिसने वर्षों से एक हाथ उठाये ही रक्खा है। उस अभागे हाथ की मांसपेशी और नाड़ी सूख चली थीं। केवल हाथ का ढाँचा भर रह गया था। भला इन व्यर्थ के घोर तपों का क्या कोई अर्थ हो सकता है? इस मुल्क की झुलसाने वाली सूर्य की धूप ने इन बेचारों को सिड़ी तो नहीं बनाया है। अभागे हिन्दू पहले ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से अति धार्मिकता की बीमारी के कौर बने हैं, तिस पर सूर्य के उग्र ताप से इनके दिमाग और भी चकरा तो नहीं गये?

❑ ❑ ❑

दूसरे दिन चार बजते-बजते मैं कविराजजी को साथ लेकर विशुद्धानन्दजी के यहाँ पहुँच गया। उस बड़े कमरे में पाँव रखते ही हमने आचार्य की अभ्यर्थना की। वहाँ पर उस समय और भी छः शिष्य मौजूद थे।

विशुद्धानन्दजी ने मुझे अपने पास बुलाया तो मैं उनकी गद्दी के बहुत ही निकट बैठ गया।

उनका सबसे पहला प्रश्न यह था :

"मेरी करामात देखना चाहते हो?"

"जी हाँ, आपका बड़ा एहसानमन्द रहूँगा।"

पण्डित कविराज ने कहा—"अपना रूमाल दो। रेशमी हो तो बेहतर है। जैसी खुशबू चाहते हो, पा सकते हो। केवल एक आतशी शीशे भर की जरूरत है और सूर्य की रोशनी की।"

सौभाग्य से मेरी जेब में रेशमी रूमाल निकल आया। मैंने उसको जादूगर के हाथ में दे दिया। उन्होंने एक छोटा आतशी शीशा निकाला और कहा—"मैं इसमें सूर्य की किरणों को केन्द्रीभूत करना चाहता हूँ पर सूर्य की इस समय की स्थिति और कमरे की छाया के कारण यह काम अच्छी तरह नहीं किया जा सकेगा। कोई आँगन में जाकर शीशे के जरिये सूर्य की किरणों को भीतर पहुँचा सके तो सारी कठिनाई दूर होगी। आप जो चाहें वह खुशबू हवा से ही पैदा की जा सकती है। कहिये कौन-सी सुगन्धि चाहिये?"

"क्या आप बेले की सुगन्धि पैदा कर सकते हैं?"

आचार्य ने अपने बाँयें हाथ में रूमाल लिया और उसके ऊपर शीशा रक्खा। दो क्षण तक सूर्य की किरणें रेशम पर थिरक उठीं। उन्होंने काँच नीचे रख दिया और मुझे रूमाल वापिस कर दिया। मैंने उसको नाक पर लगा कर देखा तो बेले की भीनी महक से तबियत फड़क उठी।

मैंने रूमाल को गौर से परखा। कहीं नमी का नाम तक न था। कोई इत्र छिड़का गया हो सो भी बात नहीं थी। मैं हैरान था और बूढ़े की ओर अधखुली दृष्टि से सन्देह के साथ ताकने लगा। वे फिर से यह करामात दिखाने को तैयार थे।

अबकी बार मैंने गुलाब की खुशबू चाही। विशुद्धानन्दजी प्रयोग करने लगे तो मैं उनकी ओर गौर से ताकने लगा। उनके हाथों और पाँवों का हिलना-डुलना, उनके चारों ओर जो कोई चीज धरी थी, एक भी बात मेरी नजरों से नहीं बची। उनके बलिष्ठ बाहु और बेदाग पहरावे की बड़े गौर से मैंने परीक्षा ली लेकिन शंका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिए कहीं जगह नहीं थी। पहले के समान ही उन्होंने प्रयोग किया और गुलाब के मधुर सौरभ से रूमाल का दूसरा किनारा परिमिलित हो उठा।

तीसरी बार मैंने बनफशे के फूल की सुगन्धि चाही। अबकी बार भी वे अपने प्रयोग में सफल हुए।

विशुद्धानन्दजी अपनी सफलता पर फूले नहीं जाते। वे इन सारी विभूतियों को बिलकुल मामूली ही समझते हैं। उनका गम्भीर मुखमण्डल भावनाओं के उतार-चढ़ाव से कुछ भी प्रभावित नहीं होता।

वे एकबारगी बोल उठे—"अब मैं एक नई सुगन्धि पैदा करूँगा, एक नये फूल की खुशबू दिखा दूँगा। वह तिब्बत में ही मिलता है।"

उन्होंने रूमाल के आखिरी कोरे पर, जो अब तक छुआ नहीं गया था, सूर्य-रश्मि को केन्द्रीभूत किया। एक अजीब परिमल आने लगा। वह मेरे लिए एकदम नया था।

कुछ चकित हो मैंने रूमाल जेब में रख लिया। यह सारी घटना मानों कोई करामात मालूम होने लगी। सारे फूलों के इत्र उन्होंने अपने लबादे में तो छिपा नहीं रक्खे थे? लेकिन प्रश्न यह था कि कितने प्रकार के इत्र वे छिपाये रख सकते हैं। मेरे पूछने तक वे क्या जानते थे कि मैं कौन-सी सुगन्धि पसन्द करूँगा। उनके उस सादे लबादे में कितने इत्र छिप सकते हैं? उसके अतिरिक्त जादू दिखाते हुए उन्होंने एक भी बार अपने लबादे के अन्दर हाथ नहीं जाने दिया था।

मैंने उनके काँच की परीक्षा करने की अनुमति माँगी। वह एक मामूली काँच था। तार के ढाँचे में बँधा था और उसमें तार का एक दस्ता भी लगा था। उसमें सन्देह का कोई स्थान नहीं था।

यह भी एक बात थी कि प्रेक्षकों में अकेला मैं ही तो था नहीं। छः-सात लोग उनकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। पण्डित कविराजजी ने मुझको इस बात का विश्वास दिलाया कि सभी प्रेक्षक सच्चे, ईमानदार और अपनी जिम्मेदारी जानने वाले उच्च विचार के व्यक्ति हैं।

शायद यह सब सम्मोहन विद्या का एक उदाहरण तो नहीं है? यदि ऐसा हो तो इसकी बड़ी सुलभता से परीक्षा ली जा सकती है। जब मैं घर लौटूँ, अपने साथियों को रूमाल दिखला दूँ।

विशुद्धानन्दजी ने और एक बात बता दी। वे मुझे अपनी एक अद्‌भुत विभूति दिखाना चाहते थे जो वे बहुत ही विरले किया करते थे। उन्होंने कहा कि इस प्रयोग के लिए कड़ी धूप की जरूरत होती है। उस समय सूर्य ढलना ही चाहता था। सन्ध्या की लाली हर कहीं फैल रही थी। अतः मुझसे कहा गया कि फिर कभी दुपहर के वक्त आ जाऊँ। उस समय तत्काल के लिए मुरदों को फिर से जिलाने की अद्‌भुत बात दिखाने का वचन दिया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने घर पहुँच कर तीन सज्जनों को रूमाल दिखाया। हर एक को फूलों की खुशबू आती दिखायी दी। इसलिए इन सारी बातों को सम्मोहन विद्या कहकर एक चुटकी में उड़ा नहीं दे सकता था। न इसको छल-कपट ही कह कर मैं तुष्ट हो सकता था।

❑ ❑ ❑

दुबारा मैं जादूगर के घर पहुँच गया। उन्होंने मुझको शुरू में ही बता दिया कि वे छोटे जानवरों को ही जिला सकते हैं। प्राय: वे चिड़ियों के साथ प्रयोग किया करते थे।

एक छोटी गौरैया की गरदन मरोड़ डाली गयी। एक घण्टे तक वह हमारी आँख के सामने रक्खी गई ताकि हमें विश्वास हो जाय कि वह सचमुच मरी ही है। उसकी आँखें अचल थीं; बदन न हिलता था न डुलता था। सारी देह तन कर हमको अपनी दारुण कहानी सुना रही थी। एक भी ऐसा चिह्न न था कि हमें उसके जीवित होने का भ्रम पैदा हो।

जादूगर ने काँच निकाला और सूर्य की किरणों को चिड़िया की आँखों पर केन्द्रस्थ कर दिया। कुछ मिनट तक कोई विशेषता देखने में नहीं आयी। वृद्ध जादूगर अपने विचित्र प्रयोग में लगे हुए थे। उनके विशाल नेत्र बिलकुल निश्चल थे। चेहरा उनका एकदम गम्भीर था। उस पर किसी भावना का वेग नजर नहीं आता था। उनके चेहरे से एक प्रकार का निर्लिप्त भाव झलक रहा था। अचानक ही उनके ओंठ खुले और वे किसी अजीब भाषा में एक मन्त्र का पुरश्चरण करने लगे। थोड़ी देर बाद चिड़िया की लाश कुछ-कुछ हिलने लगी। मैंने एक मरणासन्न कुत्ते को इस प्रकार झटके खाते देखा है। बाद में धीरे-धीरे उसके पंख फड़फड़ाने लगे। चन्द मिनट बाद ही गौरैया अपने पाँवों पर खड़ी हो गई!

इस विचित्र पुनर्जीवन के बाद चिड़िया में काफी मजबूती आ गई, यहाँ तक कि वह कमरे के चारों ओर उड़ कर अपने बैठने के लिए नये-नये आलम्बन खोजने लगी। यह सारी घटना इतनी गजब की मालूम होने लगी कि मैं एकदम चकित होकर अपने दिमाग को ठिकाने पर लाने की चेष्टा में लग गया। मेरे चारों ओर जो व्यक्ति बैठे हुए थे वे सच्चे थे या कल्पित, इसी बात का निश्चय कर लेने की मुझे जरूरत हुई।

इसी प्रकार गम्भीरता से आध घण्टा बीत गया। मैं उस पुनरुज्जीवित बेचारी चिड़िया के फड़फड़ाने की चेष्टा को देखते हुए अपने को भूला हुआ था कि अन्त में एक आकस्मिक बात प्रकट हुई जिसने मेरे प्राणों को उछालकर ओठों तक पहुँचा दिया। वह बेचारी गौरैया अब फिर नहीं उड़ी। मर कर हमारे पैरों के सामने गिर पड़ी। वहीं वह पड़ी हुई थी, न हिलती थी न डुलती थी। मैंने उसको गौर से देखा। उसकी साँसें नहीं चलती थीं। वह सचमुच मर ही गई थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने जादूगर से प्रश्न किया—"उसको और कुछ समय तक जीवित रख सकते हैं?"

उन्होंने कहा—"अभी तो इससे अधिक मैं नहीं दिखा सकता।—" कविराजजी ने मेरे कान में कहा कि विशुद्धानन्दजी अपने भावी प्रयोगों से और अधिक आशा रखते हैं। वे और भी कई विचित्र बातें करके दिखा सकते थे। लेकिन उनके अनुग्रह का अनुचित लाभ उठा कर उनको राह की गर्द फाँकने वाले किसी जादूगर की कोटि में रखना मुझे सोहता नहीं था। जो मैं देख चुका था उसी से मुझे सन्तुष्ट होना पड़ा। मुझे फिर से भासने लगा कि कमरे की आबोहवा में एक निराला जादू भरा हुआ है। विशुद्धानन्दजी की अन्यान्य विभूतियों की कथायें मेरी इस धारणा को और भी बढ़ाने लगीं।

मुझे मालूम हुआ कि वे शून्य से ताजे अंगूर पैदा कर सकते हैं, हवा में से मिठाइयाँ मँगा सकते हैं और वे यदि अपने हाथ में मुरझाया हुआ फूल ले लें तो वह फिर से हरा-भरा हो जायगा।

❑ ❑ ❑

आँखोंदेखी इन करामातों का क्या रहस्य है इसी बात को सोचते-सोचते मुझे एक असाधारण बात का पता लगा। वह बात भी ऐसी है कि जिसके बयान से असली विषय का ज्ञान नहीं होता। अब भी बनारस के उस जादूगर के समतल ललाट के तले कोई वास्तविक रहस्य छिपा है और आज तक उनके सबसे अंतरंग चेले भी उसको जान नहीं पाये हैं।

विशुद्धानन्दजी ने मुझको बताया कि उनका जन्मस्थान बंगाल प्रान्त है। तेरह वर्ष की उम्र में किसी जहरीले जानवर ने उनको डस लिया और वे एक खतरनाक बीमारी के पंजे में पड़ गये। उनके जीने की कोई आशा न देख उनकी माँ उनको गंगाजी के तीर पर ले गयीं क्योंकि गंगाजी के किनारे प्राण छोड़ने में बड़ा ही पुण्य माना जाता है। परिवार के सब लोग किनारे पर रोते हुए खड़े हुए थे और अन्त्येष्टि की सारी तैयारियाँ एक ओर हो रही थीं। विशुद्धानन्दजी को पानी में ले गये तो एक अद्भुत बात देखने में आयी। ज्यों-ज्यों उनको और गहरे पानी में उतारते जाते थे त्यों-त्यों उनके बदन के चारों ओर पानी घटता जाता था। ज्यों-ज्यों बालक को ऊपर उठाते जाते थे त्यों-त्यों अपनी सहज स्थिति तक पानी ऊपर चढ़ आता था। बार-बार उनको डुबाने की चेष्टा की गई और हर बार यही बात देखने में आयी। शायद इस मरणासन्न बाल अतिथि को गंगा माई स्वीकार करना नहीं चाहती थीं।

किनारे पर एक योगी बैठे हुए यह सारी घटना देख रहे थे। वे आसन से उठकर वहाँ पर गये और उन्होंने यह भविष्यवाणी की कि बालक दीर्घायु होगा और महापुरुष बनेगा; वह एक प्रसिद्ध योगी बनेगा और उसके भाग्य के तारे खूब ही चमकेंगे। बाद को योगी ने उस बालक के जहरीले घाव पर कुछ जड़ी-बूटियों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्क की मालिश की और चले गये। सातवें दिन वे फिर लौट आये और बालक के माँ-बाप से बता दिया कि लड़का चंगा हो गया। उनकी बात ठीक और सही थी। लेकिन इस बीच में बालक के जीवन में एक अजीब परिवर्तन देखने में आया। उसकी मनोवृत्तियाँ और सारा चरित्र ही एकदम पलटा खा गया। घर पर माता-पिता के संग आराम के साथ रहने के बजाय एक घुमक्कड़ योगी बन जाने की धुन उस पर सवार हो गई। वह तभी से अपनी माँ को बड़ा ही तंग करने लगा, यहाँ तक कि आखिर के कुछ वर्ष के बाद उसकी माता ने घर छोड़ने की अनुमति उसे दे दी और विशुद्धानन्दजी योगियों की खोज में निकल पड़े।

हिमालय के उस ओर जो रहस्यमय भूमि तिब्बत है उसने उनके मन को खींच लिया। वहाँ के विभूति-सम्पन्न योगियों में अपने योग्य गुरुदेव की खोज में वे जी-जान से लग गये। भारतीयों की यह दृढ़ धारणा होती है कि यदि सच्चे योगी बनने की इच्छा हो और योग-मार्ग में सफलता पाना हो तो अवश्य ही जिज्ञासु को चाहिये कि वह किसी ऐसे योगिवर का, जो योग का सारे मर्मों से भली प्रकार परिचित हो, अंतरंग शिष्य बने। बालक विशुद्धानन्द ने ऐसे योगिवर के लिए झोंपड़ियों, गुफाओं आदि में ही नहीं बल्कि उन पहाड़ों में भी, जहाँ हड्डियों को भी सुन्न करने वाला तुषारमय पवन बहता है, तत्परता के साथ खोज की लेकिन वे निराश होकर घर लौटे।

कई वर्ष किसी महत्त्वपूर्ण घटना के बिना गुजर गये। तो भी उनका हौसला कुछ भी नहीं घटा और दुबारा उन्होंने भारतवर्ष की सीमा को पार कर दक्षिण तिब्बत की हिमाकीर्ण बंजर भूमियों की खाक छानी। किस्मत की बात है कि पहाड़ों के बीचोंबीच एक अति साधारण कुटिया में उन्हें एक ऐसे व्यक्ति मिले जो अन्त को उनके इतने दिनों के खोजे हुए गुरु निकले।

इस सम्बन्ध में विशुद्धानन्दजो ने मुझे एक ऐसी अविश्वसनीय बात बतायी जिसको सुन कर मैंने किसी और अवसर पर हँसी-मजाक में उड़ाया होता पर अब उनकी बात ने मुझे चकित कर दिया। बहुत गम्भीरता के साथ मुझसे निश्चय ही बताया गया था कि उनके गुरु की उम्र 1200 वर्ष से किसी भाँति कम नहीं है। विशुद्धानन्दजी ने यह बात इतनी शान्तिपूर्वक बतायी कि जैसे कोई पश्चिमी मामूली तौर पर कह दे कि वह 40 वर्ष का है।

इस दीर्घ जीवन की आश्चर्यजनक कथा इससे पहले मैं दो बार सुन चुका था। अडयार नदी के किनारे पर रहने वाले योगी ब्रह्म ने मुझसे बताया था कि उनके गुरु 400 वर्ष से कुछ ऊपर के होंगे और पश्चिम भारत के एक महात्मा से मैंने सुना था कि हिमालय पर किसी दुर्गम पहाड़ी खोह में 1000 वर्ष की उम्र वाले योगी निवास कर रहे हैं। उन्होंने कहा था कि वे योगी इतने बूढ़े हैं कि उनकी पलकें एकदम झुकी पड़ी हैं। मैंने इन दोनों बातों को निरी गप्प समझ कर उड़ा दिया था

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेकिन अबकी बार उनको भी मुझे कुछ-कुछ सच मानना पड़ा, क्योंकि मेरे सामने विशुद्धानन्दजी अमर जीवन के मार्ग पर आरूढ़ होने की मूक सूचना दे रहे थे।

तिब्बत के योगी ने बालक विशुद्धानन्द को हठयोग की क्रियाओं और सिद्धान्तों में दीक्षित कर दिया। उनके कठिन शिक्षण में शिष्य ने अलौकिक शारीरिक और मानसिक विभूतियाँ प्राप्त कीं। वे सौर विद्या में भी शिक्षित किये गये। बारह वर्षों तक इस हिमाकीर्ण भूमिखण्ड में कई कठिनाइयाँ झेलते हुए भी उस तिब्बत के अमर जीवन के स्थूल कीर्तिस्तम्भ ऋषिवर के चरणों की बालक विशुद्धानन्द शुश्रूषा करते रहे। जब शिक्षा पूरी हुई, वे भारत में भेजे गये। वे पहाड़ी घाटियाँ पार कर देश में आ गये और समय पाकर स्वयं योग-मार्ग के एक आचार्य बने। कुछ समय तक उन्होंने पुरी-जगन्नाथ धाम में एक अच्छा बँगला बनवा कर निवास किया। उनके चारों ओर उच्च कुल के हिन्दू लोग बहुतायत से शिष्य और चेले बन कर इकट्ठे होते हैं। धनी व्यापारी, अमीर जमींदार, सरकारी अफसर और एक राजा भी उनके चेलों में हैं। शायद मुझसे भूल हो गई हो तो हो, पर यह बात मेरे दिमाग में बैठ गई कि न तो साधारण जनता की वहाँ तक पहुँच है और न उसे योगी द्वारा कोई प्रोत्साहन ही मिलता है।

मैंने उनसे सीधे प्रश्न किया—"आपने ये सारी करामातें कैसे दिखाईं?"

विशुद्धानन्दजी ने अपने मोटे हाथों को समेट कर कहा—"जो कुछ आपने देखा वह योग का फल नहीं है; वह है सौर विद्या का खेल। योग का सार यही है कि योगी अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध कर ले और ध्यान, धारणा तथा समाधि का अभ्यास करते आगे बढ़े। लेकिन सौर विद्या में इन बातों के अभ्यास की कोई जरूरत नहीं है। सौरविज्ञान कुछ निगूढ़ रहस्यों का संग्रह है। उनसे काम लेने के लिए किसी विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। जैसे किसी पश्चिमीय भौतिक विज्ञान का अध्ययन किया जाता है ठीक उसी प्रकार इस विद्या का भी अध्ययन किया जा सकता है।"

कविराजजी ने इसकी पुष्टि करते हुए कहा—"इस विचित्र सौरविज्ञान का सम्बन्ध अन्य विज्ञानों की अपेक्षा विद्युत् शक्ति और आकर्षण शक्ति से अधिक है।"

मैं पूर्ववत् नासमझ ही रहा। अत: विशुद्धानन्दजी और भी बताने लगे :

"तिब्बत की यह सौर विद्या कोई नई बात नहीं है। अति प्राचीन समय के भारतीय योगियों को इसकी अच्छी जानकारी थी। लेकिन अब तो बहुत ही कम लोगों को छोड़ भारत में भी इस विद्या के जानने वाले नहीं हैं। भारत में भी एक ढंग से इस विद्या का लोप-सा हो गया है। सूर्य-रश्मि में कुछ प्राणद शक्तियाँ मिली हुई हैं। यदि तुम जान लोगे कि इनको सूर्य-रश्मि में रहनेवाली अन्य चीजों से अलग कर कैसे इकट्ठा कर सकते हैं, तो तुम भी अद्भुत करामातें दिखा सकोगे। सूर्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रश्मि में कुछ आकाश की शक्तियाँ मौजूद हैं। ये यदि तुम्हारे वश में हो जावें तो तुममें जादू-सी ताकत आ जायगी।''

''क्या आप अपने चेलों को सौर विद्या के मर्म समझा रहे हैं?''

''अभी नहीं, किन्तु सिखाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। कुछ इने-गिने शिष्यों को ही ये रहस्य बताये जायँगे। अभी हम एक बड़ी प्रयोगशाला, जहाँ प्रत्यक्ष निदर्शनों के साथ पढ़ाई हो सके, बनवाने में लगे हैं।''

''तो आपके शिष्य इस समय क्या सीख रहे हैं?''

''उनको योग की दीक्षा दी जा रही है।''

पण्डित कविराजजी प्रयोगशाला दिखाने मुझे ले चले। वह रूप-रंग में किसी यूरोपियन मकान से मिलती थी। उसकी कई मंजिलें थीं और वह नये ढंग से बनी थी। दीवारें पक्की लाल ईंटों की थीं जिनमें खिड़कियों के स्थान पर बड़े-बड़े छिद्र दिखाई दे रहे थे। उनमें बड़े-बड़े शीशों के तख्ते लगने को थे, पर वे अभी तैयार नहीं हुए थे। शीशों की जरूरत इसीलिए पड़ी कि गवेषणा करने में सूर्य-रश्मि को लाल, नीले, हरे, पीले और स्फटिक काँचों में से प्रतिबिम्बित करने की आवश्यकता थी।

पण्डितजी ने मुझे बताया कि जिस ढंग के शीशों की उन विराट् खिड़कियों के लिए जरूरत थी वैसे बड़े शीशे हिन्दुस्तान भर में किसी कारखाने में तैयार नहीं हो पाये थे। अतएव काम अधूरा ही रह गया था। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम इंग्लैण्ड में इस बारे में कुछ दर्याफ्त करो, पर यह जरूर ध्यान में रहे कि विशुद्धानन्दजी चाहते हैं कि उनके आदेशों में और काम के ब्यौरे में रत्ती भर भी फर्क न आने पावे। ये आदेश इस किस्म के थे कि काँचों के निर्माताओं को विश्वास दिलाना पड़ेगा कि काँच हवा के बुलबुलों से एकदम खाली हैं, रँगा हुआ शीशा एकदम पारदर्शी है, और तख्ते 12 फीट लम्बे, आठ फीट चौड़े और 1/4 अँगुल की मोटाई के है।* प्रयोगशाला को विशाल बाग-बगीचे घेरे हुए थे। पर वे ताड़ जाति के कुछ घनी शाखा वाले पेड़ों की श्रृंखला की ओट में बाहर के प्रेक्षकों की निगाहों से प्रच्छन्न थे।

लौट कर मैं विशुद्धानन्दजी के सामने आ बैठा। बहुत से चेले एक-एक करके चले गये थे, सिर्फ दो-चार ही रह गये थे। कविराजजी मेरी बगल में बैठे हुए

* मैंने इंग्लिस्तान के सबसे बड़े काँच के तख्ते बनाने वाले कारखाने को सारा ब्यौरा लिख भेजा पर वे इस काम में हाथ डालने को तैयार न हुए क्योंकि विशुद्धानन्दजी ने शीशे की बनावट के बारे में जो शर्तें लगायी थीं उनको पूरा करना असम्भव था। उन्होंने साफ ही प्रकट कर दिया कि यह किसी कारखाने के मालिक की समझ के परे की बात है कि कोई ऐसी राह निकले जिससे काँच एकदम हवा के बुलबुलों से खाली हो, पारदर्शिता में कुछ न्यूनता लाये बिना काँचों को रँग सके और सचमुच 1/4 अंगुल से अधिक मोटाई का शीशा ठीक-ठीक तैयार हो। उन्होंने बताया कि इस मोटाई का शीशा बन जाय तो भी उन्हें आधे-आधे करके भेजना होगा नहीं तो बनारस तक पहुँचते-पहुँचते उनके टूट जाने की बड़ी ही सम्भावना थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। अध्ययन की गहरी छाप वाले अपने मुख को गुरुदेव की ओर करके वे गहरी श्रद्धा के साथ उन्हें निहार रहे थे।

पल भर के लिए विशुद्धानन्दजी ने मेरी ओर ताका और फिर फर्श की ओर गौर से देखने लगे। उनके व्यवहार में एक उदात्तता और एक प्रकार के संकोच का मिलाप था। उनके मुख पर एक अलौकिक गम्भीरता झलक रही थी। वह गम्भीरता उनके चेलों के चेहरों में भी प्रतिबिम्बित हो रही थी।

विशुद्धानन्दजी की इस गम्भीरता के तले क्या छिपा है इस बात के जानने की कोशिश करके भी मैंने कुछ नहीं पाया। जैसे इस पवित्र नगरी के स्वर्ण मन्दिर का गर्भगृह मुझ पश्चिमी के लिए दुर्गम है, ठीक उसी भाँति इनका मन मेरे लिए दुरूह और दुर्बोध जँचने लगा। वे प्राच्य तिलिस्मों के अजीब विज्ञान में बड़े ही निष्णात हैं। मेरे मन में यह दृढ़ धारणा बैठ गई कि हालाँकि दुबारा मेरी प्रार्थना के पहले ही इन्होंने अपने करिश्मे दिखा दिये थे, तो भी हमारे आपस में हमेशा ही एक दुर्गम मानसिक अवरोध खड़ा हुआ है। मुझे भासने लगा कि यहाँ पर तो मेरी ऊपरी आवभगत हुई थी। यहाँ पश्चिमी शिष्य और पश्चिम के गवेषकों की कोई आवश्यकता नहीं थी।

अचानक उन्होंने एक ऐसी बात कह डाली जिसकी मुझे तनिक भी आशा नहीं थी। उन्होंने कहा :

"जब तक मुझे अपने तिब्बत के गुरु से अनुमति प्राप्त न हो तब तक मैं यदि चाहूँ तब भी तुमको दीक्षा नहीं दे सकता। इसी शर्त पर मुझे काम करना पड़ता है।"

क्या वे मेरे मन की बातें ताड़ गये? मैंने उनकी ओर ताका। उनके उन्नत ललाट पर कुछ अस्पष्ट सिकुड़न पड़ गई। जो हो, मैंने उनका शिष्य होने की कोई लालसा प्रकट नहीं की थी। किसी का चेला बनने का मैं उतना उतावला नहीं था। पर एक बात का तो मुझको निश्चय हो ही गया था। यदि भूल से भी ऐसी कोई प्रार्थना करूँ तो 'नहीं' के निराशाजनक उत्तर के सिवा और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। मैंने पूछा :

"आपके गुरु यदि सुदूर तिब्बत में हैं तो आप उनसे अनुमति कैसे ले सकते हैं?"

उन्होंने जवाब दिया—"हम दोनों के बीच आत्मिक जगत् में व्यवहार अच्छी तरह चलता है।"

मैं सुन तो रहा था पर कुछ भी समझ में नहीं आता था. तब भी उनकी उस आकस्मिक बात से मेरा मन थोड़ी देर तक भटक गया। मैं गहरे सोच में पड़ गया। बे समझे-बूझे मैं यह प्रश्न कर बैठा :

"महाशय, 'सम्बोध' किस तरह प्राप्त हो सकता है?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशुद्धानन्दजी ने उत्तर न देकर उलटे मुझसे ही एक प्रश्न किया—"जब तक योग का अभ्यास न करो, सम्बोध प्राप्त कैसे होगा?"

चन्द मिनट तक मैं इन बातों के अर्थ पर मनन करता रहा। और तब बोला—"लेकिन मुझे बताया गया है कि बिना गुरु के योग के सफल अभ्यास की बात तो दूर रही, उसका श्रीगणेश भी किया नहीं जा सकता। सच्चे गुरुओं का होना दुर्घट है।"

उनके चेहरे का रंग नहीं बदला। वे उसी भाँति उदासीन और अविचल बने रहे। बोले :

"जिज्ञासु तैयार हो तो गुरु अपने आप मिल जावेंगे।"

मैंने अपनी शंकाओं की पोथी खोली तो वे अपने मजबूत हाथ को सामने बढ़ाकर बोले :

"पहले मानव को चाहिए कि वह अपने आपको तैयार कर ले, फिर चाहे वह कहीं भी रहे, गुरु प्राप्त हो ही जावेंगे। यदि हाड़-मांस में गुरु का प्रत्यक्ष न भी हो तो भी वे जिज्ञासु की अन्तर्दृष्टि के रूप में प्रकट होवेंगे।"

"इस साधना का प्रारम्भ कैसे हो?"

"प्रतिदिन एक निश्चित समय पर निश्चित अवधि तक यह सहज आसन मार कर बैठने का अभ्यास करो। यह तुम्हारी तैयारी में खूब मदद पहुँचावेगा। सावधानी के साथ क्रोध और काम को अपने वश में रखने की कोशिश करना।"

विशुद्धानन्दजी यह कह कर पद्मासन की पद्धति मुझे दिखाने लगे। मुझको तो वह पहले ही से आता था। मेरी समझ में नहीं आया कि इस आसन को, जिसमें पैरों को टेढ़ा-मेढ़ा करना पड़ता है, वे सहज आसन क्यों बताते हैं। मैं बोल उठा :

"कौन यूरोपियन युवा यह जटिल आसन जमा सकेगा?"

"प्रारम्भ में कुछ कठिनाई अवश्य होगी। हर दिन सुबह, शाम अभ्यास करने से यह बहुत ही आसानी से सीखा जा सकेगा। सबसे मुख्य बात यही है कि योग के अभ्यास के लिए एक निश्चित समय ठीक कर ले और उससे किसी हालत में विचलित न होवे। शुरू-शुरू में पाँच ही मिनट काफी हैं। एक महीने के बाद इस समय को दस मिनट तक बढ़ा सकते हो, और तीन महीने बाद बीस मिनट तक। यों ही धीरे-धीरे अभ्यास की अवधि को बढ़ाते जाना होगा। ध्यान रहे कि मेरुदण्ड को सीधा रक्खें। इससे साधु को एक शारीरिक समता और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।"

"तो आप हठयोग का उपदेश कर रहे हैं?"

"हाँ, यह न समझना कि राजयोग हठयोग से किसी तरह बेहतर है। जैसे हर मनुष्य सोचता और विचारता है और साथ ही कार्य भी करता है, उसी तरह हमें जीवन के दोनों पहलुओं को शिक्षित करना होगा। शरीर का मन पर, और मन का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरीर पर असर होता रहता है। किसी क्रियात्मिका उन्नति में हम इन दोनों को एक-दूसरे से कदापि अलग नहीं कर सकते।"

मुझे फिर से प्रतीत होने लगा कि ये महाशय मेरी इस तहकीकात को भीतर ही भीतर पसन्द नहीं करते। वहाँ के वातावरण में एक ही प्रकार की निराशा और मानसिक जड़ता समा गई थी। मैंने निश्न्य कर लिया कि शीघ्र ही उनसे रुखसत लूँ, लेकिन एक आखिरी प्रश्न पूछे बिना नहीं।

"क्या आपने जान लिया है कि जीवन का कोई ध्येय, कोई उद्देश्य सचमुच ही है?"

मेरे भोलेपन पर उनके चेलों में गम्भीरता एक मुसकान में परिणत हो गई। ऐसा प्रश्न कोई नास्तिक ही, कोई अनजान पश्चिमी ही पूछ सकता है। वेद आदि सब हिन्दू धर्मग्रन्थ एक कण्ठ से बता रहे हैं कि ईश्वर ने अपने किसी उद्देश्य की पूर्ति के वास्ते यह सारा संसार सिरजा है और उसी वास्ते इसका पालन भी कर रहा है।

विशुद्धानन्दजी ने मेरे प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। पं० गोपीनाथ कविराजजी की ओर उन्होंने एक बार ताका तो वे जवाब देने लगे :

"क्यों नहीं? ईश्वर की इस सृष्टि का सचमुच ही एक उद्देश्य है। हम सबों को चाहिए कि हम आध्यात्मिक पूर्णता हासिल कर लें और ईश्वर से एक हो जावें।"

फिर एक घण्टे तक कमरे में सन्नाटा था। विशुद्धानन्दजी ने एक मोटी किताब उठा ली और उसके बड़े-बड़े पन्ने उलटने लगे। उसकी जिल्द पर बँगला में कुछ छपा था। कोई-कोई चेले ध्यान करने लगे, कोई सोने लगे और कोई शून्य दृष्टि से ताकने लगे। मुझ पर भी एक प्रकार की बेहोशी छाने लगी। मुझे प्रतीत होने लगा कि देर तक यहीं ठहरूँ तो या तो मैं सोने लगूँगा या किसी प्रकार की बेहोशी का शिकार बनूँगा। अतः मैंने अपनी सारी शक्तियों को समेट लिया और विशुद्धानन्दजी को प्रणाम करके उनसे छुट्टी ली।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानगंज का रहस्य

—एस०एन० खण्डेलवाल

इस ग्रन्थ में ज्ञानगंज के सम्बन्ध में कुछ विशेष कहना आवश्यक प्रतीत होता है। समय-समय पर (कविराजजी महाराज के प्रियजन) स्व० डॉ० हरिश्चन्द्र शुक्ला, प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, कविराजजी महाराज के परम भक्त स्व० दादा सीताराम पाण्डेय प्रभृति सज्जनों की इस सम्बन्ध में कविराजजी से चर्चा होती रहती थी। इसी प्रकार मेरे मित्र तथा कविराजजी के अनन्य सेवक स्व० चन्द्रशेखर स्वामी हीरेमठ भी अपने साधन-बल से ज्ञानगंज के सम्पर्क में थे। श्रद्धेय तथा गुरुतुल्य डॉ० ब्रह्मगोपाल भादुड़ीजी का भी अविच्छिन्न सम्पर्क इस प्रकार के कई आश्रमों से रहा है। इन गण्यमान विद्वानों से इस सम्बन्ध में जो कुछ सुना, उसका सारतत्त्व यहाँ अंकित किया जा रहा है। ज्ञानगंज अत्यन्त निभृत प्रदेश में स्थित एक साधनाश्रम मात्र नहीं है। यह ऐसी स्थली है जिसका आश्रय लेकर महापुरुषगण विश्व का रूपान्तरण करने में सचेष्ट हैं तथा प्रयत्नरत हैं।

पहला तत्त्व यह है कि सामान्य जीववर्ग (मनुष्य भी) बाह्यवायु का आश्रय लेकर श्वास-प्रश्वास की क्रिया द्वारा जीवन अतिवाहित कर रहा है। इसका आश्रय लेने से यथार्थ ऊर्ध्वगति नहीं होती। यद्यपि प्राणायामादि से ऊर्ध्वगति अवश्य होती है, परन्तु वह यथार्थ नहीं है। जरा भी लगाम ढीली होते ही, पुनः जहाँ की तहाँ। यह कालवायु है। अन्तर्वायु नहीं है। अन्तर्वायु में केवल श्वास है। प्रश्वास नहीं है। देवगण में भी मात्र श्वास रहती है, प्रश्वास नहीं रहती। प्रश्वास है कालचक्र। इस कालवायु से सम्बन्ध विच्छिन्न होते ही काल का आवर्त्तन समाप्त हो जाता है और सिद्धदेह प्राप्त हो जाती है। यद्यपि बाहर से देखने पर वह मानव देह जैसी ही है तथापि उसमें पतन है ही नहीं। यह स्थिति सबके लिए सम्भव नहीं है। परन्तु सृष्टि में यह भी व्यवस्था है, जहाँ यह स्थिति सामान्य आयास से ही प्राप्त हो जाती है। हिमालय में ऐसे स्थान का सन्धान प्रकृत साधकगण को मिल जाता है। इन स्थानों में बहुसंख्यक ब्रह्मचारी, कुमारी, तीर्थस्वामी, परमहंस, भैरवी आदि साधन तथा विज्ञान-शिक्षा प्राप्त करते हैं।

ज्ञानगंज जैसे सिद्धाश्रम का एक रहस्य यह है कि उसकी स्थूल तथा सूक्ष्म सत्ता दोनों ही है। इसकी सत्ता रहस्य से आवृत है। ब्रह्मलोक से लेकर पाताल तक जितने भी लोक हैं उनकी संरचना 36 तत्त्वों पर आधारित है। तत्त्व ही सबके उपादान हैं। समस्त लोक-लोकान्तर जीव के कर्मसूत्र से ग्रथित होते हैं, तदनुसार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोक-लोकान्तर में जीव की गति होती है। ज्ञानगंज के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता। यह मायिक उपादानों से रचित नहीं है। नित्य ज्योतिर्मय है। यहाँ दिन-रात्रिगत भेद नहीं है। यहाँ आकाश तथा मृत्तिका नहीं है। समस्त भूमि स्पष्टतः स्फटिकमयी है, तथापि उसमें लता-वृक्ष, पुष्पोद्यान, भौरों का गुंजन, सर्वऋतु के पुष्पफल सब कुछ हैं। अतिप्राकृत स्थल में भी स्तर हैं। वहाँ के निवासी अपनी-अपनी योग्यतानुसार विभिन्न स्तरों में निवास करते हैं।

इस अतिप्राकृत स्तर का ही एक उच्चतर स्तर है नित्यधाम। यहाँ का नेतृत्व उमा माँ (महाभैरवी) पर न्यस्त है। ये एक ज्योतिर्मयी नारी मूर्ति हैं। इनका भगवती के तुल्य स्वरूप उज्वल ज्योति से उद्भासित रहता है। मस्तक पर चूड़ाकार जटाजूट, ललाट पर रक्तचन्दन तिलक, कण्ठ में रुद्राक्ष-माला, हाथों में रजत शुभ्र दीर्घत्रिशूल रहता है। इनके परिधान का वर्ण है रक्त वर्ण। वाणी अत्यन्त मधुर है। करुणा-भरे नेत्र सदा आर्द्र रहते हैं। जहाँ इन्होंने तप किया था वहाँ का भूमिखण्ड इनके तपः-तेज से दग्ध हो गया। इस दग्ध खण्ड की भस्म को बाबा विशुद्धानन्द अपने पास संरक्षित रखते थे। क्रिया साधना काल में इस भस्म का तिलक लगाते थे। इस भस्म में शीतलता तथा अपूर्व सुगन्ध है। इस लेपन से चक्षुद्वय प्रातःकालपर्यन्त शीतल बने रहते थे। नित्यधाम के अतिरिक्त अन्य स्तर का नाम है गुरुराज्य। इसका आयतन अत्यन्त बृहत् है। यहाँ नीलवर्णा, रक्तवर्णा, शुक्लवर्णा नदीरूप किरणें उस तरह प्रवाहित होती हैं मानो नदी बह रही हो। साधक की उत्तरोत्तर उन्नति के साथ उन्हें उत्तरोत्तर उच्च स्तर मिलता जाता है। पहले इस स्थान का नाम था इन्द्रप्रस्थ। परवर्ती काल में इसे ज्ञानगंज कहा जाने लगा।

बहुसंख्यक कुमार तथा कुमारी यहाँ साधन-शिक्षा प्राप्त करते हैं। सभी को दीक्षा के पश्चात् 12 वर्ष पर्यन्त योग-साधना तथा ब्रह्मचर्य स्थिति का पालन करना पड़ता है। प्राचीन आचार्यगण परीक्षा लेते हैं। ब्रह्मचारियों की परीक्षा भैरवी मातायें लेती हैं। इनकी आयु 200-300 वर्ष से अधिक ही है। किन्तु बाह्यदृष्टि से योगबल से अपरूप लावण्ययुक्त हैं। केवल मात्र योनि प्रदेश वस्त्रावृत रहता है। इन्हें देखकर जिस ब्रह्मचारी के मन में तनिक भी चांचल्य आया, अन्तर्दृष्टिसम्पन्न भैरवी मातागण उसे तत्काल जान जाती हैं, और उसके सिर पर उत्तप्त लौह शलाका से एक चिह्न अंकित कर देती हैं। वह ब्रह्मचारी पुनः 12 वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य को दृढ़ करने के लिए भेज दिया जाता है। यहाँ भैरवी माताओं की स्थिति तथा अधिकार परमहंसों के ही जितना है। ज्ञानगंज में विमलामति ब्रह्मचारिणी भी निवास करती हैं।

ज्ञानगंज की सत्ता लौकिक (स्थूल) तथा अलौकिक (सूक्ष्म) दोनों ही है। अलौकिक ज्ञानगंज में सब कुछ स्वप्रकाशरूप है। वहाँ चैतन्य ही पंचतत्त्व है। यहाँ की तरह का मिट्टी, जल, वायु, अग्नि आकाश नहीं है। चैतन्य ही सब बन जाता है। लौकिक ज्ञानगंज में शिष्य तथा सिद्ध परमहंस आदि हैं, परन्तु अलौकिक ज्ञानगंज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्यन्त रहस्यमय है। लौकिक ज्ञानगंज कर्मभूमि है। इसमें जिस कर्म का अनुष्ठान होता है, उसमें काल का ध्वंस करने के लिए काल का ही आश्रय लेते हैं। यह अष्टक्षण रूप है—

(1) महामहाक्षण	—	रात्रि $11^1/_4$ से रात्रि 12 तक
(2) महाक्षण	—	रात्रि 12 से 3 तक
(3) ब्राह्मक्षण	—	रात्रि 3 से सूर्योदय तक
(4) मायाक्षण	—	सूर्योदय से 8 बजे सुबह तक
(5) मोहमायाक्षण	—	8 बजे सुबह से 12 बजे मध्याह्न तक
(6) अभिशप्तक्षण	—	मध्याह्न 12 से अपराह्न 3 पर्यन्त
(7) दग्धक्षण	—	अपराह्न 3 से सन्ध्या पूर्व तक।

संध्या से रात्रि $11^1/_4$ तक के समय को क्षण नहीं कहते। वह त्रिकाल है। जैसे—

(1) काल	—	सन्ध्या से रात्रि 8 पर्यन्त
(2) अकाल	—	रात्रि 8 से रात्रि 10 पर्यन्त
(3) कालाकाल	—	रात्रि 10 से रात्रि $11^1/_4$ पर्यन्त।

इन तीनों काल के मिलन से आस्था नामक त्रिकाल शक्ति उदित होती है। इसके अनन्तर रात्रि $11^1/_4$ को आधार कहते हैं। इसमें कालाकाल की अवस्था से आधारोन्मेष होता है। आधारोन्मेष होते ही $11^1/_4$ बजे क्षण आकर युक्त हो जाता है जिसे कहते हैं महामहाक्षण।

ज्ञानगंज के सिद्ध अद्वैतवादी होने पर भी जीववादी हैं। समग्र जीवसमूह की उस अदृश्य स्थिति का आस्वादन करना ही उनका लक्ष्य है, जिस एक की एक ही के द्वारा उपलब्धि कर लेने से समग्र विश्व को उसका आस्वादन मिल सकेगा। अतएव यह वीरों का मार्ग है। यही यथार्थ वीराचार है। महासत्ता यथार्थतः अनन्त महासमुद्र के समान है। इसमें जब तक तरंग का उन्मेष नहीं होता, तब तक वह अव्यक्त ही रहती है। तिरोधान की स्थिति में महासत्ता का स्वरूप आत्मगोपित रह जाता है। इस आत्मगोपनावस्था में, इसकी पृष्ठभूमि में प्रमाता-प्रमेय समन्वित समग्र विश्व का उद्भव प्रत्यक्षीभूत होता है। जब अनुग्रह शक्ति जागृत होती है, तब सब विश्व अपने पूर्व स्वरूप में प्रत्याहृत हो जाता है। परन्तु ज्ञानगंज में तिरोधान है ही नहीं। वह प्रकृत नित्यवर्त्तमान भूमि है। (यह सूक्ष्म ज्ञानगंज के लिए कहा जा रहा है)

ज्ञानगंज की धारा के अनुसार दीक्षा से ही पशुत्व समाप्त होता है। इसके अभाव में पशुत्व, पाप तथा अशुद्धि का नाश नहीं हो सकता। अदीक्षित की देह अशुद्ध है। उससे देवार्चन कैसे हो सकेगा? एकमात्र अखण्ड परमतत्त्व ही जगत् के आदिगुरु हैं। उनसे ही अनन्त प्रकार के ज्ञानस्रोत का उद्रेक होता रहता है। प्रत्येक धारा में उनकी ही विशिष्ट शक्ति प्रवाहित होती रहती है। गुरु की शक्ति शिष्य में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संचरित होती है। जब वह शिष्य गुरुपद को प्राप्त करता है, तब अपने अनुगत शिष्य में इस शक्ति का आधान करता है। इस प्रकार गुरुशक्ति की धारा अक्षुण्ण प्रवाहित होती रहती है। यही सम्प्रदाय है। दीक्षा से शिष्य सम्प्रदाय से युक्त होता है। इससे उसमें परमेश्वर की विशिष्ट शक्ति का संयोजन तो रहता ही है, साथ-साथ उनके साथ योगयुक्तावस्था भी आती है। प्रकृतदीक्षा एक ही बार दी जाती है, तथापि क्रम-विकास के साथ-साथ अनेक बार प्रत्येक स्तरानुरूप दीक्षादान होता है। यह है क्रम-दीक्षा। क्रमदीक्षा में जब अन्तिम दीक्षा होती है, तभी क्रम की परिसमाप्ति होती है। तभी ज्ञानशक्ति का स्फुरण सम्भव होता है। ज्ञान की पूर्णता परमेश्वर की कृपादृष्टि से ही सम्भव है। इसे पूर्णाभिषेक कहते हैं। यही पाशमुक्ति भी है।

ज्ञानगंज में दीक्षा के 4 भेद हैं। प्रथम है मन्त्रविचार से दीक्षा। इसमें साधक के तीन प्राक्तन जन्मों का विचार करके तदनुरूप मन्त्रदान होता है। द्वितीय दीक्षा योगकर्त्तव्य की दीक्षा है। जो मन्त्रदीक्षा पाते हैं, वे मन्त्रयोग से पूर्णत्व प्राप्त करते हैं। जो कर्मकुशल हैं, उन्हें योगदीक्षा दी जाती है। यद्यपि देहशुद्धि के लिए प्रारम्भ में कुछ हठयोगोक्त प्रक्रिया आवश्यक है, तथापि देहशुद्धि के पश्चात् राजयोग का अनुशीलन करना पड़ता है। तृतीय है बीजोद्धार दीक्षा। यह अत्यन्त कुशल साधकों के लिए है। गुरु अपनी शक्ति से शिष्य के संस्कार तल में प्रच्छन्न रूप से स्थित कुशलमूल का विचार करके उसका उद्धार कर देते हैं। अर्थात् कुशलमूल को जाग्रत् कर देते हैं। चतुर्थ दीक्षा है साक्षात्कारात्मक दीक्षा। यह अत्यन्त तीव्र शक्तिपात है। साधारण साधक इस शक्तिपात के तेज को सहन नहीं कर सकते।

ज्ञानगंज की धारा के अनुसार कर्म आवश्यक है। वहाँ कृपा के स्थान पर कर्म को स्थूल दृष्टि से अधिक स्थान दिया गया है। 'कर्मेभ्यो नमः' वहाँ का उद्घोष है। कर्म के तीन अंग वहाँ कहे गये हैं। प्रथम है क्रिया, द्वितीय है जप, तृतीय है सेवा। कर्म तथा सेवा का वरण गुरु पूर्णिमा के दिन किया जाता है। मातृसेवा (कुमारी माँ-कुमारी शक्ति की अर्चना) ज्ञानगंज की चिरकाल से आचरित प्रथा है। वहाँ के महायोगीगण भी इसका विधान करते हैं। नित्य सेवा करने से साधन-पथ के विघ्न दूरीभूत हो जाते हैं। महानिशा कर्म भी सेवाकर्म है। सेवाकर्म के साथ-साथ महानिशा में जपानुष्ठान भी होना चाहिये।

जपकर्म तथा सेवानुष्ठान जीवनपर्यन्त करना होगा। इसका वरण जीवन के अन्तिम क्षण तक के लिए किया जाता है। मृत्यु ही जीवन का अन्त नहीं है। इसके बाद की स्थिति भी जीवन ही है, अतः कर्म तथा सेवा का मृत देह के साथ ही अन्त नहीं हो जाता। यह पूर्ण महाशक्ति की सेवा का कर्म है। खण्ड महाशक्ति की सेवा की तुलना में पूर्ण महाशक्ति की सेवा का आदर्श अत्यन्त उच्च है। सप्तदश कलात्मक माँ ही पूर्ण माँ हैं। अतः प्रथम दिवस में 17 कुमारी माँ की अर्चना आवश्यक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब साधनांग की विवेचना की जाती है। क्रिया से केन्द्रित लक्ष्य का उन्मेष होता है तथा स्थिरता आती है। इस स्थिति में जिस प्रकोष्ठ में क्रिया करना है, उसमें दीपक, विद्युत्, आदि कोई भी बाह्य प्रकाश नहीं आना चाहिये। द्वितीय अंग है जप संख्या। इसे क्रमशः नियमतः बढ़ाना होगा। गुरु द्वारा निर्दिष्ट संख्या से न्यून अथवा अधिक जप करना उचित नहीं है। जप का उद्देश्य है पूर्णत्व प्राप्ति। आध्यात्मिक विकासार्थ जपकर्म सार्थक उपाय है। यथाविधि गुरुदत्तकाय (दीक्षा से शुद्ध शरीर) में उत्कर्ष होता है कर्म से। गुरुदत्त देह का खाद्य है जप। गुरु के आदेश का निर्विचार पालन करना चाहिये। तृतीय अंग है मातृसेवा। कुमारी शक्ति ही समस्त शक्ति का मूल है। ये काल को उत्पन्न करती हैं। ये निराकारा हैं। हम इस साकार जगत् में जिनकी अर्चना करते हैं (ब्राह्मण की कन्या), वे आदिकुमारी भले ही नहीं हैं, तथापि कुमारीरूपा आदि माँ की अनुकृति हैं। आदि माँ ही माँ हैं। नादरूपी प्रणव ज्योतिरूप अनुभूत होता है। नाद की जो श्रुति है, उसे शब्द कहते हैं, अर्थात् दुर्गा। श्रुति अक्षररूपा है, निरक्षरा नहीं है।

यह अक्षररूपा अखण्ड कुमारी दुर्गा हैं। वे हैं शब्दातीत शब्द। मायातीत। काल का प्रसव करने वाली कुमारी ही सर्व सृष्टिमूल हैं। अचलानन्द (महातपा— विशुद्धानन्द परमहंसदेव के गुरु) की आराध्या आदि माँ ही आदिकुमारी हैं। लौकिक कुमारी (ब्राह्मण-कन्या) महामाया की अंशरूपा एक कला हैं। आजतक आदिकुमारी ने आत्मप्रकाश नहीं किया है। उनके आत्मप्रकाश के साथ-साथ जगत् ब्रह्ममय हो जायेगा। यही कारण है कि ज्ञानगंज में कर्म प्रधान है। कर्म से ही जगत् के दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति हो सकेगी। नित्य सेवा, अर्थात् कुमारी सेवा महानिशा में करना श्रेयस्कर है। सेवा से महापथ का परिष्कार होता है। आलोकित होता है। कर्मपथ में जो त्रुटि रह जाती है, वह इससे संशोधित होती रहती है। तभी नित्य गरीब-असहाय की सेवा, दानादि करना चाहिये।

कर्म है जप। यह कर्म निर्दिष्ट काल में ही नित्य करना उचित है। निर्दिष्ट काल का लंघन करने से कर्म बाधित हो जाता है। महानिशा के क्षण अर्थात् महामहाक्षण से ही योगी के दिन की सूचना होती है। अर्थात् योगी का दिन सूर्योदय से प्रारम्भ नहीं होता। उसका दिन प्रारम्भ होता है महामहाक्षण से। सूर्यास्तकालीन क्षण का अनुसन्धान कर लेने पर यथार्थ सन्ध्या सिद्ध हो जाती है। महानिशा कर्म माँ से सम्बन्धित है। सन्ध्याकालीन कर्म गुरु से सम्बन्धित होता है। महानिशा में जो कर्म-रचना होती है, उसे सन्ध्याकाल में गुरु को अर्पित करना चाहिये।

मूलकर्म (जप) संख्याबद्ध है। निर्दिष्ट संख्यानुसार कर्म करना चाहिये। महानिशा के पश्चात् ही गुरु से संख्या-निर्देश मिलता है। तदनन्तर कर्मदान होता है। सभी कर्मदान नहीं कर सकते। श्रीगुरु कर्मदान के समय स्वयं प्रकट होकर यह कृत्य सम्पन्न कराते हैं। इस समय गुरु का जो स्वरूप प्रकट होता है, वह अप्राकृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिदानन्दमय नित्य यौवनसम्पन्न प्रकाशोद्भासित रूप है। कर्मदान के समय दानयोग्य कर्म स्वयं ही गुरु के समक्ष प्रकट हो जाता है। गुरु में सभी कर्म संचित रहते हैं। जो सन्तान जितनी योग्यता का अर्जन करते हैं, श्रीगुरु उसे तदनुरूप कर्म देते हैं। धारण योग्यतानुरूप कर्मदान सम्पन्न होता है। अन्यथा शिष्य की क्षति हो जाती है। यहाँ तक की वह नष्ट हो सकता है। कर्म ही शक्ति है। यह आधार की योग्यतानुरूप उसमें संचारित होता है। कर्म से आधाररूपी शिष्य का सामर्थ्य बढ़ने लगता है। इसी के तारतम्य से परमवस्तु की प्राप्ति होती है। यह सब होता है शक्ति द्वारा। शक्तिसंग्रह का सर्वश्रेष्ठ उपाय है मातृसेवा।

अब ज्ञानगंज की सत्ता तथा वहाँ के कुछ तथ्यों का यथाश्रुत प्रकाशन करना उचित प्रतीत होता है। ज्ञानगंज के अधिष्ठाता तथा ज्ञानगंज की सत्ता में कोई पार्थक्य नहीं है। वास्तव में अधिष्ठाता की सत्ता से ही ज्ञानगंज सन्तान्वित है। वहाँ के अधिष्ठाता की दृष्टि से ज्ञानगंज उनकी ही आत्मशक्ति की एक क्रीड़ा है। वह उनकी महासत्ता का बाह्य स्फुरण है। प्रारम्भ में इस बाह्यता की कोई भी अनुभूति नहीं रहती। शक्ति की अन्तर्लीन स्थिति में कोई भेद ही नहीं रहता। जब बाह्यतः स्फुरण होता है, तब इस अभेद की पृष्ठभूमि में एक भेद (द्वैत) की तरंगें क्रीड़ा करने लगती हैं। क्योंकि जब सत्ता अन्तर्लीन है, तब जगत्-कल्याण की कामना कैसे? तब तो दृष्टि में न जगत् है, न दुःखबोध है, न करुणा का कोई कारण ही है। इसलिए अधिष्ठाता में द्वैतबोध होना आवश्यक है, क्योंकि अब उनका लक्ष्य हो जाता है, जगत् सृष्टि पर महाकरुणा का वर्षण करना। अब जब उनकी दृष्टि अन्तर्लीनता के स्थान पर बाह्यबोध से युक्त होती है, तब ज्ञात होता है कि सृष्टि में कोई सुखी नहीं है, जो सुखबोध से युक्त है उसके अन्तः में भी वेदना का सागर हिल्लोलित है। सुख की पृष्ठभूमि में अपार दुःख दण्डायमान है।

जीवजगत् की आर्त्तना के स्पन्दन से अधिष्ठाता महातपा (अचलानन्द) के अस्तित्व में करुणा का संचार होने लगता है। यह करुणा का संचार ही विशुद्धानन्द का आविर्भाव है। इसके पूर्व महातपा में द्रष्टा की स्थिति का उन्मेष होने के साथ-साथ उनके समक्ष ज्ञानगंजरूप दृश्य भी स्वयं आविर्भूत हो उठता है। यह है उनके अन्तःस्थित आनन्द का बहिप्रकाश। यह महातपारूप चिन्मय द्रष्टा का चिन्मय दृश्य है। यह स्थिति ऐसी है जिसमें 'दृष्टि से सृष्टि' होती है। ज्ञानगंज दृष्टि की ही सृष्टि है। भौतिक जगत् ऐसी सृष्टि नहीं है। तभी वहाँ सबकुछ चेतन है। सब कुछ प्रकाशरूप चेतन है। प्रकाश का अर्थ Light नहीं है, प्रत्युत् चेतनता है। वहाँ जड़ है ही नहीं। वृन्दावन चिन्मय धाम में गिरिराज भी वार्त्ता करते हैं। लता, गिरि, नदी आदि सब कुछ वार्त्ता करते हैं, तभी नित्य वृन्दावन (सूक्ष्म वृन्दावन) चिन्मय है। यही स्थिति ज्ञानगंज की है। वहाँ की धरित्री जिसे धारण करती है, उसके लिए स्वयं फल प्रसव करती है। वहाँ उन्हें शस्य कर्म की आवश्यकता नहीं रहती। ज्ञानगंज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महायोगी की दृष्टि से आविर्भूत है। यह दृष्टि ही है महाइच्छा। यह शक्ति-चैतन्य की स्थिति है। यही वहाँ के निवासियों के लिए यथेच्छित स्थिति एवं वस्तु का आविर्भाव करा देती है।

यहाँ जिस इच्छाशक्ति की बात कही गयी है, वह ज्ञानगंजस्थ महासिद्धा महाभैरवी उमा माँ का यथार्थ रूप है। ज्ञानगंज में सबकी पृथक्-पृथक् इच्छा की कोई सत्ता नहीं है। एक महाइच्छा ही सबको अपनी इच्छा के रूप में प्रतिभात होती है। वे इस महाइच्छा को स्वभाव की इच्छा के रूप में शिरोधार्य करते हैं। इसका अनुगमन ही उनका स्वभाव है यही है भगवत् इच्छा के समक्ष आत्मसमर्पण।

महातपा की दृष्टि (दिदृक्षा) से जिस Space का सृजन हो सका है, वही है ज्ञानगंज। यह प्रतिफलित होता है दहराकाश में। यह दहराकाश ही नित्यगुरुरूप महातपा का केन्द्र है। यह अष्टदल रूप Space है ज्ञानगंज। महातपा के अनन्तर ज्ञानगंज के अधीनस्थ समस्त आश्रम-भूमि के अधिष्ठाता हैं भृगुरामदेव। ज्ञानराज्य की 15 कला से भृगुरामदेव का गठन हुआ है। ज्ञानगंज का रहस्य भी अनुपम है। जैसे विश्वजगत् की आर्तना से, देव-मनुष्यादि की करुणा पुकार से जगद्धात्री का आविर्भाव हुआ था (द्रष्टव्य दुर्गासप्तशती), उसी प्रकार जब अचलानन्द (महातपा) विश्वजगत् की आर्तना से व्यथित होते हैं तब आदि माँ (भावशक्ति) का आविर्भाव होता है। इस आदिशक्ति (आदि माँ) से प्रादुर्भूत होती हैं कर्मशक्तिरूपा श्यामा माँ जो महासिद्धा भैरवी हैं। ज्ञानगंज की जिनपर कृपा होती है, अथच जो ज्ञानगंज में नहीं रहते, ये उनके हितार्थ, उनकी विपत्ति के निवारणार्थ कर्मरत रहती हैं। उमा माँ ज्ञानात्मिका हैं। प्रणवात्मिका हैं।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानगंजोक्त अध्यात्म-धर्म का स्वरूप

—डॉ० रमेश परमहंस[1]

धर्म के सम्बन्ध में अनेक मतों का प्रचलन है। इनमें स्थूल भेद तो है ही, सूक्ष्म भेद भी है। धर्म के इतने भेदों को देखकर धर्मपिपासु के अन्तःकरण में धर्म का वास्तविक स्वरूप जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है। वह जिज्ञासा करता है कि वास्तविक धर्म क्या है? यहाँ के प्रचलित धर्म इन्द्रियग्राह्य विषयों पर ही आधारित हैं। व्यक्ति धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के लिए, विपत्ति भंजनार्थ, मृत्यु-अपघात से रक्षार्थ धर्म का वरण करता है। सभी इन्द्रियग्राह्य विषय हैं। वास्तव में जो इन्द्रिय विषय से परे है, वही धर्म है।

जीव अभावग्रस्त है। अभाव की तृप्ति के लिए संसार की ओर ताकता है, परन्तु यहाँ से तृप्ति नहीं मिलती। जो मिलती है, क्षणिक है। एक अभाव की पूर्ति होते ही, और भी अधिक अभाव उठ खड़े होते हैं। अतः विषयों द्वारा आत्मिक अभाव की पूर्ति नहीं हो सकती। विद्वत्जन कहते हैं कि विषयों के अतिरिक्त भी आत्मा का एक स्वरूप है। उसे पाकर ही अभाव दूर हो सकेगा।

अभावबोध होता है ज्ञेय के कारण ज्ञान का परिवर्तन होने से। ज्ञेय के अभाव में ज्ञान की अपरिवर्तित अवस्था रहती है। सुषुप्ति में ज्ञेयाभाव के कारण ज्ञान का परिवर्तन लक्षित नहीं होता। जागृत होते ही, ज्ञानानुभव होते ही विभिन्न आकार ज्ञेयरूप में उन्मिषित हो जाते हैं। यहीं से अभावबोध का पुनरावर्तन होने लगता है। अतएव यह स्पष्ट है कि ज्ञान के स्वरूप में अभाव नहीं है। ज्ञेय ही अभावोत्पत्ति का कारण है। आत्मा के स्व-स्वरूप में ज्ञेय नहीं है। अतः ज्ञेयोत्पत्ति न होने तक उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। उस समय तक ज्ञान स्वस्वरूप में स्थित रहता है। जाग्रदावस्था में ज्ञान स्वस्वरूप से विच्युत हो जाता है, अतः उसे अभावबोध प्रतीत होने लगता है। ज्ञान सर्वदा स्वयं को ज्ञेयाकार में अनुभव करके ही परिवर्तित तथा अभावग्रस्त होता है। ज्ञेयवस्तु के अभाव में जो ज्ञेय बोध है, वही है भ्रान्तिरूपा कल्पना। यही स्वरूपच्युति तथा अभावबोध का कारण है। यथार्थ धर्म की प्रतिष्ठा

---

1. ब्रह्मलीन लेखक ज्ञानगंज से ही संयुक्त सिद्धाश्रम (मतंगाश्रम) से सम्बद्ध थे। इनके गुरु स्वामी जनार्दन, उनके गुरु स्वामी भूमानन्द तथा उनके गुरु स्वामी पूर्णानन्द सिद्धयोगी थे, जो सिद्धाश्रमपर्यन्त जाने में समर्थ थे। ज्ञानगंज की ही धारा शब्दविज्ञान का शिक्षण सिद्धाश्रम में दिया जाता है। अतः लेखक उस परम्परा से सम्बद्ध होने के कारण ज्ञानगंज के दर्शन पर लिखने के अधिकारी थे। ये भी सिद्धाश्रम से युक्त थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्य पर होती है। धर्म के मूल में सत्य रहता है। कल्पना अथवा भ्रान्ति मिथ्या है। आत्मा अथवा ज्ञान का जो निःस्पन्द आनन्दोत्फुल्ल स्वरूप है, वही सत्य तथा स्वप्रकाश है। धर्म उसी पर प्रतिष्ठित-सा है। जो धर्म उस पर आधारित नहीं है, वह धर्म नहीं है।

ज्ञान का स्वरूप ज्ञेयरहित है। जब कल्पना के कारण ज्ञेयानुभूति उत्पन्न होती है, तब वही ज्ञान-ज्ञेय तथा आत्मा की त्रिपुटी का द्योतन कराती है। जीव ज्ञेय को ही स्वरूप मानने की भूल कर देता है। यह अनुभूति ही स्वरूप से विच्युति है। यही अधर्म है। ज्ञान की इस त्रिपुटी के कारण एक ही अनुभूति तीन रूपों में होने लगती है। फलस्वरूप ज्ञान में विकृति आ जाना स्वाभाविक हो जाता है। जहाँ भी ज्ञेयानुभूति है, वहाँ ज्ञान स्वरूप से च्युत है। त्रिधा विभक्त ज्ञान की दृष्टि से कल्पना-मूलक ज्ञेय ही स्वरूपभूत प्रतीत होने लगता है। यह है मिथ्या स्वरूपानुभूति। अर्थात् जो भ्रान्तज्ञान है, वह ज्ञान की ज्ञेय परिशून्यावस्था की कल्पना भी नहीं कर सकता। जो धर्म ज्ञान का ज्ञेय है, वही भ्रान्त ज्ञान के लिए धर्म है। विकृत ज्ञान के द्वारा ज्ञेयमूलक धर्मातिरिक्त किसी धर्म की धारणा भी नहीं की जा सकती।

विचार से यह उपलब्धि होती है कि वर्तमान जगत् में ज्ञेयमूलक धर्मों का ही प्रसार है। ज्ञेयमूलक धर्म कभी भी आत्मधर्म नहीं हो सकता। वह कल्पनाजनित तथा वास्तविक धर्म से दूर होता है। आधार में सर्वदा आधेय से श्रेष्ठता है। ज्ञेय का आधार है ज्ञान। अतः ज्ञान की तुलना में ज्ञेय क्षुद्र है। वर्त्तमान ज्ञान कल्पना से ही परिपुष्ट, परिवर्द्धित तथा परिवर्तित होता है। इस समय के धर्म उसी ज्ञान के ज्ञेय हैं। अतः कल्पित ज्ञान के अन्तर्गत हैं। जो धर्म हमारी समझ के अन्तर्गत हैं, वे हमारा परिवर्तन नहीं कर सकते। प्रत्युत् हम ही उसका आवश्यकतानुरूप परिवर्तन करते रहते हैं। तभी आज धर्म के अनेक प्रकार हैं। एक स्थान का धर्म अन्य स्थान के धर्मानुरूप नहीं है। तभी यथार्थ धर्म की प्राप्ति नहीं हो पाती। ये सब कल्पित धर्म यथार्थ धर्म के विघ्न हैं। (द्रष्टव्य, शिवसंहिता, 5/3/9)

इसलिए स्वरूपवेत्ता की दृष्टि में धर्म का रूप सार्वजनीन तथा सार्वभौम रहता है। यह समझने-समझाने का विषय कदापि नहीं है। जहाँ समझ है, वहाँ ज्ञेय बैठा हुआ है। ज्ञेय की उपस्थिति मात्र से ज्ञान त्रिधा विभक्त हो जाता है। जब कल्पना के अतिरिक्त ज्ञान का अस्तित्व ही नहीं है, तब समझ तथा कल्पना एक ही है। कल्पना तो मिथ्या है, अतः कल्पित धर्म भी मिथ्या है।

धर्म को समझा ही नहीं जा सकता। हम वही समझ पाते हैं, जो ज्ञेय है। यदि धर्म हमारे ज्ञान से अतीत है, तब वह वर्त्तमान ज्ञान का ज्ञेय कैसे हो सकता है? जब ज्ञान ज्ञेयाकार हो जाता है, उस समय उसके लिए मात्र अनुभूति ही उत्पन्न होती है। समझना-समझाना समाप्त हो जाता है। जो ज्ञान से पृथक् है, हमारे ज्ञान से अतीत है, उसे भी हम समझ नहीं सकते। क्योंकि ज्ञान से ज्ञेय जिस अंश में पृथक् है, उतने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंशपर्यन्त ज्ञानगम्य हो सकना सम्भव ही नहीं रहता। जब हम किसी विषय को समझते हैं, तब ज्ञान, ज्ञाता के आकार में ज्ञेय को पृथक् समझता है। जब तक ज्ञान त्रिधा विभक्त नहीं होगा, तब तक उसे समझा ही नहीं जा सकता। अतः जब हम धर्म को समझते हैं, तब उसे ज्ञान से पृथक् रखकर ही समझते हैं। इसके अतिरिक्त ज्ञान के बाहर का विषय कभी समझा ही नहीं जा सकता। अतएव यह प्रकट है कि जब हम धर्म को समझना चाहते हैं, अथवा समझते हैं, तब वास्तव में धर्म को समझते ही नहीं। कल्पना में उसे समझने की भूल करते हैं।

जहाँ भी धर्म को समझा जाता है, वह धर्म का स्वरूप न होकर कल्पना का ही स्वरूप है। अधर्म को ही धर्म समझ कर, अर्थात् जो धर्म नहीं है, उसे ही धर्म मानकर हम सन्तुष्ट हो जाते हैं। समझने का प्रयत्न करते ही धर्म ही अधर्मरूप हो जाता है। आत्मा का स्वरूप है यथार्थ धर्म। वही अनुभव का विषय है। इसे न तो समझा जा सकता है और समझाया भी नहीं जा सकता। प्रत्येक समझ आत्मा से क्षुद्र होती है। जब समझ ही धर्म को समझाने लगती है, तब वह धर्म 'मैं' की अपेक्षा छोटा हो जाता है। इसी कारण समझ (बुद्धि) के अनुरूप धर्म से अहंज्ञान ही पुष्ट होता है। अहंज्ञान से अतीत जो आत्मा है, जो धर्म का प्रकृत स्वरूप है, वह दूर—अति दूर होता जाता है।

विषय के स्वरूप में कल्पना को मिश्रित करने से बुद्धि की उत्पत्ति होती है। बुद्धि के विषय में जो आकार है, उसमें कल्पना ही विद्यमान रहती है। अतएव बुध्य विषयों का जो कल्पनानुरूप स्वरूप है, वह हमारी समझ का विषय है। विषय का वास्तविक स्वरूप हमारी बुद्धि का विषय नहीं होता। अतएव उससे धर्म के कल्पनारहित यथार्थ स्वरूप को हम नहीं समझ सकते। तार्किक यह कह सकते हैं कि जब इन्द्रियानभूति ही इन्द्रियज्ञान के लिए सत्य है, तब इन्द्रियज्ञान ही धर्म है। परन्तु इन्द्रियानुभूति से कल्पना का अंश निकाल देने पर उसे समझना असम्भव हो जाता है। अतएव इन्द्रिय धर्म अथवा इन्द्रियातीत धर्म को समझाया नहीं जा सकता। गीता में भगवान् ने कल्पनायुक्त इन्द्रिय धर्म को अधर्म कहा है। आत्मस्वरूपार्थ स्वधर्म का निर्देश दिया है। धर्म के स्वरूप में किसी अभाव की गति नहीं हो सकती। आत्मा का स्वरूप अभावरहित है। कल्पना परिवर्तनशील है। अतएव जो धर्म कल्पनाप्रसूत है, वह ज्ञेयमूलक होने के कारण सतत परिवर्तनयुक्त रहता है।

स्वरूपतः 'मैं' के कल्पनातीत रूप को समझ सकना सम्भव नहीं है। अतएव जब तक धर्म जानने का विषय माना जाता रहेगा, तब तक वह कल्पनानुरूप ही होगा। ऐसे सत्य का कोई मूल्य नहीं है। अतएव आत्मा का नित्यानन्दमय स्वरूप ही धर्म है। संक्षेप में ज्ञान का एकत्व ही धर्म है। ज्ञान का द्वित्व है अधर्म। हमारा वर्त्तमान ज्ञान द्वित्वमूलक है। इसलिए इससे एकत्व की अवधारणा कैसे हो सकेगी?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह प्रत्यक्ष है कि गुरु (भ्रूमध्य) स्थान में जो कि उकार स्थान है, वहाँ स्थित हो जाने पर द्वित्वबोध नहीं रह जाता। तब अभावबोध एवं आकांक्षायें भी प्रशस्त हो जाती हैं। ज्ञान इसी स्थिति में स्पन्दहीन, क्रियारहित तथा तृप्त हो जाता है। अतः गुरु को ही धर्म तथा उपास्य कहते हैं। हममें आकर्षण-विकर्षणात्मक क्रिया चलती रहती है। एक है श्वास, अन्य है प्रश्वास। आकर्षण क्रिया भ्रूमध्य में तथा विकर्षण क्रिया नासाग्र द्वादशान्त (हकार) में लयीभूत होती है। ज्ञान का प्रणवयुक्त स्वरूप रूपान्तरित होकर भ्रूमध्य (उकार) में तथा क्रिया वृद्धि होने पर हकार में परिणत हो जाता है। जहाँ पर आकर्षण है, वहीं उकार है। विकर्षण में हकार विद्यमान है। यदि उकार में आकर्षण न हो, तब देह समाप्त हो जाता है। यह क्रिया स्थावर-जंगम सर्वत्र है। इसके तारतम्य से ही संसार अनन्त आकारवान् हो जाता है। यह आकर्षण धराधारक कहा जाता है।

द्वित्व कल्पना ही विकर्षण की जननी है। यही विच्युति का कारण है। अतएव स्वरूपावस्था हेतु सर्वदा उकार (भ्रूमध्य) की ओर आकर्षण होना चाहिये, जो कि आत्मा का स्वभाव है। अतएव ज्ञान तथा आत्मा का स्वाभाविक-वास्तविक धर्म है आकर्षण। आकर्षण धर्म ही संसार की स्थिति है। अतः शास्त्र-वचन है कि धर्म ही प्रजा को धारण करता है। धर्म को पाने के लिए उस सत्य का आश्रय लेना होगा, जिस पर धर्म की प्रतिष्ठापना है। उकार अथवा गुरुस्वरूप ही सत्य है। नित्य है। अतः गुरु ही आश्रय है।

जिसने उकार स्थिति को प्राप्त कर लिया, वह तो मानव-देह में ही ज्ञानरूप है। ऐसे देहधारी मानव गुरु का आश्रय लेना कर्त्तव्य होना चाहिये। अभ्यास द्वारा गुरु के प्रति भक्तिरूपी आसक्ति का उदय होने से, उनका चिन्तन करने से, उनके द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलने से धर्म प्राप्त होता है। शिवसूत्र में कहा है कि 'गुरु ही उपाय है'। यह अक्षरशः सत्य है। गुरु ही है यथार्थ धर्म का स्वरूप।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानगंज का स्तर विन्यास

—साधक राधिकारमण एडवोकेट

ज्ञानगंज में सिद्ध भैरवी उमा माँ, श्यामा माँ तथा आदि माँ की स्थिति है। ज्ञानगंज में स्थित भैरवी तथा वामाचार अथवा कौलाचार में वर्णित भैरवी में व्यापक भेद है। ज्ञानगंज में जो भैरवी सत्ता है, वह मातृभाव से ओतप्रोत सत्ता है। उमा माँ, श्यामा माँ तथा आदि माँ भी सत्तानुक्रम से प्रतिष्ठित हैं। आदि माँ सर्वोच्च स्थिति है। उमा माँ कुमारीरूपा हैं और श्यामा माँ के अन्तर्गत दोनों का सन्धिस्थल है। महायोगी विशुद्धानन्द ने इन तीनों की सत्ता का साक्षात्कार किया था। इन तीनों की शक्ति तथा सामर्थ्य की इयत्ता नहीं है। गति अप्रतिहत है। इनका कार्य है जिज्ञासु साधकों की रक्षा तथा उनकी अग्रगति का निरीक्षण। इस धारा से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति तथा उनके परिवार के हित-साधनार्थ उमा माँ तथा श्यामा माँ के तत्वावधान में विविध अनुष्ठान तथा महती योग-प्रक्रिया चलती रहती है।

आदि माँ को आदिशक्ति स्वरूप जानना चाहिये। इनसे जिनका स्फुरण सम्भव हो सका है, वे हैं श्यामा माँ अथवा कर्मशक्ति। जिनके कारण आदिशक्ति से श्यामा माँ का आविर्भाव हो सका है, वे हैं उमा माँ अथवा ज्ञानशक्ति। इनसे ही प्रणव का शब्द निर्गत हो सका है जिसे ॐ माँ (ज्ञानगंज में) कहते हैं। ज्ञानगंज में अहर्निश ॐ माँ की ध्वनि गुंजायमान रहती है। यह ध्वनि इस मर्त्यधाम में भी आ रही है। परन्तु इसका कोई धारक न होने के कारण वापस लौट जा रही है।

यहाँ जिस ज्ञानगंज का विवरण प्रस्तुत किया गया है, वह ज्ञानगंज होते हुए भी यथार्थ ज्ञानगंज का आभास ही है। प्रकृत ज्ञानगंज की स्थिति इससे सूक्ष्म है। वह सृष्टि से परे होकर भी सृष्टि के स्तरानुरूप अनेक स्तरों में विन्यस्त भी है, तथापि मूलतः उसका तत्त्व स्तरातीत है। यह स्तराभास होता है द्रष्टा के दृष्टिभेद के कारण। जिसे जैसा अधिकार मिला है अथवा जो जिस स्तर तक उठ सका है, वह वहीं तक देखने में समर्थ है। अतः वास्तव में इसी कारण स्तरभेद हो गये हैं, जब कि वास्तव में ज्ञानगंज में स्तर का कोई सन्धान नहीं मिलता। वह तो पूर्ण तथा समग्र सत्तारूप है। भेददृष्टि के कारण विभिन्न स्तर का आभास होने लगता है और स्तर-भेद के कारण प्रत्येक स्तर के अलग-अलग अधिष्ठाता का सन्धान मिलता है। जो एक स्तर का अधिष्ठाता है, वह दूसरे किसी भी स्तर का अधिष्ठाता नहीं है। तथापि सभी स्तर तथा उनके अधिष्ठाता परस्परतः कहीं न कहीं सम्बद्ध हैं। प्रत्येक स्तर की अलग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशिष्टता है। इसी प्रकार उन-उन अधिष्ठातृ वर्ग का भी अलग वैशिष्ट्य है। मायिक स्तर में तथा माया से ऊर्ध्वतन स्तर में भी ऐसे स्तर समूह विन्यस्त रहते हैं (मायिक स्तर अर्थात् इस ब्रह्माण्ड में)।

स्तर के अनुरूप ही उनमें तत्त्व सत्ता की प्रतीकात्मिकता विद्यमान रहती है। किसी स्तर में तेज तत्त्व है, किसी में वायु तत्त्व है, किसी में जल एवं पृथ्वी की सत्ता है। यद्यपि ये सभी तत्त्व इस पृथ्वी में भी विद्यमान हैं तथापि पृथ्वी में इन तत्त्वों के चेतन स्वरूप की सत्ता नहीं रहती। जैसे ध्रुवलोक ध्रुव की तपस्या से गठित है, वैसे ही ज्ञानगंज भी महायोगी की तीव्रतम साधना से विश्वकल्याणार्थ गठित है। सिद्धधामों की रचना विभिन्न परिस्थिति तथा क्रिया के प्रयोजनानुसार होती है। सिद्धभूमि तथा दिव्यभूमि में पारस्परिक भेद है। गोलोक, विष्णुलोक इत्यादि दिव्यभूमि है। दिव्यभूमि में साधना नहीं रहती तथापि सिद्धभूमि साधन क्षेत्र है। दिव्यभूमि का आत्मा समूह सृष्टि के दुःख को नहीं देख सकता। उसकी दृष्टि में दुःख है ही नहीं। लेकिन सिद्धभूमि स्थित योगीगण तथा साधक सृष्टि के दुःख का अवलोकन करते हैं, वे सतत करुणार्द्र रहते हैं।

ज्ञानगंज में योगदृष्टि के अनुसार तीन स्तर दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम में महाभावपर्यन्त का क्षेत्र है। यह गुरुधाम-भूमि है। खण्ड योगी इसे ही प्राप्त करते हैं। इसे प्राप्त करने के पूर्व मृत्यु हो जाने पर तदनुरूप क्षेत्र मिलता है। अर्थात् जीवितावस्था में जहाँ तक का पथ पार किया था वहीं तक गुरुधाम में स्थिति होती है। (यद्यपि स्थूल देह रहते कर्म करने से क्षिप्रगति से कार्य सम्पन्न होता है, देहत्याग के अनन्तर यह सम्भव नहीं हो सकता।)

द्वितीय स्तर महाभाव से भी अतीतावस्था है। यह सूर्यमण्डल से अतीत की स्थिति है। महाखण्ड योगी इसे प्राप्त करते हैं। यदि इनकी क्रिया जीवितावस्था में पूर्ण नहीं हो सकी है, तब ज्ञानगंज में (मृत्यु के पश्चात्) क्रिया पूर्ण करनी पड़ती है। तृतीय स्तर के सम्बन्ध में भाषा द्वारा कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसका लक्ष्य है विश्व गुरु। क्षेत्र है अखण्ड विश्व।

ये तीनों स्तर कर्मस्थान हैं। प्रथम की परिधि अति विशाल है। काल का राज्य इस परिधि के बाहर है। द्वितीय स्तर की परिधि और भी विशाल है। इसके कारण कालराज्य और भी छोटा लगता है। तृतीय स्तर की परिधि समस्त सृष्टि है। यहाँ कालराज्य शून्य के समान प्रतीत होता है। इन तीनों स्तर में कर्म की तीव्रता उत्तरोत्तर तीव्र होती है। प्रथम से द्वितीय में और द्वितीय से तृतीय में कर्म का प्रभाव अधिक है। द्वितीय की तुलना में तृतीय स्तर में गुरु की करुणा अत्यधिक हो जाती है।

यद्यपि उक्त तीनों स्तर कालातीत हैं, तथापि प्रथम तथा द्वितीय स्तर के बाहर काल का आवर्त्त विद्यमान रहता है। तृतीय की अभिव्यक्ति के साथ-साथ कालराज्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की पृथक् सत्ता बाकी नहीं रह जाती। प्रथम तथा द्वितीय स्तर के साथ कालराज्य पृथक्तः अवभासित होता रहता है और कालराज्य का प्राणी प्रथम एवं द्वितीय स्तर के साधकों की इच्छा होने पर वहाँ यातायात करने में समर्थ हो जाता है। प्रथम तथा द्वितीय स्तरों में भी अनेक स्तर विद्यमान रहते हैं। अधिकारी भेद से ही इन स्तरों का गठन तथा अनुभव होता है।

जब काल बाहर से क्रिया करता है, तब वह जीवसत्ता को ग्रसित एवं अभिभूत करने में सक्षम हो जाता है। जब स्तर के आकर्षण से काल की सत्ता अन्तर्लीन हो जाती है, तब कालसत्ता जीवसत्ता को अथवा तृतीय स्तर को अभिभूत नहीं कर पाती। तब काल ही क्षणरूप होकर जीवसत्ता को पूर्णत्वगामी बना देता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविराज खण्ड

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

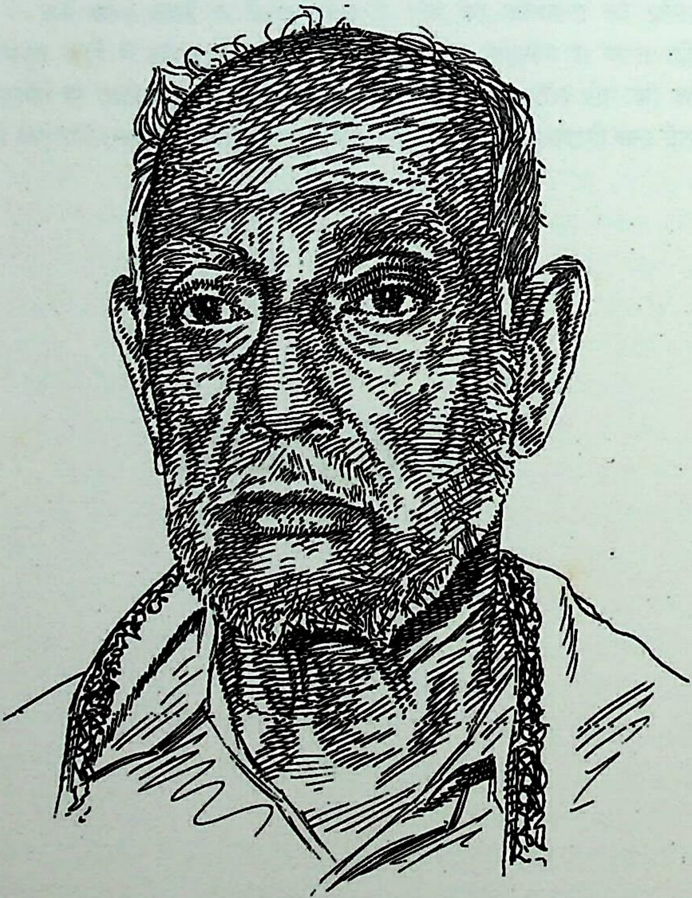

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यविज्ञान

—महामहोपाध्याय डॉ० पं० गोपीनाथ कविराज

सूर्यतत्त्व—नवोदित सूर्य का दर्शन आवाहन करने के साथ यह चिन्तन करना चाहिये कि नवोदित सूर्य जवा पुष्प के समान रक्तवर्ण हैं। वे अत्यन्त रक्तवर्ण वाले हैं। ये कश्यप से उत्पन्न हैं। कश्यप = पश्यक, द्रष्टा-आदि द्रष्टा। समग्र सृष्टि के आदि द्रष्टा। वे हैं कश्यप Metathesis द्वारा पश्यक। उनकी जो (कश्यप की) आदिशक्ति हैं, वे हैं अदिति। अर्थात् अखण्ड। जो दिति (खण्ड) नहीं हैं। जो भंग नहीं होती, वह अदिति। तभी कश्यप हैं पश्यक। सृष्टि के, समग्र विश्व के आदि-द्रष्टा जो हैं, वे हैं कश्यप (पश्यक)। उनकी पराशक्ति अदिति उनके साथ अभिन्न रूप से अविनाभावेन संयुक्त हैं। वहीं से आविर्भूत हैं।

समग्र विश्व जो है (The Existing Thing), जो कुछ है, था, सबको लेकर जो है Totality of being, उसके मध्य जो वस्तु है, वह है नित्य प्रकाशमान। तभी कश्यप अर्थात् पश्यक। इन सबके मूल में कौन वस्तु है? The Supreme Self—Concious and Self-effulgent power, वह है अदिति। The Supreme—जिससे बड़ा कुछ नहीं है। जो Self effulgent हैं, स्वयंप्रकाश, Power सब हैं, वे हैं अदिति। और वे जिसकी आभा हैं, आश्रय जो हैं, वे हैं कश्यप। इसे कोई नहीं समझता। आजकल के पण्डित तो बिल्कुल नहीं समझते। इनसे जो सर्वप्रथम प्रकाशमान हुए हैं, उसे हम सूर्य कहते हैं। The first begotten, जिसे बाईबिल में कहा गया है। यह सब बतलाने के लिए 200 पृष्ठ लिखा जा सकता है और मैं तुरन्त लिख सकता हूँ। एक-दो लाइन के The first begotten में इतनी बातें छपी हैं। इसके पश्चात् सृष्टि हुई है। इस सूर्य की महिमा इतनी क्यों? ये हैं काश्यपेयं महाद्युतिम्। इनका स्वरूप क्या है? ध्वान्तारिं। अर्थात् अन्धकार के शत्रु। अन्धकार अर्थात् अन्धकार। समस्त अन्धकार को, आवरण को वे हटा देते हैं। जितने आवरण हैं—अविद्या का, माया का, सब हटाने वाले। मोहावरण हटाने वाले। अर्थात् आवरणरूप रात्रि को हटा देते हैं। तब क्या है? सर्वपापघ्नं जितने प्रकार के पाप हैं, कृत क्रियमाण पाप, अतीत, वर्त्तमान के पाप, जितनी Variety के हैं, उनका चिन्तन करने से कोई भी पाप नहीं रहता। सभी प्रायश्चित्त की पृष्ठभूमि में ये हैं।

लेकिन अपने आभ्यन्तर के मैल को कौन नष्ट करेगा? हमारे इस (बाह्य) सूर्य में इसकी शक्ति नहीं है। इस सूर्य की उस परम सूर्य के साथ Identity करके मन ही मन चिन्तन करना होगा। तब क्या होगा?—सर्वपापघ्नं प्रणतोस्मि दिवाकरम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि इनका चिन्तन किया जाये तब भीतर का जितना कलुष, मैल है सब कट जाता है। सूर्य = विवस्वान्।

सूर्य से जो उत्पन्न होते हैं, वे हैं वैवस्वत्। ये कौन हैं? वैवस्वत् = यम = काल = अग्नि= रुद्र (कालाग्नि रुद्र)। 'काल:पचति भूतानि' इससे विदित होता है कि काल है अग्निस्वरूप। ये संहारक रुद्र हैं। ये जगत् के परिणाम साधक हैं। पुन: सूर्य से उत्पन्न होते हैं सोम तथा चन्द्र। तभी सूर्य हैं सविता। सोम = सूत, जो जलस्वरूप है। अत: सूर्य सृष्टिसाधक हैं।

एक वस्तु को यदि धूप में रखा जाये तब उसकी छाया पड़ती है। जितना ही सूर्य के निकट ले जाया जाये, उतनी ही छाया होती जायेगी। अन्त में छाया भी आलोक में विलीन हो जाती है। यदि उस वस्तु को सूर्यगत कर दें, तब जहाँ-जहाँ सूर्य का आलोक है, वहाँ उस वस्तु की छाया रहेगी तथापि दृष्टिगोचर नहीं होगी। अत: सूर्य में जो कुछ है, वही उसके आलोक में है। मान लें वह वस्तु है 'क'। उसकी छाया है $क^1$। सूर्य है बिन्दु। सूर्य प्रभा है प्रभा अथवा चक्र। वास्तव में क को आत्मा कहें, तब $क^1$ है स्थूल। क, ख (सभी वस्तु, सभी आत्मा) सूर्य में है। सूर्यवत् समभावेन है। $क^1$ $ख^1$ सभी सूर्य प्रभा में है। वहीं पाई जा सकती हैं। 'क' को नीचे उतारने पर $क^1$ घनीभूत हो जाता है। जब समस्त प्रभामण्डल से किरणें एक स्थान पर जमती हैं, तब सृष्टि होती है। जमने में अन्यान्य परमाणु की छाया उनकी सहायता करती है। यही है 'क' का आकारबद्ध भाव (यही सूर्यविज्ञान का सूत्र है)। क जब स्थूल होने के लिए उतरता है, तब वह एक Line से आता है। अन्यथा अन्य (परमाणुओं) का मिश्रण हो जाने से प्रकाश अथवा स्थूलत्व नहीं होगा। वस्तु की सृष्टि नहीं होगी। केवल छाया अथवा रंगों से सृष्टि नहीं होती। अत: सत्व चाहिये ही। सत्व अथवा गुण अथवा प्रकृति उपादान हैं। छाया है विकार।

जब किसी वस्तु को जला देते हैं अथवा नष्ट कर देते हैं तब उसके परमाणु (या Spirit) जो अदाह्य हैं (नष्ट नहीं हो सकते) वे स्वभावत: ऊर्ध्व में चले जाते हैं, जहाँ अन्य Spirit को नीचे उतारने के लिए (वस्तु की सृष्टि के लिए) उनका आकार गठित होता है। इतने दिन वे परमाणु विश्वमय थे। सब वस्तु मिली-जुली थी। जो भी था, उसमें अपृथक् भाव था। अलग-अलग नहीं था। उसे नीचे उतारने पर (सृष्टि करने पर) उसके Particle सर्व स्थानों से आकर पुन: एकत्र होंगे। वस्तु-सृष्ट होगी।

कारण व्यापार द्वारा अव्यक्त कार्य की व्यञ्जना होती है। कारण व्यापार अर्थात् उपादान-निमित्तादि का व्यापार। जब कारण निष्क्रिय है, अथवा सदृश परिणामविशिष्ट मात्र है तब कार्य (वस्तु) अव्यक्त है। कारण अर्थात् त्रिगुण एवं पंचमहाभूत। जब ये निष्क्रिय हैं, तब कार्य अव्यक्त है। कार्य को व्यक्त करने के लिए कारण को क्षुब्ध करना होगा। उसे विसदृश परिणामयुक्त करना होगा। चित् शक्ति के संचार के अभाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में यह नहीं हो सकता। अर्थात् कारण राशि में चित्‌शक्ति का संचार होने से यह कारण ही विसदृश परिणाम प्राप्त करता है। तभी वस्तु की सृष्टि हो सकती है।

चित्‌शक्ति का संचार कार्यमात्र की उत्पत्ति में आवश्यक है। कार्यभेद का नियामक कौन है? मूलकारण तो समभावापन्न है। (सभी परमाणु मिले हैं कोई पृथक् नहीं है)। वह चित्‌शक्ति के अनुप्रवेश से क्षुब्ध होता है। किन्तु भिन्नतः क्षुब्ध क्यों होगा? (अर्थात् भिन्न-भिन्न वस्तु की सृष्टि के लिए क्यों क्षुब्ध होगा?) व्यापक अथवा स्वरूप चैतन्य का अनुप्रवेश नहीं होता। आंशिक चैतन्य का तथा आंशिक चैतन्य शक्ति का ही हो जाता है। क्योंकि आंशिक चैतन्य बहुः तथा परस्परतः पृथक् है। इस बहुत्व तथा पार्थक्य के मूल में लिंगभेद तथा सत्वभेद है।

यह बहुसत्व अखण्ड सत्व का अंश है। वहाँ से अखण्ड सत्व की प्रेरणा से वह कारणसमुद्र में पतित होता है। कारण समुद्र = तमोराशि अथवा त्रिगुण प्रकृति। कारणसमूह ही जड़स्तर है। उसी में खण्डसत्वराशि मग्न रहती है। जब एक-एक बाहर होती है (योगी के विज्ञान कौशल से) तब खण्डांश च्युत हो जाता है। किन्तु वह अखण्ड सत्व की एक रेखा से, अच्छिन्न धारा से युक्त हो जाता है। इस धारा का अधोबिन्दु है अन्तर्यामी परमात्मा। यह रेखा चिरकाल तक रहती है, जब तक वह वस्तु अथवा जीव वापस नहीं लौट जाता। (जब जीव नीचे उतरता है, सृष्टि में आता है, अथवा वस्तु के परमाणु नीचे आते हैं, तब साथ-साथ परमात्मा भी नीचे आता है। तभी कहते हैं कि सब जीवों में परमात्मा है। कण-कण में परमात्मा है)।

जड़ स्तर में जीव अथवा सत्वांश के अनुप्रविष्ट होने से ही कारण में चित्‌शक्ति का संचार होता है। उसी से जीव-देह भी गठित होता है और स्थूलवस्तु का भी निर्माण होता है। मान लो एक गुलाब पुष्प की सृष्टि। यह एक प्रकार का सत्व है। मूल सत्व अखण्ड है। पहले उसका विकास चाहिये (योगी को यह क्षमता होनी चाहिये)। अखण्ड की गोद में खण्ड सत्व का विकास होता है। यह सत्वांश बहिर्गति होने से, अर्थात् जड़ स्तर में पड़ने से स्थूलावरण में वेष्ठित हो जाता है। वही है गुलाब सृष्टि। यह सत्वांश अव्यक्त है। गुलाब स्वरूप कार्य है। इसमें रंग का समावेश अर्थात्, इसके सत्वांश का प्राकट्य। यह विशिष्ट समावेश नहीं होने तक सत्वांश अव्यक्त अप्रकट रहता है। इस प्रकार समावेश होने से सत्वांश बाहर हो जाता है। सूक्ष्म स्थूल हो जाता है, जो अव्यक्त है, वह व्यक्त हो जाता है। रंग केवल व्यञ्जना-मात्र है।

इच्छाशक्ति से वस्तु सृष्टि में तथा सूर्यविज्ञान सृष्टि में यह भेद है कि विज्ञान में सूर्य-रश्मि अथवा रंग से आरम्भ किया जाता है। अर्थात् भिन्न-भिन्न रंग का समावेश कर दिया जाता है। ये भिन्न रंग बाहर हैं। जिस प्रकार से रंग का (किरणों का) समावेश किया जाता है, तदनुरूप सत्वांश स्थूलता प्राप्त करता है। व्यक्त होता है। सत्वांश बाहर आकर परिलक्षित होता है। यह है विज्ञान सृष्टि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इच्छाशक्ति से सृष्टि अन्य प्रकार से होती है। सत्वांश जिस अखण्ड सत्व में ग्रथित है, उस अखण्ड सत्व से सत्वांश को ढकेल कर बाहर करना होता है। यह ढकेलना (धक्का देना) अखण्ड सत्व का अपना व्यापार है। भीतर से धक्का पाकर सत्वांश बाहर होता है। तब उसमें अनुरूप वर्णसमावेश स्वयमेव हो जाता है। जिन-जिन वर्ण (किरण) के समावेश से जो सत्व व्यक्त होता है, वह-वह वर्ण उस सत्व (वस्तु) के आन्तर्य के कारण आ जाता है। यहाँ जीव को (सिद्ध को, साधक को) उस 'धक्का' को देने के लिए अखण्ड सत्व से युक्त होना पड़ेगा। इसी के कारण सृष्टि होती है।

इच्छा अथवा कामना के साथ अखण्ड सत्वयुक्त होना उचित नहीं है। इसमें विपत्ति है। अखण्ड सत्व से प्रेम होना चाहिये। कामना अथवा इच्छा लेकर नहीं जाना चाहिये। इच्छायुक्त जाने पर फल तो मिलेगा, लेकिन सृष्टि में पुनः उतरना पड़ेगा। शालग्राम को सब्जी तौलने का बटखरा बनाना क्या उचित है?

यह जो कहा गया यह सूर्यविज्ञान के सम्बन्ध में सूत्ररूप से कहा गया है। वास्तव में सूर्यविज्ञान अति प्राचीन भारतीय विज्ञान है, तथापि, साधारणतः जगत् में बाबा विशुद्धानन्ददेव के आविर्भाव के पूर्व कोई इसे जानता था, इसका कोई पता नहीं चलता। इसलिए इस सम्बन्ध में कुछ कहना उचित नहीं है। मैंने जब सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव के श्रीचरणों का दर्शन पाया था, तभी इस विज्ञान का परिचय मिला। क्रमशः इसके विस्तृत रहस्य से अवगत हो गया। बाद में श्रीगुरुदेव का कहना था कि उन्होंने यह विज्ञान तथा अन्य विज्ञान जैसे चन्द्रविज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, वायुविज्ञान, क्षणविज्ञान आदि ज्ञानगंज से प्राप्त किया था। तदनन्तर उन्होंने स्वयं इसका विकास भी किया था।

सामान्यतः सूर्यविज्ञान का रहस्य ही सब प्रकार के लौकिक विज्ञानों का मूल रहस्य है। सूर्य से ही जगत् का यावतीय पदार्थ उत्पन्न होता है और इस विज्ञान को जान लेने से सभी पदार्थों का इच्छानुरूप निर्माण किया जाता है। गुरुदेव कहते थे कि सूर्य को सविता कहने का कारण यह है कि यह विश्वप्रसव के मूल हैं। सूर्यविज्ञान को सीखने के लिए सूर्य की किरणों के सम्बन्ध में ज्ञान होना आवश्यक है। सूर्यविज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार जगत् के सभी पदार्थ सूर्य से उद्भूत हैं। इनकी रश्मि सात प्रकार की है। इन सातों के मिश्रण से अनन्त प्रकार की रश्मियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। सभी रश्मियों के मिश्रण से अनन्त प्रकार की रश्मि उत्पन्न होती है। इन रश्मियों की पृष्ठभूमि में शुभ्र अथवा श्वेतवर्ण का प्रकाश विद्यमान रहता है। यह है विशुद्धसत्व का प्रकाश। अन्यान्य रश्मि में त्रिगुण का प्रकाश रहता है। सूर्यविज्ञान के सिद्धान्तानुसार जगत् की प्रत्येक वस्तु में एक फॉर्मूला है। तदनुसार रश्मि का परस्पर मिश्रण प्रत्येक वस्तु में है, किन्तु वस्तु का निर्माण करते समय वस्तु के निर्दिष्ट फॉर्मूला के अनुसार उनका आकर्षण करके उनको सजा देना होता है। आकर्षण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया जाता है प्रथमावस्था में एक लेन्स के द्वारा। साधारण लेन्स से भी यह हो सकता है, किन्तु ज्ञानगंज से प्राप्त विशिष्ट लेन्स से (जो कि स्फटिकनिर्मित होता है) यह प्रक्रिया अच्छी होती है।

जब विज्ञान शिक्षण से (साधक को) आकर्षण प्रक्रिया का अधिकार मिलता है, तब उन सब रश्मियों की आकर्षण क्रिया खाली हाथ (बिना लेन्स) भी की जा सकती है। अवश्य यह होता है उस ज्ञान की पूर्णता द्वारा। पहले ही यह कहा जा चुका है कि इन सभी रश्मि (वर्णमाला—रश्मि ही वर्णमाला है) अथवा वर्णमाला के मूल में है विशुद्ध सत्व अथवा श्वेतवर्ण। इसे पृथक्तः नहीं देखा जा सकता, क्योंकि जागतिक वस्तुओं के विभिन्न रंगों से यह आच्छादित रहता है। इसी श्वेतवर्ण के ऊपर (सूर्यविज्ञान द्वारा) जिस वस्तु का निर्माण करना होता है, उसके फॉर्मूला के अनुसार आकर्षण द्वारा (रश्मि आकर्षण द्वारा) वर्ण विन्यास (रंग विन्यास) होता है। हम किसी शब्द को लिखने के लिए उसके वर्ण विन्यास के अनुसार वर्णों को सजाते हैं। जैसे Camphor लिखने के लिए पहले 'C' तदनन्तर 'a' तदनन्तर 'm' तदनन्तर क्रमशः p h o r लिखना होता है। किन्तु सर्वप्रथम वर्ण 'C' के सूर्य से आकर्षण के पूर्व सादा अथवा श्वेतवर्ण के प्रकाश को लेना आवश्यक होता है। क्योंकि ऐसा न करने पर जिस किसी वर्ण का भले ही आविर्भाव हो, किन्तु वह स्थायी नहीं होता। एक वर्ण के आविर्भाव के पश्चात् अन्य वर्णों से योग के लिए उस वर्ण को आविर्भूत करते समय पूर्ववर्ण क्षणविध्वंसी होने से चला जाता है। ऐसे ही सर्वत्र है। एक रंग के साथ दूसरे रंग का परस्पर संयोग सम्भवपर नहीं होता। क्योंकि एक वर्ण (रंग) का प्रकाश करके अन्य वर्ण का प्रकाश करने की चेष्टा करने के साथ ही प्रथम वर्ण लुप्त हो जाता है। इस स्थिति में सामान्य व्यक्ति सृष्टि नहीं कर पाते। यह कौशल ज्ञानगंज से ही प्राप्त किया जाता है कि एक वर्ण का प्रकाश करने की चेष्टा करने पर प्रथम वर्ण लुप्त न हो।

वास्तव में ज्ञानगंज एक स्थिति है। हिमालय में कितने ही स्थान पर घूम-घूम कर खोजने में उसे कहाँ पाओगे? अथच यहीं बैठे-बैठे जहाँ हो वहीं, ज्ञानगंज को पा सकते हो।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यविज्ञान का तत्त्व

सूर्यविज्ञान के सम्बन्ध में विशेष आलोचना करने के पूर्व सूर्यविज्ञान शब्द का अर्थ क्या है, यह बतलाना आवश्यक है। यह विज्ञान साधारणतः भारतवर्ष से लुप्त हो गया था। बाबा विशुद्धानन्द ने इसे विज्ञान के आयाम में प्राप्त किया था। योग तथा विज्ञान, दोनों ही अलौकिक हैं। सृष्टि प्रभृति सभी व्यापार में ऐश्वरिक कृत्य उभय प्रणाली से ही सम्पन्न होता है। इसीलिए बाह्य दृष्टि से दोनों के मध्य पार्थक्य का आविष्कार करना सहज नहीं है। जो विज्ञान के तत्त्व को नहीं जानते, वे विज्ञान के सभी कार्य को योगशक्ति मानते हैं, किन्तु वास्तव में दोनों प्रणाली में मौलिक भेद हैं। जो उच्च अधिकारवान् हैं, वे ही इसे समझ पाते हैं।

विज्ञान शब्द से यहाँ हमारा तात्पर्य सूर्यविज्ञान से ही है। किन्तु स्मरण रखना होगा कि यद्यपि सूर्यविज्ञान का महत्त्व सर्वापेक्षा अधिक है, तथापि यही एकमात्र विज्ञान नहीं है। क्योंकि चन्द्रविज्ञान, वायुविज्ञान, शब्दविज्ञान, क्षणविज्ञान प्रभृति की बात उनके मुख से सुनी थी। प्रत्येक विज्ञान का तत्त्व उन्होंने दृष्टान्त द्वारा सृष्टि करके (वस्तुसृष्टि) हमलोगों को प्रत्यक्ष दिखलाया था। तथापि वे सूर्यविज्ञान की ही बात अधिक समय कहते थे और इसी विज्ञान की क्रीड़ा अधिकांशतः प्रदर्शित किया करते थे। सूर्यविज्ञान द्वारा जो कुछ किया जा सकता है, अन्य विज्ञान की सृष्टि में जो पारस्परिक भेद है. वे उसे मुक्तकण्ठ से बतलाया करते थे। तथापि वह जनसामान्य समझ सके, इसका कोई उपाय नहीं था। दृष्टान्तस्वरूप कह सकते हैं कि प्राकृतिक सृष्टि की कोई वस्तु तथा सूर्यविज्ञान द्वारा सृष्ट वस्तु आपाततः समरूप होने पर भी वास्तव में विलक्षण है। इसी प्रकार एक ही वस्तु सूर्यविज्ञान से उद्भूत होने पर तथा अन्य विज्ञान की प्रक्रिया से उद्भूत होने पर दोनों में पारस्परिक विभेद (विशिष्टता) रहता है। जैसे कर्पूर एक जागतिक वस्तु है। कर्पूर सूर्यविज्ञान की नीति (रीति) के अनुसार साक्षात् रूप से सूर्यरश्मि से उद्भूत हो सकता है तथा दूसरी ओर चन्द्रविज्ञान अथवा वायुविज्ञान की प्रक्रियानुसार भी रचित हो सकता है। जागतिक दृष्टि से अथवा विज्ञान के नियम से इनके रासायनिक विश्लेषण में इनमें कोई भी पार्थक्य नहीं मिलेगा (अर्थात् वायुविज्ञान से प्रस्तुत अथवा सूर्यविज्ञान से प्रस्तुत अथवा चन्द्रविज्ञान से प्रस्तुत कर्पूर में कोई भेद नहीं होगा), तथापि सूक्ष्मदर्शन से इनमें निहित पार्थक्य को देखा जा सकता है। जागतिक वस्तु मलिन होती है किन्तु इन विज्ञानों से सृष्ट वस्तु निर्मल होती है, यह बाबा विशुद्धानन्ददेव कहते थे। यह प्रत्यक्ष भी दिखलाते थे। योगबल से भी वस्तुसृष्टि हो सकती है। यही नहीं, सजीव प्राणी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी निर्मित हो जाते हैं। विज्ञान की विभिन्न सृष्टि से तथा प्राकृत सृष्टि से योग की सृष्टि में भी विशेषता है।

विभिन्न विज्ञान सृष्टि की बात यहाँ आलोचित नहीं होगी। यहाँ सूर्यविज्ञान ही आलोच्य है। विज्ञान तथा योग प्रणाली की भी सृष्टि क्रिया में पार्थक्य है। सूर्यविज्ञान सूर्य-रश्मि पर निर्भर करता है। रश्मि को वर्ण तथा प्रचलित भाषा में रंग कहते हैं। इसके विभिन्न प्रकार के संयोग-वियोग के फल से विभिन्न प्रकार के पदार्थों की अभिव्यक्ति होती है। रश्मि वस्तुसत्ता की अभिव्यञ्जक है। अतएव सूर्य-रश्मि के साथ परिचय स्थापित करके विभिन्न रश्मियों का पारस्परिक संघटन ही सूर्यविज्ञान का रहस्य है। इसके द्वारा सृष्टि भी हो सकती है, संहार भी हो सकता है, आविर्भाव भी हो सकता है, तिरोभाव भी हो सकता है। प्रयोजन होने पर स्थिति तथा रक्षा भी हो सकती है। सृष्टि तथा संहार की युगपत क्रिया में रूपान्तर भी हो सकता है। विज्ञान की सृष्टि के मूल में प्राकृतिक उपादान के ऊपर क्रियाशक्तिमूलक नियन्त्रण रहता है, इसे स्मरण रखना होगा। योगबल से जो सृष्टि होती है, उसमें ऐसा नहीं है। योगसृष्टि इच्छा-शक्ति से हो जाती है। इसमें पृथक् उपादान की आवश्यकता नहीं रह जाती। उपादान रहता है स्रष्टा (योगी) की अपनी आत्मा। अर्थात् इच्छाशक्ति की सृष्टि में निमित्त तथा उपादान दोनों अभिन्न है (आत्मा ही है)। योगी अपने स्वरूप से (बिना किसी बाहरी उपादान के) अपनी इच्छाशक्ति के प्रभाव से अन्तःस्थित अभिलषित पदार्थ को बाहर कर देता है। यह जो आत्मा का अन्तःस्थित अर्थ इच्छा द्वारा बाहर प्रकाशित किया गया है, यही है योगसृष्टि। तांत्रिक परिभाषा में यही है बिन्दु-विसर्ग की लीला। अद्वैत भूमिस्थ योगी इच्छाशक्ति द्वारा सृष्टि करते हैं। शक्तिसूत्र में कहा गया है 'वह स्वेच्छा से स्वभित्ति पर विश्व का उन्मीलन करता है।' तभी उत्पलाचार्य कहते हैं—

चिदात्मा हि देवोऽन्तः स्थितमिच्छावशाद बहिः।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्॥

श्री शंकराचार्य कहते हैं कि समग्र विश्व आत्मा के स्वस्वरूप के ही अन्तर्गत है। दर्पण में प्रतिबिम्बरूपेण दृश्यमान नगरी जैसे दर्पण के ही अन्तर्गत है, पृथक् नहीं है—उसी प्रकार प्रकाशमय आत्मा में प्रतिभासमान दृश्य आत्मा के ही अन्तर्गत है। आत्मा से पृथक् नहीं है। ज्ञानी ऐसे ही विश्व को देखता है। क्योंकि उसकी दृष्टि में आत्मा से पृथक् कोई वस्तु नहीं है। जो अज्ञानी है, जो प्रकाशमय आत्मा का स्वरूपदर्शन नहीं कर सका है, वह जागतिक पदार्थ की आत्मा से अभिन्न अथवा आत्मा के अन्तर्गत रूप से धारणा नहीं कर सकता। इसका एकमात्र कारण है माया का प्रभाव। मायाशक्ति देश तथा काल का उद्भावन करके आत्मनिहित विश्व को देशकाल द्वारा परिच्छिन्नरूप से एवं पृथक् रूप से मित प्रमाता अथवा जीव के निकट प्रदर्शित करती है। ईश्वर मायाशक्ति के अधिष्ठाता हैं। ऐश्वर्यशक्ति योगी भी आंशिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूप से वही है। इसी कारण योगीगण अघटन-घटन-पटीयसी मायाशक्ति का आश्रय लेकर किसी भी पदार्थ का बाहर (जगत् में) प्रदर्शन कर देते हैं। यही है योगी का इच्छाशक्ति का व्यापार। इच्छाशक्ति (स्वातन्त्र्य शक्ति) ही मायाशक्ति का स्वरूप है। यह जो योगी द्वारा पदार्थ का बाह्य प्रकाशन है, यह अज्ञानान्ध जीव जगत् की दृष्टि में वस्तु की उत्पत्ति आविर्भाव रूप से प्रतीत होने पर भी वास्तव में आत्मा के साथ अभिन्नतया स्थित वस्तु का (अर्थात् आत्मा की शक्ति का) बाह्य प्रकाशन मात्र है। यह स्मरण रखना होगा कि यह बाह्यभाव वास्तव में ज्ञानी तथा योगी की स्वरूप दृष्टि में नहीं है। अज्ञानी अथवा संसारी की परिच्छिन्न दृष्टि में भी नहीं है। इसे दोनों के सम्बन्धमूलक दृष्टिकोण से ही कहा गया है।

विज्ञान की सृष्टि में इच्छाशक्ति रूप मौलिक इच्छा की कोई क्रिया नहीं रहती। साधारण इच्छा अवश्य रहती है कि अमुक वस्तु की सृष्टि करना है। क्योंकि यदि साधारण इच्छा न रहे, तब कोई कार्य ही नहीं हो सकता। विज्ञान (सूर्यविज्ञान आदि विज्ञान) की सृष्टि में दो दिक् हैं। एक है योगी का, ज्ञानी का विज्ञान। दूसरा है अयोगी तथा अज्ञानी का विज्ञान। योगी तथा ज्ञानी जगत् के मूल उपादान को अपने स्वरूप से पृथक् नहीं देखते। किन्तु वे इच्छा हो जाने पर उसे कल्पित भाव से पृथक् करके भी देख सकते हैं। जो पूर्ण योगी तथा ज्ञानी नहीं है, अथच जो निज स्वरूप से पृथक् रूप से प्रकृति अथवा उपादान का साक्षात्कार प्राप्त करते हैं, वे भेददृष्टि का अवलम्बन करके सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होकर विज्ञान की सृष्टि-प्रक्रिया का अवलम्बन करते हैं। वे प्रकृति को अपनी आत्मा से अभिन्न रूप से देखने के कारण सृष्टिकाल में इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हैं तथा पक्षान्तर से प्रकृति को अपने से पृथक् देखकर वैज्ञानिक प्रक्रिया का अवलम्बन लेते हैं।

विज्ञान की क्रिया में ज्ञान है, क्रिया भी है। ज्ञान न रहने से क्रिया सम्भव नहीं है। ज्ञान अर्थात् उपादानगत् अपरोक्ष ज्ञान। क्योंकि जिस उपादान को लेकर कार्य निर्मित होता है, उस उपादान के प्रत्यक्ष ज्ञान के विषयीभूत न होने से उसके ऊपर क्रियाशक्ति का प्रयोग किस प्रकार से चलेगा? यह अवश्य स्मरण रखना होगा कि यह प्रत्यक्षज्ञान अभेदात्मक नहीं है। यदि ऐसा होता, तब पृथक् भाव से क्रिया का प्रयोजन ही नहीं रहता! तब एकमात्र इच्छा द्वारा ही प्रयोजन सिद्ध हो जाता। जब तक भेदज्ञान नहीं कट जाता, तब तक इच्छाशक्ति का प्रयोग सम्भव नहीं होता। यहाँ विज्ञान के अन्तर्गत ज्ञान तथा क्रिया के अंश का ही अनुशीलन जानना होगा।

विज्ञान का जो ऊपरी दिक् है, वह अत्यन्त गम्भीर है। वहाँ इच्छाशक्ति को भी प्रवेशपथ नहीं मिलता। क्योंकि इच्छाशक्ति का आविर्भाव ईश्वर अवस्था में होता है, किन्तु परमविज्ञान का व्यापार महाशक्ति के अन्तःपुर की क्रीड़ा है। इच्छाशक्ति, यहाँ तक कि ईश्वर ही समग्र सृष्टि के कारण हैं, किन्तु ईश्वर अथवा इच्छाशक्ति के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्फुरण के मूल में जो अति गुह्य शक्ति कार्य कर रही है, वह भी परम विज्ञान की आश्रय स्वरूपा महाशक्ति की ही अंगीभूत है।

यहाँ मैं परम विज्ञान की चर्चा का त्याग करके साधारण विज्ञान के क्षेत्र में अवतरण करता हूँ। यहाँ विज्ञान शब्द से सूर्यविज्ञान की ही मन ही मन धारणा कर लेना चाहिये। जागतिक सृष्टि तथा संहार व्यापार शक्ति संकोच-विकासमूलक है। प्रकारान्तर से इसे योग-वियोग की प्रक्रिया भी कह सकते हैं। इसे सम्पूर्णतः हृदयङ्गम करने के पूर्व पदार्थ के स्वरूप के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण की आलोचना करना आवश्यक है। एक दृष्टिकोण से स्पष्ट देखा जाता है कि अवयव के यथाविधि संस्थान से अवयवी उत्पन्न होता है। सभी अवयवों को अच्छी तरह पहचान सकने पर तथा उनकी संयोजन प्रणाली आयत्त कर सकने पर अवयव समूह के मिलन द्वारा इच्छानुरूप अवयवी को स्फुटित किया जा सकता है। जैसे वर्ण द्वारा पद की रचना होती है, उसी प्रकार अवयव से अवयवी की रचना हो जाती है। इस रचना-प्रणाली में केवल अवयव समूह का ही गुरुत्व है, ऐसी बात नहीं है। किन्तु अवयव समूह के परस्पर सम्बन्ध अथवा आनुपूर्विक की आवश्यकता रहती है। शिक्षार्थी के लिए अवयव का परिचय जैसे आवश्यक है, उसी प्रकार से आनुपूर्वीय ज्ञान भी आवश्यक है। इस प्रणाली में स्वभाव की सृष्टि निम्न स्तर से देखने में आती है। इसकी विशिष्टता यह है कि जब तक अन्तिम अवयव का आविर्भाव नहीं हो जाता, तब तक समग्ररूपेण अवयवी को पाया नहीं जा सकता। मध्य में, यहाँ तक कि अन्त में भी एक भी अवयव का अभाव होने पर अथवा एक का भी आधिक्य होने पर पूर्वनिर्दिष्ट कार्य उद्भूत नहीं हो पाता। कार्य की उत्पत्ति द्रुत अथवा विलम्बित होने का सुसंगत कारण हो सकता है, तथापि यथोचित भाव से अवयव के सन्निवेश के बिना अवयवी की उत्पत्ति असम्भव है।

यहाँ अवयवी को मानकर और अवयव से उस अवयवी के पृथकत्व को स्वीकार करके ऐसा कह रहा हूँ। तथापि जिस दृष्टिकोणानुसार अवयवी से अवयव की पृथक्ता स्वीकार नहीं की गयी है, वह दृष्टिकोण तथा मूलतः आविर्भाव का नियम एक ही तरह का है। संघात अथवा समष्टि युतसिद्ध अथवा अयुतसिद्ध, दो प्रकार की हो सकती है। अतः अवयवी को स्वीकार न करने पर भी अथवा गुण-क्रिया से द्रव्य को पृथक् स्वीकार न करने पर भी पूर्ववर्ती नियम का कोई व्यतिक्रम नहीं होता। अवयवी अथवा द्रव्य के स्थल में अदभुत्सिद्ध अवयव-सम्पन्न संघात को मानकर आलोचना करना सम्भव हो सकता है।

यह तो एक दिक् की बात है। किन्तु जागतिक पदार्थ को निरवयव मानकर भी एक दिक् है। इस दिक् से देखने पर अवयव संस्थान को छोड़कर तथाकथित अवयवी को अर्थात् वस्तुविशेष की सत्ता को प्राप्त किया जा सकता है। सूर्यविज्ञान के आलोचना-प्रसंग में इस दृष्टिकोण को भी याद रखना होगा। कार्यबिन्दु तथा कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिन्दु के रहस्य की आलोचना के प्रसंग में वस्तु मात्र के ही पूर्वोक्त प्रकार से सावयव तथा निरवयव दिक् को स्वीकार करना ही होगा। अर्थात् अखण्ड एवं खण्ड दिक् से ही सृष्टि क्रम का विश्लेषण आवश्यक है। इसका प्रयोजन भी है। यहाँ समग्र वस्तुज्ञान के विषय अथच उसकी अभिव्यञ्जक कारण-सामग्री ज्ञान के अगोचर स्थल में भी वैज्ञानिक सृष्टि की क्रिया के निरुद्ध रहने का कोई कारण नहीं है। जिसे Formula कहते हैं, उसे न जानने पर भी उसका आविष्कार कठिन नहीं है। कारणबिन्दु के मूल उपादान सत्ता में प्रक्षिप्त होने से, उसके प्रभाव से उपादान में जो क्षोभ उत्पन्न होता है, उसका सम्यक् प्रकार से विश्लेषण कर सकने पर आपेक्षिक रूप से सृष्टि का Formula आविष्कृत हो जाता है। कारणबिन्दु क्षुब्ध होकर कार्यबिन्दुरूपेण अभिव्यक्त होता है। क्षोभ का विश्लेषण कर पाने पर अवयव समष्टि तथा उनका परस्पर सम्पर्क सहज ही प्रत्यक्ष किया जाता है। अर्वाचीन शिक्षार्थी द्वारा कारणबिन्दु प्रत्यक्ष किये बिना, योनितत्व प्रत्यक्ष किये बिना तथा बिन्दु के प्रक्षेपण का सामर्थ्य आयत्त किये बिना, केवल मात्र क्षोभजन्य अवयव समूह को तथा उनकी पारस्परिक सापेक्षता को प्रत्यक्ष कर सकने से ही सृष्टि का Formula आविष्कृत हो जायेगा, यह निश्चित है। यहीं से विज्ञान सृष्टि की नियमावली संग्रहीत होती है। अन्त में केवल इसी नियम का अनुसरण करके अवयव के प्रत्यक्ष दर्शनकारी एवं आपेक्षिक क्रिया-शक्ति के अधिकारी विज्ञान सृष्टि में प्रवृत्त हो सकेंगे।

योगीगण तथा वैज्ञानिकगण कहते हैं कि जगत् की सभी वस्तु सर्वात्मक है। अर्थात् जगत् की किसी भी वस्तु में अन्य किसी भी वस्तु की सत्ता आंशिक भावेन विद्यमान रहती है। सृष्टि में कोई भी वस्तु निरपेक्ष नहीं रह सकती। हम किसी विशेष वस्तु को उसके विशेष रूप अथवा नाम के द्वारा किंवा उसकी गुण क्रिया के द्वारा पहचानते हैं। इससे यह सोचना उचित नहीं है कि उसमें अन्य वस्तु का उपादान नहीं है। यदि प्रकृति को मूल उपादान माना जाये, तब यह कहना होगा कि वही उसका मूल उपादान है। उससे ही परिणाम के क्रम को पकड़कर उस वस्तु का आविर्भाव हुआ है। तथापि प्रकृति एक तथा अभिन्न है। प्रत्येक वस्तु ही मूलतः प्रकृतिरूप उपादन का कार्य विशेष है। इसीलिए किसी भी वस्तु में जगत् की समस्त वस्तुओं के उपादान रहते हैं, अतएव प्रयोजनानुसार उसे किसी भी वस्तु में परिणत कर सकना सम्भव है। जिसे हम गुलाब पुष्प कहते हैं, यह सत्य है कि उसका बाह्य स्वरूप गुलाब के समान है, किन्तु उसके उपादान में विश्वसृष्टि का मूल उपादान भी वर्त्तमान है। अतः प्रयोजन होने पर उसमें से कमल के उपादान का आकर्षण करके एक पद्मफूल का निर्माण किया जा सकता है।

केवल पुष्प ही क्यों, इस गुलाब पुष्प को अन्य किसी भी रूप में परिणत कर सकते हैं। वह इसलिए सम्भव है कि इसमें सभी वस्तु के उपादान निहित हैं। गुलाब फूल इसलिए है कि इसकी सृष्टि में गुलाब के ही उपादान विशेषतः कार्यरत हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्यान्य वस्तु के उपादान अव्यक्तभावेन विद्यमान हैं। यदि गुलाब पुष्प को पद्मपुष्प में परिणत करना हो तब गुलाब के मध्य जो पद्म का उपादान है उसे क्रियाशील करना होगा। उसे क्रियाशील करने की प्रक्रिया की आलोचना अभी नहीं की जा रही है। उसमें पद्म का उपादान क्रियाशील होने पर यह क्षुब्ध उपादान बाह्य सृष्टि से स्वजातीय उपादान का आकर्षण करके क्रमशः पुष्ट हो जाता है और पुष्टि के परिणामस्वरूप पद्मरूपेण आविर्भूत होता है। किन्तु जिस अनुपात में पद्म का उपादान प्रबल (पुष्ट) होकर अभिव्यक्त होगा, ठीक उसी अनुपात में गुलाब का उपादान क्षीण होकर अव्यक्त हो जायेगा, किन्तु अव्यक्त होकर भी शून्य नहीं होगा। कारण मूल प्रकृति में अव्यक्त भाव से सभी उपादान विद्यमान रहते हैं। बाह्यदृष्टि से देखा जाता है कि गुलाब पद्मपुष्प में परिणत हो गया। तब गुलाब का नाम-रूप-गुण-क्रिया कुछ भी नहीं रहेगी। पक्षान्तरेण पद्म का नाम-रूप-गुण-क्रिया स्फुरित हो जायेगी। किन्तु वास्तव में गुलाब पद्मरूप में परिणत नहीं है। क्योंकि गुलाब के सूक्ष्मरूप से स्थित रह जाने पर ही यह पद्म सूक्ष्मरूपेण स्फुरित हो सका है (गुलाब की पृष्ठभूमि पर ही पद्मपुष्प का स्फुरण हो सका है)। पहले पद्म सूक्ष्मरूप विद्यमान तथा गुलाब स्थूल रूप से था। अब उसका व्यतिक्रम हो गया है।

इस प्रकार से विचारपूर्वक देख पाने पर यह उपलब्धि होती है कि प्रत्येक वस्तु ही पृष्ठदेश में अव्यक्त है तथा सूक्ष्मभावेन मूल प्रकृति में रहती है। आपूरण तारतम्यानुसार विभिन्न प्रकार कार्य की उत्पत्ति होने से वस्तु की उत्पत्ति होती है। योगी इस सत्य का आश्रय लेकर ही अभ्यास योग में प्रवृत्त होते हैं, क्योंकि मनुष्य की सत्ता में ही सूक्ष्मभावेन पूर्ण भगवत्-सत्ता तथा दिव्यसत्ता विद्यमान रहती है। उसे अभिव्यक्त करके प्रकाशित करना ही अभ्यास योग का उद्देश्य है। अच्छी-बुरी सभी सत्ता सबमें रहती है। जो जिसे स्फुटित कर पाता है, उसके निकट वही अभिव्यक्त होती है।

योगसूत्रकार पतञ्जलिदेव कहते हैं कि प्रकृति अथवा उपादान का आपूरण होने से एक जातीय वस्तु अन्य वस्तु में परिणत हो जाती है। प्रकृति का परिणाम स्वाभाविक होने पर इस परिणाम के प्रकारभेद के सम्बन्ध में निमित्त कारण की आवश्यकता रहती है। यद्यपि प्रकृति से सब कुछ आविर्भूत हो सकता है, परन्तु कार्यतः जो नहीं होता उसका कारण है निमित्त का अभाव। प्रकृति का प्रवाह जिस ओर उन्मुक्त होता है, उसी प्रकार कार्य भी उद्भूत होता है। जीव की कर्मशक्ति, योगी की इच्छाशक्ति तथा भगवान् की कृपाशक्ति, सभी निमित्त के अन्तर्गत है। इस निमित्त प्रकृति का प्रयोजन नहीं होता। अर्थात् ये प्रकृति का किसी निर्दिष्ट दिशा में प्रेरण नहीं करते, तथापि ये प्रकृति के आवरण विशेष को नष्ट कर देते हैं। आवरण भग्न हो जाने पर उस ओर प्रकृति का परिणाम होने लगता है। जिस दिक् का आवरण निवृत्त नहीं होता, उस दिक् का परिणाम संघटित नहीं होता। आवरण को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवृत्त करने का लौकिक उपाय है जीव की कर्मशक्ति। कर्म भी धर्म-अधर्म भेद से दो प्रकार का है। जहाँ धर्म प्रतिबन्धक अथवा आवरण रूप से विद्यमान रहता है, वहाँ प्रकृति का अखण्ड परिणाम कार्योन्मुख नहीं हो पाता। किन्तु इस आवरण के हट जाने पर प्रकृति से दु:खसृष्टि का उदय अवश्यम्भावी है। इस प्रकार प्रकृति में अधर्मरूप आवरण विद्यमान रहने पर वह प्रकृति को सुखरूपेण परिणत नहीं होने देता। धर्मचिन्तन द्वारा अधर्म नामक आवरण को हटा देने पर ही प्रकृति से सुख का आविर्भाव हो सकेगा।

अतएव प्रकृति में सब रहने पर भी उससे सभी समय सब बहिर्गत् नहीं होता। निमित्त तो प्रकृतिगत आवरण का विनाशक अवश्य है, किन्तु प्रकृति को अपने कार्य की ओर उन्मुख कराने में समर्थ नहीं है। जल स्वभावत: निम्नगामी है किन्तु प्रतिबन्धक रहने के कारण उसकी अधोगति स्तम्भित हो जाती है, तथापि किसी विशेष प्रक्रिया से इस प्रतिबन्धक का अपसारण कर सकने पर उसका अधोगामित्व स्वयं ही संघटित हो जाता है। प्रकृति के विश्वपरिणाम के सम्बन्ध में ऐसा ही समझना होगा।

इस प्राकृतिक सृष्टि के रहस्य को जाने बिना सूर्यविज्ञान के तत्त्व की धारणा कर सकना कठिन होगा। जिस वर्णमाला द्वारा पदवाक्यादि क्रम से मानवीय भाषा गठित है, उस वर्णमाला के मूल में यह रहस्य विद्यमान है। क्योंकि प्रत्येक वर्ण ही स्वरूपत: सर्ववर्णात्मक है। बाह्य दृष्टि से स्थूलभाव में वर्णसमूह पृथक्-पृथक् हैं, इसमें सन्देह नहीं है, किन्तु वर्ण का जो मूल उपादान है, वह प्रत्येक वर्ण में रहता है और उसी में समस्त वर्णों की अभिव्यक्ति की सम्भावना रहती है। हम जिस वर्ण के साथ वर्णान्तर का संघटन करते हैं, वह स्थूल रूप से कार्य की अभिव्यक्ति के लिए करते हैं। किन्तु योगी अन्तर्मुखी दृष्टि द्वारा जिस किसी भी वर्ण की ओर लक्ष्य करते हैं, उसी में वे सर्ववर्ण की मूलप्रकृति को भी देख लेते हैं।

प्रकृति का परिणाम स्वाभाविक है। जो यह कहते हैं कि काल के प्रभाव से गुण का परिणाम होता है, वे काल को ही प्रकृति के परिणाम का निमित्त अवधारित करते हैं। कोई तो ईश्वर की इच्छा को ही निमित्त कहते हैं। यहाँ स्वभाववाद का आश्रय लेकर आलोचना की जा रही है। परिणाम जब प्रकृति का स्वभाव होता है, कोई निमित्त नहीं रहता, तब वह सदृश परिणामरूपेण प्रकाशित होता है। किन्तु प्रकृति में विसदृश परिणाम की क्रिया न होने पर उससे कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता, किसी धर्म का आविर्भाव नहीं हो सकता। प्रकृति का परिणाम दो प्रकार का है— एक है तत्वान्तर परिणाम, अन्य है धर्मादि परिणाम। तत्वान्तर परिणाम में एक अवसानभूमि रहती है। उसके पश्चात् ही प्रकृति धर्मीरूप से आत्मप्रकाश करती है। तब इस धर्मीरूप प्रकृति से धर्मरूप परिणाम प्रकट होता है। यही सृष्टि का प्रारम्भ है। यह देश-काल द्वारा बाधित नहीं है। वास्तव में यह काल के अन्तर्गत ही नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मरूप परिणाम जिस भूमि में है, उस भूमि में वह निरन्तर तथा नियत है, इसमें सन्देह नहीं है।

एक प्रकार से देखने पर विश्व का यावतीय धर्म ही इस भूमि में विद्यमान है। अथच किसी निर्दिष्ट धर्मरूप में वह इन्द्रियगोचर नहीं होता। इस भूमि से परिणाम का स्रोत काल के राज्य में प्रवेश करता है। तब यह धर्म देहावच्छिन्न प्रमाता को इन्द्रियगोचर होता है। हम जिसे वर्त्तमान काल कहते हैं, उसी में यह धर्म प्रवेश करता है। प्रश्न उत्थित होता है कि वर्त्तमान काल में प्रवेश करने के पूर्व यह धर्म था अथवा नहीं, यदि था तब कहाँ था? तब यह अनागत काल (भविष्य) में था जिसे धर्म की भूमि कहा गया है, उसका कुछ अंश इस अनागत काल की भूमि के साथ अभिन्न है। क्योंकि अनागत काल स्थित यह धर्म ही वर्त्तमान काल में प्रविष्ट होकर द्रष्टा को दृष्टिगोचर होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि दृष्टिगोचर होने के पूर्व भी यह धर्म विद्यमान था, क्योंकि धर्मरूप परिणाम तो पहले से ही सिद्ध है। उससे वर्त्तमान काल में धर्म विषय का अवतरण होता है। यद्यपि समस्त धर्म का अवतरण नहीं होता। क्योंकि सामग्री के प्रभाव से ही अव्यक्त धर्म अभिव्यक्त होता है। जागतिक भाषा में यही है उसकी अभिव्यक्ति। इसलिए सिद्धान्त है कि उत्पन्न होने के पूर्व भी यह धर्म अव्यक्त अनागत कारण में निहित था। इसे अव्यक्त कालगर्भ आविर्भूत धर्म भूमि का ही एक क्षुद्र अंश जानना होगा। इस मूल भूमि से धारा विभेद से विभिन्न स्थान पर धर्म प्रकट हो रहा है (धर्म अर्थात् कार्यवस्तु)। कार्यवस्तु आविर्भाव क्षण से लेकर तिरोभाव क्षण पर्यन्त निरन्तर परिणामयुक्त अवस्था में रहकर पुनः अव्यक्त हो जाती है। अनागत भूमि तथा अतीत भूमि, दोनों ही अव्यक्त हैं, फिर भी दोनों में प्रभेद है। सृष्टि की धारा अनागत से वर्तमान की ओर तथा वर्तमान से अतीत की ओर प्रवाहित होती रहती है। तभी अतीत के अनागतवत् अव्यक्त होने पर भी, उससे वर्तमान की ओर धारा नहीं चलती। जबकि अनागत से वर्तमान की ओर धारा चलती है। तभी अतीत से कार्याभिव्यक्ति सम्भव नहीं है।

इस तत्त्व को विशेष रूप से याद रखना चाहिये। क्योंकि योगबल अथवा विज्ञान के द्वारा अतीत अथवा विनष्ट वस्तु का भी पुनरुद्धार हो जाता है। यहाँ यह पुनरुत्थान पूर्वोक्त कार्यवस्तु का क्षणभेद सम्पन्न होने का प्रतिरूपक मात्र है। यह किस प्रकार से सम्भव होगा, विज्ञान के दृष्टिकोण से इस सम्बन्ध में आलोचना करना संगत लग रहा है। कार्यवस्तु जब तक उदित अथवा व्यक्त अवस्था में रहती है, तब तक निरन्तर उसका परिणाम होता है। वास्तव में प्रतिक्षण ही यह परिणाम घटित होता है। क्षणिक परिणाम के साधारण लोगों को दृष्टिगम्य न होने पर भी उसे अनुमान के द्वारा स्पष्टतः निश्चित किया जाता है। यह परिणाम वर्तमान धर्म का ही होता है। वास्तव में अनागत धर्म का परिणाम भी स्वीकार करना ही होगा। क्योंकि इसी परिणाम के ऊपर अनागत काल से वर्तमान काल में वस्तु की गति सम्भव होती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। अव्यक्तावस्था में परिणाम के अतीन्द्रिय होने पर भी उसके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकते। फिर भी यह मानना होगा कि अनागत से वर्तमान में आने के लिए कारणव्यापार की आवश्यकता होती है। कारण-व्यापार के बिना अनागत सद्वस्तु कदापि वर्तमान रूप में प्रतिभात नहीं हो सकती। किन्तु जब वर्तमान प्रतिभास कट जाता है, तब यह वस्तु अतीत रूप से अव्यक्त के गर्भ में पुनः प्रवेश कर जाती है। अतीत तो अतीत होकर भी सत् है, अलीक नहीं है, इसे सभी स्वीकार करते हैं। तथापि अनागत सत्ता एवं अतीत सत्ता वर्तमान से पृथक् है। इतने पर भी यह सत्य है कि अतीत वर्तमान सत्ता में प्रतिष्ठित हो जाने पर अतीत नहीं रह जाता। तब अनागत भी अनागत नहीं रह जाता। चन्द्राकार मण्डल के समान एक अखण्ड मण्डल के रूप में यह प्रकाशित होता है। अतीत तथा अनागत के मध्य पार्थक्य न रहने पर भी गुरु-प्रदेश द्वारा एक कृत्रिम पार्थक्य की सृष्टि कर ली जाती है। धर्मी में, यहाँ तक कि मूल धर्म स्वरूप में यह पार्थक्य स्फुटित हो जाता है। विवेकज्ञान के प्रभाव से समस्त धर्म से निष्कृति प्राप्त हो जाती है, तब भी स्वरूपगत विशिष्टता रह जाती है।

मान लें कि 'क' एक कार्यवस्तु है। वह अनागत अवस्था में जैसी है, वैसी ही अतीत अव्यक्तावस्था में भी है, किन्तु यह दोनों अव्यक्त भाव एक प्रकार का नहीं है। यद्यपि कारणव्यापार द्वारा अनागत अव्यक्त 'क' को कार्य रूप में स्फुटित कर दिया जा सकता है, तथापि जागतिक कोई भी कारणव्यापार अतीत हो गये 'क' को पुनः वर्तमान में नहीं ला सकता। यह सहजबोध्य है। सृष्टि का स्रोत अनागत से वर्तमान की ओर है, किन्तु अतीत से वर्तमान की ओर कदापि नहीं है। साथ ही यह भी सत्य है कि योगी नष्ट वस्तु का पुनरुद्धार करने में समर्थ है। यदि यह सत्य है तब योगीगण जो नष्ट होकर अतीत हो चुका है, उसे वे वर्तमान कैसे करते हैं, यह प्रश्नचिह्न खड़ा रह जाता है। समग्र वर्तमान लक्षण में जो क्षणिक परिणाम-परम्परा चलती रहती है, उसके द्वारा वह कार्यवस्तु उपलक्षित होकर अतीत के गर्भ में प्रवेश करके पुनः अव्यक्त भाव धारण करती है।

यहाँ योगी अथवा विज्ञानवित् अतीत सत्ता को प्रत्यक्ष करके उसकी अभिव्यञ्जक सामग्री को क्रियाशक्ति द्वारा आयत्त करते हैं अथवा इस ज्ञानगोचर सत्ता का अवलम्बन लेकर इच्छाशक्ति का प्रयोग करके लुप्त सत्ता को पुनः उद्बुद्ध कर देते हैं। यह विचारणीय विषय है। अनागत अव्यक्त से जो 'क' सत्ता अभिव्यक्त हुई है तथा आपाततः अतीत अव्यक्त से जो 'क' सत्ता अभिव्यक्त हो सकी है, यह दोनों 'क' सत्ता ठीक एक ही है अथवा नहीं? योगी के बिना अन्य कोई भी इस गूढ़ रहस्य का भेदन नहीं कर पाता। वास्तव में एक प्रकार से देखने पर यह दोनों सत्ता वास्तव में एक ही सत्ता है। अथच एक ही सत्ता नहीं भी है। क्योंकि प्रथम सत्ता स्वभाव की अनुलोम धारा से आई है, किन्तु द्वितीय सत्ता योगी के संकल्प से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वभाव की विलोम धारा का अवलम्बन लेकर आविर्भूत है। स्थूल दृष्टि से दोनों में कोई पार्थक्य नहीं है, यह सत्य है, क्योंकि गुण-क्रिया-अवयव-संस्थान-प्रभाव-वीर्य में दोनों एक ही प्रकार की हैं—तथापि दोनों वास्तव में पृथक् सत्ता है। योगज दृष्टि से यह पार्थक्य देखा जा सकता है। इस पार्थक्य का हेतु भी है। यह हेतु है क्षण सम्बन्ध। पहले 'क' में जिस क्षण सम्बन्ध का साक्षात्कार मिलता है, द्वितीय 'क' का क्षण सम्बन्ध उससे पृथक् है। जो क्षण का साक्षात्कार नहीं कर पाते, उनके लिए क्षणगत भेद धारणा से अतीत है। इसीलिए किसी वस्तु के नष्ट हो जाने पर, उस वस्तु को योगबल से पुनः प्रकट कर देने की बात सत्य है, तब भी दोनों वस्तु में सूक्ष्म पार्थक्य रह जाता है। यह क्षणगत विशेषता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जप-रहस्य

सर्वप्रथम कुमारी-सेवा आवश्यक है। यही ज्ञानगंज का विधान है। तदनन्तर जप की आवश्यकता है। जप के सम्बन्ध में जो आलोचना की जा रही है, वह अखण्ड महायोग (सूर्यविज्ञान) पर आधारित है। जप से आन्तरिक निर्माण-कार्य चलता है। आन्तरिक शान्ति उदित होती है। कुछ लोग यह कहते हैं कि जप करने पर भी अन्तर्मुखी गति का उदय क्यों नहीं होता? इसका चरम लक्ष्य क्या है? साधारणतः जप तीन प्रकार से किया जाता है। वाचिक, उपांशु एवं मानस। वाचिक जप निम्नावस्था है। मानसिक जप सर्वश्रेष्ठ स्थिति है। मानसिक जप सबको आयत्त नहीं हो सकता, इसी कारण उपांशु जप की व्यवस्था की गई है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि जप का यह निम्न अथवा श्रेष्ठ स्तर व्यवहार दृष्टि से है। अध्यात्म दृष्टि से तीनों जप विधि की विशिष्टता में कोई भेद नहीं है। वैखरी जप में बाह्य वायु की आवश्यकता पड़ती है। उसमें कण्ठ प्रभृति स्थानों पर वायु का आघात होना आवश्यक-सा है। वास्तव में उपांशु जप में वायु की आवश्यकता अत्यन्त न्यून ही रह जाती है। यद्यपि मानसिक जप में वायु की कोई भी आवश्यकता नहीं रहती, तथापि साधारण मनुष्य बाह्य वायु के साथ सम्बन्ध भंग करके मानसिक जप नहीं कर सकते। यदि बाह्य वायु रहित आस्था में मानसिक जप किया जा सके, उस स्थिति में श्वास की गति में विलक्षणता आ जाती है। अतः यह ज्ञात रखना चाहिये कि प्रथमावस्था में किसी भी प्रकार से जप करने पर उसमें बाह्य वायु का सहयोग लेना ही पड़ता है।

वैखरी जप मातृका, किंवा वर्णमाला द्वारा सम्पन्न होता है। वर्णमाला वायु की संहति से उत्पन्न होती है। अतः जब मन वर्णात्मक शब्द का चिन्तन (मानसिक जप) करता रहता है, तब बाह्य वायु की सहायता लेनी ही पड़ती है। बाह्य वायु की क्रिया होने पर कण्ठादि उच्चारण यन्त्र पर आघात होना अवश्यम्भावी है। जब जप करते-करते जापक आपेक्षिक उत्कर्ष प्राप्त करता है, तब स्वभावतः कण्ठरोध हो जाता है। यह कण्ठरोध इच्छा अथवा चेष्टाजनित नहीं होता।

अब बिन्दु क्षुब्ध होकर प्रवाहशील नाद में परिणत होने लगता है। नाद तथा वायु के संघर्षण से वर्णमाला का प्रकाशन होता है। अतः वर्णमाला का आश्रय लेकर जप अथवा शब्द की आवृत्ति करने से बाह्य वायु का स्पर्श होना स्वाभाविक है। इस बाह्य स्पर्श के कारण अन्तर्मुखी गति बाधित होती है। अतः अन्तर्मुखी गति के लिए बाह्य वायु क्षेत्र से आभ्यन्तरीण वायु क्षेत्र में प्रवेश करना ही होगा। सर्वप्रथम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वायुमण्डल का भेद करते हुए आकाश में प्रवेश करना चाहिये। आकाश के भी अनेक स्तर हैं। वायु भी अनेक स्तरयुक्त है। आकाश का सर्वोच्च स्तर भेदन हो जाने पर विशुद्ध चैतन्य राज्य में प्रवेशाधिकार मिल जाता है। यह चैतन्य राज्य चिदाकाश पर्यन्त विस्तृत है। चिदाकाश ही आकाश का सर्वोच्च स्तर कहा गया है।

गुरुदत्त शक्ति का आश्रय लेने पर उद्यमशील साधक को अन्तर्मुखी प्रवाह प्राप्त हो जाता है। कालराज्य की परिणति स्वाभाविक हो जाती है। जैसे बालक बिना चेष्टा के ही समय पर युवक हो जाता है और युवक स्वतः वृद्ध होता है, उसी प्रकार से परा पर्यन्त की गति प्राप्त करने के लिए योगी को पृथक् चेष्टा नहीं करनी है। वैखरी से मध्यमा में स्वतः संचार हो जाता है। यही प्रकृतिगत नियम है। पुनः-पुनः वैखरी अवस्था में जप-साधना करते रहने से कण्ठद्वार रुद्ध होता है और हृदयद्वार उन्मुक्त हो जाता है। यह चिदाकाश भेदन है। यहाँ जो है, उसे यद्यपि आकाश ही कहते हैं तथापि वह दहराकाशरूपी एक अलौकिक आकाश है। गुरुशक्तियुक्त वैखरी का अभ्यास करते-करते वैखरी विलीन हो जाती है तथा मध्यमा में प्रवेश होता है।

जब तक साधक वैखरी में निविष्ट है, तब तक वह विकल्पभूमि में ही विद्यमान है। वैखरी में इन्द्रियों की ही प्रधानता रहती है। उसके साथ मन की भी सत्ता कार्यशील रहती है। वैखरी भूमि में बाह्यप्रमेय (बाह्यता) प्रधान है। जब वैखरी से मध्यमा में प्रवेश होता है, तब इन्द्रियों की सक्रियता नहीं रह जाती। वैखरी में देहात्मबोध स्पष्ट रूप से लक्षित होता है, और साधक में कर्तृत्व का अभिमान भी रहता है। मध्यमा में यह अभिमान क्षीण रहता है, तथापि विकल्प का उदय इस स्थिति में अनुभूत होता है। वैखरी जप करते-करते स्वयमेव मध्यमा की प्राप्ति हो जाती है। साधारण जप की मात्रा द्रुत अथवा विलम्बित न होकर मध्यम ही रहना चाहिये। इस प्रकार से नियमतः जप करने से ध्यानावस्था सम्प्राप्त हो जाती है। यह ध्यान स्थायी नहीं होता। अतः पुनः ध्यान से जप में स्थिति हो जाती है। योगी की दृष्टि में जप क्रियायोग का अंग है और ध्यान समाधि योग का अंग है। दोनों का ही अनुशीलन करना आवश्यक-सा है।

इस प्रकार ध्यान की अवस्था के साथ मध्यमा की क्रिया प्रारम्भ होने लगती है। अब वैखरी वाक् निरुद्ध है। देहात्मबोध भी अत्यन्त क्षीण है। बहिर्मुखीन भाव भी निरुद्ध है और अन्तर्मुख गति की सूचना मिलने लगी। इस अवस्था में नाद का प्रसार प्रारम्भ हो जाता है। वर्णात्मिका मातृका विलीन होकर ध्वनिरूप में परिणति प्राप्त करती है। इस अवस्था में हृदयद्वार उन्मुक्त हो उठता है। यद्यपि अब भी वायु की क्रिया है, तथापि वह आभ्यन्तरीण वायु है। इस स्थिति में अनादि-अनन्त नादध्वनि श्रुतिगोचर होने लगती है। यह नादध्वनि अत्यन्त विशाल है। इसी में वर्णात्मिका मातृका का विलयन हो जाता है। जैसे तरंगों के लीन हो जाने पर एकमात्र जल शेष रहता है, उसी प्रकार वर्णात्मिका तरंग के विलीन हो जाने पर भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्यानात्मक शब्द ही स्वप्रभाव के कारण नादरूप में प्रकाशित होने लगता है। प्रथमतः इस नाद में वर्णात्मक नाम (मन्त्र) की तरंग रहती है, किन्तु साधक के कर्तृत्वाभिमान का अवसान हो जाने पर, वह नाद में स्वयमेव उच्चारित होने लगता है। अब उसका पृथक् रूप से उच्चारण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

यह एक प्रकार से ब्रह्मनिर्घोष है। यद्यपि यह नादध्वनि वर्णात्मक नहीं है, तथापि इसे प्रथमतः वर्णात्मक शब्द के रूप में सुना जाता है। यह ध्वनिमात्र है। इसमें वर्ण संघात नहीं है। संस्कार के कारण इसमें वर्णात्मक प्रतीति होती है। इस समय साधक श्रोतारूप हो जाता है। इस स्थिति में श्रोता अपने आभ्यन्तर से उच्चारित मन्त्र अथवा नाम का ध्वन्यात्मक रूप मनोयोग से सुनने में समर्थ होता है। उपनिषद् ने जिस श्रवण-मनन की बात कही है, वह यही अवस्था है।

निरन्तर हृदयोत्थित नादध्वनि का श्रवण करते-करते इस ध्वनि से वर्णात्मक आभास उच्छिन्न हो जाता है। अब निराभास नादध्वनि उठने लगती है। क्रमशः अन्तःकरण की शुद्धि तथा चिदाकाश की निर्मलता का प्रकाशन होता है। सामान्य व्यक्ति अपने नेत्र बन्द करने पर जिस अन्धकार को देखते हैं, वह उनके ही हृदय का अन्धकार है। मध्यमा वाक् के क्रमिक अभ्यास के द्वारा यह अन्धकार समाप्त हो जाता है और चिदाकाश दृष्टिगोचर होने लगता है। अब नादध्वनि भी क्रमशः क्षीण हो जाती है। इस प्रकार की अवस्था का उदय होने पर ज्ञात होता है कि अब मध्यमा का अवसान होने वाला है। यही है चित्तशुद्धि। चित्तशुद्धि के अनन्तर अन्धकार तथा ध्वन्यात्मक शब्द भी निवृत्त हो जाते हैं। यही 'आध्यात्मिक उषा' है। इस अवस्था में मन निरुद्ध होकर चिदाकाश की ओर उन्मुख हो जाता है। अभी प्रकाशोदय नहीं है, तथापि अन्धकार निवृत्त है। अतः इसे उषाकाल कहते हैं। जो शब्द आभ्यन्तरीण रूप से श्रुतिगोचर हो रहा था, वह अब सुनने में नहीं आता। इस स्थिति में चिदाकाश में एक ज्योतिमण्डल उदित होता है। योगी की दृष्टि इस पर निबद्ध हो जाती है। यह पश्यन्ति स्थिति है।

इस मण्डल पर एकाग्र होते ही देह की स्मृति नहीं रह जाती और मन की क्रिया भी अस्तमित हो जाती है। साधक (योगी) की निष्ठा निराकार तथा निर्गुण सत्ता की ओर रहने पर वह ज्योतिमण्डल के निकटवर्ती होते-होते उसके साथ तादात्म्य-लाभ करता है। अब ज्योतिभेद होकर परावाक् में स्थिति होती है। जो साधक साकारोपासक हैं, उन्हें इस ज्योतिमण्डल में इष्टदेव का दर्शन मिलता है। क्रमशः वह इष्ट सत्ता अपनी सत्ता में साधक को मिला लेती है, अथवा साधक में विलीन हो जाती है। निराकार साधक को ज्योतिमण्डल में अपना स्वरूप उद्भासित प्रतीत होता है। यह समस्त वैचित्र्य भावसापेक्ष है। (इसी स्थिति को लक्ष्य करके 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' की उक्ति का अंकन हुआ) जब यह विलीनता सम्पन्न हो जाती है, तब द्रष्टा एवं दृश्य का भेद भी विलीन हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है। यह सब रूप आत्मा का ही रूप है। साक्षात्कार का होना अभिन्नावस्था का प्रतीक है। इस साक्षात्कार को पश्यन्ति, मन्त्र-साक्षात्कार अथवा इष्ट-साक्षात्कार कहते हैं। प्राक्काल में इस अवस्था को प्राप्त योगीगण ऋषि कहलाते थे। यहाँ मन नहीं रह जाता। इन्द्रिय क्रिया भी नहीं रहती। विश्वजगत् का भान नहीं रहता। केवल चैतन्यमय स्वरूप की सत्ता ही अवशिष्ट रह जाती है।

इतना होने पर भी यह खण्ड अवस्था ही है। इसकी भी पूर्ण परिणति है। तब खण्ड सत्ता ही अखण्ड सत्तात्मक आत्मप्रकाश करती है। इसे उन्मनी अवस्था, आत्मा का निष्कल साक्षात्कार अथवा परावाक् कहते हैं। यह पराशक्ति स्वरूपान्तर्गत है। मन्त्रसाधना अथवा ज्ञानसाधना का यही चरम लक्ष्य है।

जप क्रिया के प्रभाव से यह स्थिति प्राप्त होती है। अब वक्रगति अस्तमित हो जाती है। सरलगति भी बिन्दु में एकाकार हो जाती है। शिवशक्ति सामरस्य स्वतः प्रकाशित हो जाता है। आगम में इसे आत्मा का पूर्ण विकास कहते हैं। इसकी भी परावस्था का उल्लेख मिलता है। अर्थात् परावस्था की भी परावस्था है। विशुद्ध चैतन्य का पूर्ण विकास होने पर इसमें स्थिति-लाभ होता है। जप की पूर्ण परिणति के कारण यह आत्मविकास सम्यक्रूपेण प्रकट होता है।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रम-विकास

मनुष्य-देह अत्यन्त दुर्लभ है। इसके अभाव में पूर्णत्व तथा भगवत्-मिलन नहीं हो सकता। प्रकृति तथा पुरुष का संयोग होने पर, जीव तथा जगत् सृष्ट होता है। 84 लक्ष योनिभेदन के अनन्तर दुर्लभ मनुष्य-देह प्राप्त होता है। अन्य स्थावर-जंगम जीव निम्नतर अवस्था से उच्चतम (मनुष्य) अवस्थापर्यन्त प्रकृति की क्रमविकास धारा के अनुगमन से उत्थान करते हैं। प्रत्येक जीवदेह में चिद् अंश आत्मरूप से तथा अचिद् अंश देहरूप से विद्यमान रहता है। क्रमविकास मार्ग में देह-विकास के साथ-साथ भोक्तारूपी आत्मा का भी विकास संघटित होता है। उपनिषद् इस विकास को अन्नमय कोष से प्राणमय कोष का विकास कहते हैं। प्रत्येक कोष में असंख्य जटिलता परिस्फुट होती है। प्राण का विकास पूर्ण होने पर मन का विकास होना आवश्यक है। प्राणमय कोष के विकास का फल यह है कि मन का पूर्वाभास स्फुरित हो जाता है, तथापि यथार्थ मनोमय कोष का विकास 84 लक्ष योनि भेदन करने पर ही सम्पादित होता है। जिस देह में मनोमय कोष का विकास हुआ है, वही है मनुष्य देह। 84 लक्ष योनि का भेदन करते-करते विभिन्न स्तरयुक्त अन्नमय तथा प्राणमय कोष का विकास सम्पन्न हो जाता है। समस्त जीवदेहों में मन विकसित नहीं है, अतः उनकी उन्नति का पथ उन्मुक्त नहीं होता। मनुष्य-देह प्राकृतिक क्रम-विकास का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

मनुष्य-देह का गौरव समस्त धर्मों में स्वीकृत है। साकार भगवद् आकृति भी मनुष्य के ही अनुरूप है। बृहदारण्यक उपनिषद् में आत्मा को पुरुषाकृति कहा गया है। मनोमय कोष से संश्लिष्ट षट्चक्रादि चक्र तथा केन्द्रसमूह मनुष्य-देह में ही यथार्थतः विकसित हैं। विवेक तथा विचारशक्ति में मनुष्य ही उत्कर्षशील है। यह शक्ति मनुष्य-देह में ही उत्कर्ष प्राप्त करती है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि मात्र मनुष्य-देह प्राप्त हो जाने से ही वह सर्वांगीण पूर्णता प्राप्त करेगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

प्राथमिक अवस्था में मनुष्य पशु से आकृति में श्रेष्ठ है, तथापि उसकी प्रकृति पशु के ही अनुरूप है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, प्रभृति पाशविक वृत्ति मनुष्य की प्राथमिक अवस्था में स्थित रहती है। क्रमशः इनका क्षय होते जाने से मनुष्य-भाव उदित हो जाता है। पाशविक अवस्था में मनुष्य में नैतिक आदर्श नहीं रहते। यद्यपि नैतिक उत्कर्ष का बीज मनुष्य में विद्यमान है, तथापि उसका विकास होना काल एवं साधना के अधीन रहता है। अतः प्राथमिक अवस्था के मनुष्य के जीवन का प्रधान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्य होना चाहिये नैतिक जीवन की उन्नति। योगशास्त्र में ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, प्रभृति यम समूह नैतिक जीवन के द्योतक हैं। यह सार्वभौम धर्म है। सभी वर्ण तथा सभी आश्रम के लिए यह समानरूप से अनुष्ठेय है। इसी नैतिक नियमों पर ही धर्म जीवन का प्राचीर खड़ा है। बौद्ध विद्वान् शील, समाधि तथा प्रज्ञारूपी साधनजीवन का निर्देश देते हैं। पंचशील अथवा दशशील का अभ्यास करना साधनजीवन का मूल स्तम्भ है। इसमें देशगत अथवा कालगत कोई भी भेंद नहीं है। यही सार्वभौम धर्म है। ज्ञानगंज इसका समर्थन करता है।

प्रत्येक वर्ण तथा आश्रम का यही अन्तरंग साधन है। इसी प्रसंग में योग्य अधिकारी के लिए निष्काम कर्म की भी व्यवस्था है। गीता में निष्काम कर्म का भूरिशः वर्णन किया है। निष्काम कर्म से व्यक्तिगत कल्याण होने के साथ-साथ सामाजिक कल्याण भी होता है। फलाकांक्षा छोड़ते हुए, शुद्धभाव से कर्मानुष्ठान करने से कर्म का बन्धन टूट जाता है और चित्त निर्मल होकर प्रकाशित हो जाता है। इस अवस्था में आत्मा तथा आत्मेतर का निगूढ़ भेद क्रमशः शिथिल होता जाता है और कर्तृत्वाभिमान की कोई भी सत्ता नहीं रहती। जिन ग्रन्थियों से जीव आबद्ध है उनमें अहंकार ग्रन्थि प्रधान है। प्रकृति के गुण से कर्म सम्पन्न होता है, यह न मानने वाला व्यक्ति कर्त्तृव्य के अहंकार से व्यस्त होकर यह मानता है कि सभी क्रिया वह स्वयं कर रहा है। मनुष्य क्रिया अभिमान के अधीन है। जब तक इस अभिमान की निवृत्ति नहीं हो जाती, तब तक वह स्वयं को कर्त्ता मानने के लिए बाध्य है।

निष्काम कर्म अनुष्ठान काल में साधक में कर्त्तृत्वाभिमान रहता है, अतः वह कर्म करता है। निष्काम को फल की आकांक्षा नहीं रहती। उसकी ग्रन्थि उच्छिन्न है, चित्त निर्मल है। जब अभिमान (देहाभिमान) अत्यल्प रह जाता है, तब श्रीगुरु शिष्य को आश्वासन देते हैं। अर्थात् देहाभिमान गलित हो जाने से, जब वह स्वयं की देहातिरिक्त उपलब्धि करता है, तब श्रीभगवान् अन्तर्गुरु के रूप में शिष्य को स्नेहस्पर्शरूपी आश्वासन देते हैं। अब जीव समस्त कर्मानुष्ठान से विरत होकर श्रीभगवान् के निर्देशानुसार एकमात्र उनके ही ऊपर निर्भर हो जाता है। भगवत्-आदेश का तात्पर्यार्थ यह है कि जो जीव अन्य किसी भी ओर लक्ष्य न रखकर एकमात्र उन्हें ही सर्वमूल जानकर विश्वास-स्थापना करता है और उनकी शरण लेता है, उस जीव को श्रीभगवान् समस्त पापभार से मुक्त कर देते हैं।

श्रीभगवान् का आश्रय प्राप्त होने पर जीव के चित्त में शुद्धि का संचार होता है। अब उसे कर्म प्रक्रिया की कोई भी आवश्यकता नहीं रह जाती। वे स्वयं जीव को पापों से मुक्त कर देते हैं। इसे एकायन मार्ग कहा गया है। ज्ञानगंज के अनुसार इससे षडध्व शुद्ध हो जाता है। अब उस जीव का योगक्षेम श्रीभगवान् ही वहन करते हैं। जीव साक्षीरूप से अथवा द्रष्टा रूप से उनका आश्रय लेकर उनकी समस्त लीला का दर्शन करता रहता है। अब जीव द्रष्टा है और भगवान् कर्त्ता हैं। इस स्थिति में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीव का कोई भी पृथक् कर्त्तव्य नहीं रह जाता। भगवान् स्वयं ही अनुगत जीव के समस्त दायित्व का वहन कर लेते हैं। यही प्रकृत अध्यात्म जीवन अथवा 'Spiritual life' है। इसे नैतिक जीवन (Moral Life) से अत्युन्नत अवस्था कहते हैं। इस स्थिति में भगवान् की शक्ति साधक में अबाध रूप से क्रिया करती रहती है।

यही है कृपाशक्ति! इसे भगवत् शक्ति भी कहा गया है। यह जीव को शोधित करके निजस्व करती है। इस अवस्था में जीव की समस्त मलिनता दूर हो जाती है और उसका विशुद्ध चिन्मय स्वरूप उन्मुक्त हो उठता है। इस परिवर्तन के कारण जीव का देह, मन, प्राण तथा बुद्धि भी संस्कृत हो जाती है। उसके अस्तित्व में आमूल परिवर्तन होने लगता है। केवल मात्र देहादिक ही नहीं परन्तु उसकी अहंकारादि महत्तत्त्वमयी सत्ता भी चिन्मय रूप में आत्मप्रकाश करने लगती है। इस प्रकार से जीवदेह से लेकर अहं सत्तापर्यन्त समस्त उपकरण अचित् भाव से मुक्त होकर चिन्मयत्व से ओतप्रोत हो जाते हैं। तदनन्तर चिन्मय आकार सम्पन्न जीव, अब प्राक्कालीन बद्धजीव नहीं रह पाता। इस अवस्था की प्राप्ति के पश्चात् जीव का प्राकृत शरीर दिव्य शरीररूप में परिणाम प्राप्त करता है। यह परिस्थिति जीव के अमृतत्व लाभ का पूर्वाभास है। कुण्डलिनीरूपा तन्द्राच्छन्न चित्शक्ति तन्द्रा से मुक्त होकर साक्षात् चिदानन्दमयी हो जाती है।

नैतिक जीवन के अनन्तर आध्यात्मिक जीवन का यही रहस्य है। आध्यात्मिक जीवन प्राप्त हो गया तथा भगवान् का अनुग्रह अनुक्षण्ण प्राप्त है, इस अवस्था में दिव्यजीवन का सूत्रपात हो जाता है। इस स्थिति में प्रकृति की क्रिया नहीं रह जाती। माया का प्रभाव भी नहीं रहता। एक चिन्मय लोकोत्तर सत्ता ही अवस्थान करती है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि आध्यात्मिक उन्नति के क्षेत्र में सर्वाधिक बाधा है कर्त्तृत्वाभिमान। यह अभिमान विगलित हो जाने पर कुण्डलिनीरूपा महाशक्ति अनादि सुषुप्ति से जाग्रत् हो जाती है और क्रमशः उद्‌बुद्ध होकर सहस्रार की ओर अग्रसर होने लगती है। वहाँ अमृत बिन्दु विगलित होकर दैहिक तथा मानसिक उपादान को परिशुद्ध कर देता है। इसकी परिणति है परा भगवती शक्ति का उन्मेष। अध्यात्म जीवन का यही मुख्य क्रमत्रय कहा गया है। इस प्रकार नैतिक जीवन से अध्यात्म जीवन की ओर प्रगति होती है। अध्यात्म जीवन से दिव्यजीवन की ओर विकास होता है। किंबहुना नैतिक जीवन से अध्यात्म जीवन का उत्कर्ष तथा अध्यात्म जीवन से दिव्यजीवन की श्रेष्ठता स्वभावतः सिद्ध है। नैतिक जीवन में कर्त्ता जीव स्वयं को कर्त्ता मान लेता है। अध्यात्म जीवन में अहंकार के निर्मल हो जाने के कारण देहाभिमान स्पष्टभाव से स्फुरित नहीं होता। परिणामस्वरूप चिद्अभिमान जाग्रत् हो जाता है। यह शुद्ध अभिमान है। इसके अनन्तर अध्यात्म जीवन से दिव्यजीवन के रूप में रूपान्तरण घटित हो जाता है। दिव्यजीवन की परिणति है पूर्ण अहंभाव का सम्यक् विकास।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

84 लक्ष योनियों में अहंभाव से विकास के उपयोगी उपादन का संग्रह सूक्ष्मरूप से क्रमशः होता है। तदनन्तर मनोमय कोष के विकास के साथ मनुष्य-देह प्राप्ति के फल से प्रकृत अध्यात्म जीवन प्राप्ति की सूचना मिलती है। इसके पश्चात् अध्यात्म जीवन के रूपान्तरण की अभिव्यक्ति के साथ-साथ दिव्यजीवन प्रारम्भ होता है। दिव्यजीवन की पूर्ण परिणति है सोऽहं अथवा पूर्णाहं। इसके पश्चात् अवस्थान्तरण सम्भव ही नहीं है। यही है 'सा काष्ठा स परागतिः'। मनोमय कोष के पश्चात् विज्ञानमय कोष का विकास होते समय दिव्यजीवन का प्रारम्भ हो जाता है।

यहाँ जिस दिव्यजीवन की विवेचना की गयी है, वह सब व्यक्तिगत व्यष्टिगत उपलब्धि है। इस उपलब्धि से किसी एक आत्मा का (जो इस पथ पर चल रहा है उसी का) ही विकास होता है। समग्र जगत् इस उपलब्धि से वंचित रह जाता है। अतः अत्युच्च अवस्था होने पर भी इसका मूल्य कुछ भी नहीं है। दिव्यजीवन में उपनीत कतिपय आत्मायें इस तथ्य को जानकर ज्ञानगंज में अखण्ड महायोग के पथ पर संचरण करने में प्रयासरत हैं। यह भी सत्य है कि दिव्यजीवन में उपनीत हो जाने के पश्चात् उनके द्वारा अखण्ड महायोग का कर्म यथायथ रूप से निष्पन्न हो रहा है।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुमारीतत्त्व

महाशक्ति तथा कालशक्ति जगत् में क्रियाशील है। कालशक्ति महोग्रशक्ति है। इससे ही परिणामी धर्म का स्रोत प्रवाहित होता रहता है। जगत् में सबकुछ परिवर्त्तनशील परिणामी है, यह कालशक्तिजनित क्रिया है। काल ही सबकुछ का साधक एवं पाचक भी है। यह आवर्त्तनशील है। जगत् का सबकुछ काल के अधीन है, अत: आवर्त्तनात्मक अवस्था सर्वत्र परिलक्षित होती रहती है। उपासना का अर्थ है काल का अतिक्रमण तथा परिणामीभाव से मुक्ति!

कालजय के लिए शाक्त मतोक्त उपासना का प्रचलन अधिक है। इस सन्दर्भ में पंचदशी, षोडशी तथा सप्तदशी महाशक्ति का ज्ञान आवश्यक प्रतीत होता है। काल की आवर्त्तनात्मक गति की दो दिशायें हैं। यथा आकुंचन एवं प्रसारण। प्रथम है सम्मुखीन गति, द्वितीय है पश्चात् गति। अर्थात् एक है नि:श्वास तथा अपर है प्रश्वास। इसका प्रवाह जीवनपर्यन्त चलता रहता है। चक्षु का उन्मीलन एवं निमिलन। यह भी जीवनपर्यन्त की क्रिया है। वह प्रगति कालजनित प्रगति है। इसका अन्त नहीं है। इसका सोपान परम्परा-क्रम से अनुशीलन करने पर (गुरुप्रदत्त कौशल द्वारा) ऊर्ध्वगति प्राप्त होती है। ज्ञानगंज में इसी श्वास-प्रश्वास के आलम्बन द्वारा कालगत आवर्त्तन में ही स्थितिबिन्दु प्राप्त कराया जाता है। इससे इसी जड़ावस्था में चैतन्य प्रकाशित हो उठता है। इस अवस्था में कालातीत अमृतसत्ता में स्थिति होती है। इसे षोड़शी विद्या कहते हैं। यह आत्मा की ही नित्यकला है। जो कालचक्र है, वही है पंचदशी।

षोडशी की प्राप्ति का अर्थ है कालराज्य से मुक्ति। अब शक्तिराज्य में प्रवेश हो जाता है। शक्तिराज्य में शक्ति के साथ शिव का नित्य सान्निध्य रहता है। इन्हें कामेश्वर-कामेश्वरी कहा गया है। ये महात्रिकोण के मध्यबिन्दु में विराजित रहते हैं। इनके चतुर्दिक् एक नित्यमण्डल परिक्रमण करता रहता है। यही है नित्या देवी स्वरूपिणी कालशक्तिरूपिणी पंचदशी। पंचदशी केवल नित्या हैं, परन्तु षोडशी नित्या होने पर भी साक्षात् जगदम्बा भी हैं। पंचदशी आवर्त्तनशीला हैं। इनमें कला का विकास होते-होते पूर्ण कला पूर्णिमा का विकास होता है। यही है शुक्लपक्ष। तदनन्तर 1-1 कला का ह्रास होते-होते अमावस्या की स्थिति आती है। अत: पंचदशी में कला की ह्रास-वृद्धि वर्त्तमान रहती है। वह बिन्दुरूपा है।

इस चक्र का मध्यबिन्दु है षोडशी। इसी मध्यबिन्दु का आश्रय लेकर पंचदशी कार्यरत है। यहाँ जिस बिन्दु की पंचदशीरूप में चर्चा की गयी है, उसकी वाम एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालचक्र

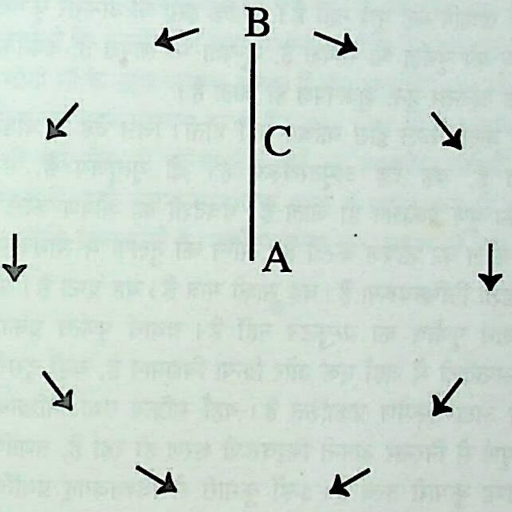

A = स्थिर बिन्दु (कूटस्थ)
B = कालबिन्दु (घूर्णनशील)
C = रज्जु

दक्षिणरूपी उभय गति है। यह आवर्त्तन अनादि तथा अनन्त है। यह आवर्त्तन जिस मध्यबिन्दु के चतुर्दिक् होता है, वह आवर्त्तनशील बिन्दु नहीं है, वह स्थिर स्थिति है। ज्ञानगंज के साधक वाम एवं दक्षिण आवर्त्तन को सम्पूर्ण करते हैं। इस कर्म को सम्पन्न करते ही मध्यबिन्दु आत्मप्रकाश करता है। यह मध्यबिन्दु ही कालचक्र की नाभि है। यही षोडशी हैं। अमृतस्वरूपा हैं। उक्ति है कि नाभि में अमृत रहता है। काल अग्नि है। अमृत सोम है।

आवर्त्तन का अर्थ है दो बिन्दुओं के साथ की एक संयोजन रेखा। एक रज्जु। इस रज्जु के एक ओर आवर्त्तनशील बिन्दु (पंचदशी) आवर्त्तन करता रहता है। दूसरी ओर है स्थिर बिन्दु अर्थात् कूटस्थ। तीसरी है, इन दोनों बिन्दु की संयोजन रज्जु। इन तीन को मिलाकर कालचक्र बन जाता है। घूमने वाला बिन्दु है कालबिन्दु। जीवमात्र इसी का आश्रय लेता है। अतः वह भी घूमता रहता है। स्थिर बिन्दु है कूटस्थ। यह वृत्त का मध्य बिन्दु है।

दिन-रात्रि, अहोरात्रचक्र, मासचक्र इसी प्रकार घूर्णन करता रहता है। यही काल की क्रीड़ा है। मध्यबिन्दु कालातीत है। समग्र विश्व के समान मानव-देह में भी ये दोनों बिन्दु कार्यरत रहते हैं। एक बिन्दु आवर्त्तनयुक्त है। दूसरा बिन्दु आवर्त्तन-शून्य है। आवर्त्तनयुक्त बिन्दु को देह कहा गया है। स्थिर बिन्दु ही आत्मा है। चल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिन्दु प्रकृति है। स्थिर बिन्दु पुरुष है। अतः काल में पूर्णता भी है। पूर्णिमा को पूर्ण कला कहते हैं, तथापि वह पूर्ण नहीं है। क्योकि इसी के अनन्तर कृष्णपक्ष होता है। अतः कालराज्य की पूर्णता भी सापेक्ष है, शून्यता भी सापेक्ष है, क्योंकि अमावस्या-रूपी शून्यता के अनन्तर पुनः शुक्लपक्ष हो जाता है।

षोडशी कला काल द्वारा बाधित नहीं होती। जिस देह में षोडशी कला का उपादान स्थित है, वह देह अमृतस्वरूप है। जो मृत्युंजय हैं, उनकी देह में षोडशीकला का पूर्ण प्रकाशन हो जाता है। पंचदशी का शोषण काल कर लेता है, परन्तु षोडशी काल का शोषण करती है। अग्नि की तुलना में सोमकला वर्धित होने लगती है। षोडशी निष्क्रियरूपा है। वह साक्षी मात्र है। वह द्रष्टा है। यहाँ निष्क्रियता के कारण यथार्थ पूर्णत्व का प्रस्फुटन नहीं है। यथार्थ पूर्णत्व प्रकाशित होता है सप्तदशी में। सप्तदशी में जहाँ एक ओर क्रिया विद्यमान है, वहीं दूसरी ओर अनन्त निष्क्रियता भी अखण्डरूपेण प्रकाशित है। यहाँ सक्रिय तथा निष्क्रिय का भेद ही नहीं है। इस पूर्ण से निरन्तर अनन्त विश्वरूपी क्षरण हो रहा है, तथापि वह पूर्ण ही है। यही अखण्ड कुमारी तत्त्व है। इन्हीं कुमारी से विश्वजगत् प्रवर्तित हो रहा है, तथापि उनका कुमारित्व यथावत् है।

अनन्त पथ के यात्री के लिए मध्याकर्षण से मुक्त होना आवश्यक है। यही अग्रगति का प्रतिबन्धक तत्त्व है। स्थूलमार्ग पर चलते समय स्थूल प्रतिबन्धक अवरोध रूप उपस्थित होते हैं। स्थूलपथ का अतिक्रमण करने के पश्चात् सूक्ष्मपथ पर पग संचार करते ही सूक्ष्म प्रतिबन्धक उपस्थित होने लगते हैं। ये सभी विघ्न एवं विक्षेप की सृष्टि करते हैं। इस स्थिति में ऐसे अकाट्य प्रतिबन्धक प्रकट होते हैं, जिनके छद्म वेश के कारण उन्हें प्रतिबन्धक रूप से पहचान सकना भी सम्भव नहीं होता। अतः कर्म की गति तीव्र रहने पर भी पथ निष्कण्टक नहीं रह जाता। पग-पग पर स्खलन की दृढ़तर सम्भावना हो जाती है। ज्ञानगंज के द्वारा प्रदर्शित उपाय का अवलम्बन लेकर इनसे त्राण प्राप्त होता है। यह उपाय है मातृसेवा। माँ जगदम्बा सृष्टि के मूल में शक्तिरूपिणी होकर विराजित रहती हैं। उनको सेवा द्वारा प्रसन्न करना चाहिये। उनके प्रसाद के प्रभाव से ज्ञात एवं अज्ञात, समस्त विघ्न दूरीभूत हो जाते हैं, इसलिए कर्मशक्ति की सहायता आवश्यक है। साधक गुरुदीक्षा द्वारा गुरुदत्त काया प्राप्त करता है। यह काया शक्तिस्वरूपा है। यही गुरुशक्ति है। जो शक्ति निरन्तर कर्मनिरत रहकर स्तरानुरूप आधार-रचना करती रहती है, जिसकी क्रिया से योगी का कर्म सम्पन्न होता है, उसे पुष्ट करना उसका मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिये। गुरुदत्त शक्ति ही मातृरूपा है। माँ मूलतः कुमारी हैं। इसी कारण देहधारिणी ब्राह्मण- कन्या का पूजन महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान माना जाता है। बाह्यमूर्ति की उपासना से जीवन्त शक्ति नहीं मिलती। जो प्रस्तर प्रतिमा योगी की शक्ति से प्राणप्रतिष्ठित, संजीवित है, उससे योगी शक्तिमान नहीं हो सकता। बाह्यमूर्ति को योगीगण प्राणप्रतिष्ठा के समय अपनी ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्ति से संजीवित करते हैं। अतः जीवित देहधारी कुमारी माँ की सेवा का विधान किया गया है। साकार मातृरूप कुमारी माँ की सेवा से देह पुष्ट होता है। स्थूलदेह की पुष्टि सेवा से होती है। इसमें तृप्ति तथा रस-संचार होता है। इस तृप्ति-रूप प्रसाद को प्राप्त करके योगी माँ के साथ अच्छेद्य बन्धन में बँध जाता है। अब माँ स्वयं (गुरुशक्ति रूप से) शिष्य का कार्यसम्पादन करती हैं। अतः सेवा-कार्य अत्यन्त आवश्यक है। अमरलोक भी इस सेवा से वंचित है। वहाँ पर स्थूलदेह-धारिणी कुमारी माँ का सर्वथाभाव रहता है। इसी कारण अमरलोक समूह में साधन करने से अत्यन्त दीर्घकाल में किंचित् अग्रगति प्राप्त होती है। वहाँ मातृसेवा का अवसर ही नहीं मिलता।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिद्धभूमि का रहस्य

जो भारत की आध्यात्मिक साधना से परिचित हैं, उन्हें विदित है कि साधना का चरम लक्ष्य है पूर्णत्व की प्राप्ति। यह भी दृष्टिभेदानुसार अनेक प्रकार से विवेचित होता है। कई साधक ज्ञान के पथ का अथवा योगपथ का अवलम्बन लेकर अग्रसर होते हैं। जीवनमुक्ति प्राप्त करना ही उनका लक्ष्य रहता है। देहान्त के अनन्तर चरम लक्ष्य है परामुक्ति। परामुक्ति भी साधक की दृष्टि में विभिन्न प्रकार से प्रतिभात होती रहती है। किसी के अनुसार साधना की पूर्णता के अनन्तर सिद्धावस्था की प्राप्ति ही जीव का प्रकृत लक्ष्य है। इसी कारण हमारे देश में आबाल-वृद्ध-वनिता सिद्ध महापुरुष के ऊपर स्वाभाविक श्रद्धा करते रहते हैं। प्राचीन काल के 84 सिद्धों का वर्णन मिलता है। यह एक समय विशेष की बात है। इसके अतिरिक्त भी यह सुविदित है कि अनेक काल में अनेक स्थान पर अनेक सिद्धपुरुष आविर्भूत होते रहते हैं। इनका आविर्भाव भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में होता रहता है। ये अतिशय शक्तिशाली महापुरुष हैं। इनके द्वारा जड़ जगत् तथा चिन्मय जगत् के मध्य में, अन्तराल में एक सेतु अथवा संयोजन का सुयोग प्राप्त होता है।

इस समय मैं सिद्धपुरुषों के सन्दर्भ में कुछ न लिखकर सिद्धभूमि के सम्बन्ध में कुछ वर्णन करना उचित समझता हूँ। सिद्ध की बातें तो सभी जानते हैं, परन्तु सिद्धभूमि शब्द उतना सुपरिचित नहीं है। इस सम्बन्ध में यह शंका हो सकती है कि सिद्ध तो हो सकते हैं, भूमि कैसे सिद्ध होती है? इस प्रश्न की मीमांसा के पूर्व यह वर्णन करना आवश्यक है कि सिद्ध होने से क्या परिलक्षित होता है? दुःख का विषय है कि इस प्रसंग के प्रति यथार्थ धारणा अत्यल्प व्यक्तियों में जागृत हो सकी है। अतः सिद्धप्रसंग के पूर्व सिद्धभूमि के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है।

आत्मा तथा देह, इन शब्दद्वय से हम सभी सुपरिचित हैं। हम जानते हैं कि आत्मा चैतन्यस्वरूप, नित्य, विभु तथा शुद्ध है, परन्तु देह मायिक, अनित्य एवं परिवर्तनशील है। वह विकारग्रस्त तथा मलिन भी है। देह को साधारणतः पांचभौतिक उपादान निर्मित पिण्ड विशेष कहते हैं। यहाँ स्थूल देह के अतिरिक्त सूक्ष्म देह भी अवस्थित है। यह स्थूलदेह से पृथक् होने पर भी शुद्ध तथा नित्य नहीं है। स्थूलदेह के अतिरिक्त शास्त्रों में कारणदेह का भी उल्लेख प्राप्त होता है। कारणदेह की तुलना में सूक्ष्म तथा स्थूलदेह उसके कार्य हैं। अनेक विद्वान् सूक्ष्मदेह को सप्तदश अवयव सम्पन्न लिंगशरीर के रूप में स्वीकार करते हैं। किसी के मत से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह प्राणमय, मनोमय तथा विज्ञानमय कोषों का मिलित अस्तित्व है। केवल दृष्टिभेद से यह पृथकत्व अनुभूत होता है। मृत्यु के अनन्तर साधारणतः लोग स्थूलदेह का त्याग करके सूक्ष्म या लिंगदेह में कर्मानुरूप संचरण करते हैं। इसी संचरण के समय वे फल भोग के लिए किसी विशिष्ट लोक अथवा स्थान में अवस्थान भी करते हैं। तदनन्तर अवशिष्ट कर्मफल का भोग मानव-देह में करने के लिए विवश हो जाते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मदेह के साथ कारणदेह का भी सम्बन्ध रहता है। सामान्यतः जैसे स्थूलदेह की पृष्ठभूमि में सूक्ष्मदेह की सत्ता है, उसी प्रकार सूक्ष्मदेह की पृष्ठभूमि में कारणदेह अवस्थित रहकर सूक्ष्मदेह को कार्यक्षम बनाता है। उपयुक्त अवसर आने पर सूक्ष्मदेह से भी कारणदेह पृथक् हो जाता है। तदनन्तर यह कारणदेह अवस्थानुसार पुनः सूक्ष्म के साथ युक्त होता है, अथवा बिना युक्त हुए रह जाता है। अवस्थागत वैचित्र्य अनन्तात्मक है। इस वैचित्र्य को भी मायिक ही कहा जाता है।

विज्ञजनों का यह भी कथन है कि कारणदेह के अनन्तर देह की सत्ता ही नहीं रह जाती! यद्यपि यह सत्य ही है, तथापि कारणदेह के अनन्तर भी महाकारण देह विद्यमान रहता है। ये चारों देह जड़देह ही हैं। पार्थक्य इतना ही है कि स्थूल, सूक्ष्म तथा कारणदेह अशुद्ध त्रिगुणात्मक है। महाकारण देह जड़ होने पर भी अशुद्ध नहीं है। वह विशुद्ध सत्तात्मक है। उसमें रजोगुण तथा तमः का संस्पर्शमात्र भी नहीं रहता।

यह सुनकर आश्चर्य होगा कि अनेक अग्रगामी योगीगण यह अनुभव करते हैं कि महाकारण देह भी दैहिक सत्ता का अन्त नहीं है। महाकारण देह के पश्चात् साकार सत्ता नहीं रह जाती। चिन्मय देह अचित् स्पर्श से रहित है। वह एक प्रकार से महाकारण देह से परवर्ती है, तब भी साधारण योगी चिन्मय देहपर्यन्त अग्रसर नहीं हो सकते। चित् किस प्रकार से देहरूप में प्रतिभासमान है, अथवा देह को किस प्रकार से चिन्मयत्व प्राप्त होता है, यह तो योगसाधना का अत्यन्त गम्भीर रहस्य है।

सन्तों का कथन है कि यद्यपि यह चिन्मय देह कैवल्यात्मक है, तथापि इसकी एक परावस्था भी है। यह परावस्था ही हंसावस्था है। (इस शब्द सम्प्रदायविशेष की परिभाषा है) इस उक्ति का तात्पर्य यह है कि पूर्ण सत्य को तत्त्वरूपेण विभक्त करने पर तत्त्व एवं तत्त्वातीतरूपी दो अवस्थाओं का ज्ञान होता है। तत्त्व के अन्तर्गत चित् एवं अचित्, उभय सत्ता का समावेश होता है। अतः जिस प्रकार से चिन्मय देह तात्त्विक देह है, उसी प्रकार जड़देह भी तात्त्विक देह ही है। जड़देह भी शुद्ध तथा अशुद्ध रूप से दो प्रकार का है। शुद्ध जड़देह को कारणदेह कहते हैं। अशुद्ध जड़देह कारण एवं कार्यभेद से द्विविध है। कार्यदेह सूक्ष्म तथा स्थूलभेद से द्विविध कहा गया है।

पूर्वोक्त विश्लेषण से यह ज्ञात हो जाता है कि पूर्ववर्णित चिन्मय देहपर्यन्त सभी देह तात्त्विक देह हैं। जिस देह में शुद्ध तथा अशुद्ध तत्त्व का तादात्म्य सिद्ध होता है, अथच जो तत्त्वातीत आत्मस्वरूप के साथ अभिन्न है, उसे हंसदेह (हंसस्वरूप) कहा जाता है। इसमें सबकुछ है। शुद्ध है, अचित् है, चित् है। सभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्त्व है, अथच यह तत्त्वातीत भी है। यह देह होने पर भी आत्मा ही है और आत्मा होने पर भी देह ही है। अर्थात् तत्त्वरूपेण यह देह है और तत्त्वातीत रूप से यह आत्मा है। इस अवस्था की प्राप्ति का नाम है देह साधना।

इस लेख में जो अलोचित हो चुका है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक प्रकार से कैवल्यावस्था को भी देहरूप से परिगणित किया गया है। अतः कैवल्यस्थिति स्थूल-सूक्ष्मादि से मुक्त अवस्था का नाम है। दृष्टिभंगी की भिन्नता से कैवल्यस्थिति को ही कैवल्यदेह भी कहा जा सकता है। किसी-किसी वैष्णव सम्प्रदाय में स्वरूपदेह का भी वर्णन प्राप्त होता है। यह भी सत्य है। इस दृष्टि से जैसे स्वरूप को सच्चिदानन्द रूप में प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार स्वरूपदेह रूप में भी उसे ही प्राप्त किया जाता है।

योगसाधना-पथ में वैचित्र्य भरा है। इस वैचित्र्य में ऐक्य का आविष्कार (पूर्णता हेतु) आवश्यक है। आविष्कार शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया, क्योंकि ऐक्य का कोई नव-निर्माण नहीं करना है। यह ऐक्य अनादि काल से विद्यमान रहता है। यह आवरण के द्वारा आच्छन्न है। आवरित है, अतः प्रकाशित नहीं है। जब क्रमशः सब आवरण समाप्त हो जाते हैं, तभी अखण्ड अनावृत्त परमसत्ता आत्मप्रकाश करती है। अब वैचित्र्य की प्रतीति नहीं रह जाती। आवरण के अन्तराल में स्थित अद्वैतसत्ता महाप्रकाश रूप से आवरण उन्मोचन के द्वारा स्फुरित होने लगती है। इस स्थिति में वैचित्र्य की प्रतीति नहीं रह जाती। यह महाप्रकाश ज्ञाननेत्र के रूप में महायोगी के सम्मुख आविर्भूत होता है। अब यही योगी को पूर्णत्वपथ पर अग्रसर करने में सहायक हो जाता है। अन्तकाल में (इसी के द्वारा) पूर्णत्व की प्रतिष्ठापना होती है। पूर्णत्व का अर्थ प्रकाश की प्राप्ति ही नहीं है, इसका तात्पर्य है कि प्रकाश के अतिरिक्त अन्य कुछ भी स्वरूप नहीं है। पूर्णत्व का तात्पर्य है कि प्रकाश एवं उसके द्वारा प्रकाशित जो कुछ भी है, उन सबका ऐक्य! प्रकाश एवं प्रकाशक के मध्य शाश्वत अभेद है। प्रकाशमान समग्र विश्व भी पूर्ण सत्ता के ही अन्तर्गत है। पूर्ण की भी पूर्ण, अर्थात् परिपूर्ण सत्ता का तात्पर्य है अभेदत्व, भेदाभेद, एवं भेद की सभी स्थिति का सामरस्य। देश-काल आदि इसी के अन्तर्गत हैं। यह है परिपूर्ण सिद्धावस्था। अखण्ड सत्ता।

अब सिद्धपुरुष प्रसंग के उपरान्त सिद्धभूमि पर्यालोचना का अवतरण किया जाता है। जैसे सिद्धपुरुष चित्, अचित्, कार्य, कारण, शुद्ध-अशुद्ध, सभी अवस्थाओं में, स्थूल-कारण आदि देहों में अव्याहत स्थित रह सकते हैं, तथापि अपनी विशिष्टता का संरक्षण भी कर लेते हैं, इसी प्रकार का नियम सिद्धभूमि के साथ भी कार्यरत है। देहसिद्धि के पश्चात् भूमिसिद्धि की आवश्यकता नहीं होती। देह की सिद्धि के साथ-साथ भूमि भी स्वयमेव सिद्ध हो जाती है। जैसे देह स्थूलाभिमानी को स्थूलरूप से प्रतीत होता है, उसी प्रकार भूमि भी उसे उसी प्रकार से प्रतीयमान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती रहती है। जिसे अपना देह स्थूल प्रतीत होता है (अर्थात् जो स्थूलाभिमानी है) उसे यह जगत् स्थूलसत्तात्मक ही प्रतिभात होता है। जब पुरुष सूक्ष्मदेह की सत्ता का साक्षात् कर लेता है, तब उसे समस्त जगत् सूक्ष्मसत्तात्मक प्रतिभात होने लगता है। इसी प्रकार जब पुरुष चिद्रूप में अवस्थित हो जाता है, उसमें स्थूल-सूक्ष्म आदि अचिद्भाव नहीं रह जाता, तब उसकी दृष्टि में जगत् भी चिद्रूपेण विवेचित होने लगता है। यह योगीगण का स्वानुभूत सत्य है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि मूल द्रष्टा को एक अवस्था से अवस्थानन्तर में संचरण करना ही होगा। इसके अभाव में उसकी दृष्टि के अनुरूप दृश्य जगत् की उपलब्धि नहीं हो सकती। यह समस्त अवस्था समूह पारस्परिक रूप से विच्छिन्न है। अतः एक अवस्था के साथ अन्य अवस्था का ऐक्य एवं योगसूत्र नहीं रह जाता। इसलिए महायोगी का लक्ष्य है ऐक्यसूत्र तथा योगसूत्र का आविष्कार करना। इस परम ऐक्यसूत्र का अनुसन्धान होने और उसमें स्थितिलाभ हो जाने पर तदनुरूप भाव में समग्र विश्व अभिन्नरूपेण आत्मप्रकाश करने लगता है। इसी अभिन्न सत्ता में प्रत्येक भूमि की पृथक् सत्ता विलीन रहती है। इसके प्रभाव से योगीगण जब भी जिस भूमि में दृष्टि-निःक्षेप करते हैं, तब वह भूमि दृश्यसत्ता के रूप में आत्मप्रकाशन करने लगती है।

ऐसे योगी को किसी भी भूमि में अवतरण नहीं करना पड़ता और न तो किसी भूमि में आरोहण ही करना पड़ता है। वह आरोहण एवं अवतरण से निर्मुक्त द्रष्टा के समान सदा प्रतिभात होता रहता है। उसकी दृश्यभूमि भी आरोहण तथा अवतरण से पृथक् ही रहती है। यह साधारण सत्य स्मृति में रहना आवश्यक है। अन्यथा सिद्धभूमि का रहस्य अज्ञात ही रह जाता है।

सिद्धभूमि तत्त्व को सम्यक् रीति से जानने के लिए एक विशेष लक्ष्य रखना आवश्यक है। यह है सृष्टि का रहस्य। हम साधारण दृष्टि के अनुसार सोचते हैं कि बाह्य जगत् मूलतः ज्ञान की बहिर्दिशा में अवस्थित है। इन्द्रियादि करण वर्ग के द्वारा इसका सर्वत्र संस्त्रव संघटित होने पर उसकी सत्ता दृग्गोचर होने लगती है। अब हमारा ज्ञान उक्त जगत् के आकार में अपरंजित होता है, अथवा उक्त आकार को धारण करता है। ज्ञान की निम्नभूमि में यह अत्यन्त सत्य है। अर्थात् ज्ञान से ज्ञेय पूर्णतः पृथक् है। योगपथ पर अग्रसर योगी के लिए ज्ञान से ज्ञेय कदापि पृथक् नहीं रहता। ज्ञान का ही आकार ज्ञान से पृथक् ज्ञेयरूप में (सामान्य व्यक्ति के सम्मुख) प्रकट होता रहता है। ज्ञान तथा ज्ञेय में ज्ञान सापेक्ष नहीं है, ज्ञेय ही सापेक्ष है। इसके अनन्तर और अग्रसर होने पर यह अनुभव होता है कि जैसे ज्ञान से ज्ञेय पृथक् नहीं है, उसी प्रकार ज्ञाता से भी ज्ञेय अलग नहीं है। जैसे प्रदीप से आलोकरश्मि निर्गत होती है, उसी प्रकार ज्ञाता से ज्ञानरूपी आलोकमाला विकीर्ण होती रहती है।

ज्ञेय अन्तर्मुख अवस्था में लीन हो जाता है। और भी अन्तर्मुखीन अवस्था में ज्ञान भी ज्ञाता में विलीन हो जाता है। यह ज्ञाता सृष्टि के मूल में बीजरूपेण रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह भी जब ज्ञातृत्व धर्म से मुक्त होकर शुद्धावस्था में विद्यमान रहता है, तब इसी अवस्था को शाक्तगण तुरीयावस्था कहते हैं। यह है त्रिपुटीरहित विशुद्धविज्ञान की अवस्था। जो द्रष्टा की दृष्टि है और उसके अन्तर्गत जो दृश्य है, वही भोक्ता जीव को बाह्य सृष्टि के समान प्रतीत होता है। अतः मायिक प्रमाता को वह बाह्यसृष्टि रूप में अथवा भूमिरूप में प्रतीत होता है। इसी कारण ज्ञानगंज सामान्य व्यक्ति को किसी भूमि (भूखण्ड) के रूप में प्रतीत होता है। हमारा ब्रह्माण्ड हिरण्यगर्भ के वैराज्य अभिमान से अधिष्ठित है, उसी प्रकार सिद्धयोगी ऋषिगण अपने-अपने अहंभाव (अर्थात् जिस स्थिति तक वे पहुँच सके हैं, उस स्थिति के ही अनुरूप) के कारण अपनी दृष्टि के सम्मुख भिन्न-भिन्न भूमि अथवा स्तर का प्रकाशन करते हैं।

जो व्यक्ति जिस सिद्ध के अभिमान से युक्त है, अथवा उसका आश्रित है, उसके लिए वह भूमि अथवा क्षेत्र दृक्गोचर किंवा व्यवहार योग्य प्रतीत होने लगता है। वह भूमि अथवा क्षेत्र सबके लिए दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। यही नियम ज्ञानगंज के लिए भी समझना चाहिए। इसी कारण ज्ञानगंज भौगोलिक दृष्टि से सबके लिए प्राप्य, दृष्टिगोचर अथवा उपलब्ध नहीं है। जैसे हिरण्यगर्भ के अभिमान का प्रसाररूप ब्रह्माण्ड उनके प्रजावर्ग को बाह्य अथवा सत्यरूपेण प्रतीत होता है, उसी प्रकार समस्त सिद्धभूमि समूह, ऋषि की दृष्टि तथा अभिमान से आविर्भूत भूमि, उनसे संस्पर्शयुक्त व्यक्ति को बाह्य एवं सत्यरूप से अनुभूत होने लगती है। अन्यथा समस्त ब्रह्माण्ड के अणुसमूह का सन्धान करने पर भी उनकी उपलब्धि नहीं हो सकती। यद्यपि सिद्धभूमि अथवा ज्ञानगंज इस पृथ्वी की ही तरह व्यवहार योग्य एवं सत्य है, तथापि उसका भौगोलिक सन्धान (Geographical Location) नहीं मिल सकता। बौद्धों ने जिन बुद्ध-क्षेत्रों की वर्णना का अंकन किया है, वे सभी इसी प्रकार की सिद्धभूमि हैं।

सिद्धभूमि की आलोचना से यह प्रकट हो जाता है कि सिद्ध आत्मसमूह की इच्छानुसार तदनुरूप सिद्धभूमियों का आविर्भाव होता है। प्रत्येक सिद्ध आत्मा से इसी प्रकार की भूमि का आविर्भाव होता है, यह नहीं कहा जा सकता। इसके मूल में उन सिद्ध आत्मा की भूमिसृष्टि विषयक इच्छा तथा इस इच्छा के मूल में किसी प्रकार की शुद्ध वासना का होना अत्यावश्यक है। यह शुद्ध वासना है, अतः यह अशुद्ध मायिक वासना से पूर्णतः पृथक् है। अशुद्ध माया में भेद रहता है, तदनुसार उभय क्षेत्र में वासनागत भेद की भी सत्ता विद्यमान रहती है। अशुद्ध मायाजनित वासना के मूल में जो कुछ परिलक्षित होता है, वह व्यक्तिगत अथवा व्यष्टिगत भोगाकांक्षा है अथवा व्यक्तिगत मुक्ति की आकांक्षा है। इस क्षेत्र में (अशुद्ध माया क्षेत्र में) अहंता एवं ममता भी सीमित ही है। जब यह व्यक्तिगत सीमा लंघित हो जाती है और एक व्यापक सीमा का आविर्भाव होता है, तब यह व्यापक सीमा भी पूर्वोक्त परिच्छिन्न सीमा के समान स्थिति का आविर्भाव करती है। पूर्ववर्ती अहंता ममताजनित स्वार्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के समान एक बृहत्तर स्वार्थ का उदय होता है, जिसे परार्थ कहते हैं। बृहत्तर स्वार्थ (परार्थ) की तुलना में एक और व्यापक अवस्था है। इसका भी एक नियामक केन्द्र है। जो इस प्रकार के शुद्ध क्षेत्र का सर्वापेक्षा व्यापक रूप है, वह सिद्धभूमि का सर्वोत्कृष्ट स्तर है। यह सिद्धभूमि खण्ड कालराज्य से अतीत है, तथापि महाकाल से अतीत नहीं है। अतः श्रेष्ठतम सिद्धभूमि के भी आविर्भाव-तिरोभाव को स्वीकार करना ही पड़ता है।

प्रत्येक सिद्धभूमि भी देश तथा कालमान से पृथक्-पृथक् अवस्थान करती है। यह सब भूमि महाकाल के अन्तर्गत है और खण्डकाल की क्रिया से मुक्त है। इन सब भूमियों में आविर्भाव, तिरोभाव के साथ-साथ स्थितिमत्ता भी है। अर्थात् इनका आविर्भाव तथा तिरोभाव होता है और मध्य में स्थितिकाल भी रहता है। इस स्थितिकाल में अवान्तर स्थूल कालक्रम अनुभूत ही नहीं होता। सूक्ष्म क्षणिकक्रम अवश्य रहता है। यदि यह क्षणिक क्रम नहीं रहता, उस स्थिति में स्थितिकाल के अनन्तर तिरोधान ही नहीं रहता। अतः यह ज्ञात रखना चाहिये कि बाह्यदृष्टि के अनुसार इनकी स्थिति एक ही प्रकार की रहती है। इसी कारण इन भूमियों में बाल्य, यौवन, प्रौढ़, वृद्ध आदि का भेद परिलक्षित नहीं होता। इसी कारण इन भूमियों में देह भी जरा आदि से रहित हो जाता है। यहाँ मृत्यु नहीं है, परन्तु तिरोधान है। इनमें संकोच एवं विकास की क्रिया निरन्तर चलती रहती है। यहाँ जो आत्मा जिस देह का आश्रय लेकर स्थित है, वह देह लाखों वर्ष (अर्थात् उस भूमि के स्थितिकाल-पर्यन्त) एक ही प्रकार से रहता है। उसमें विकृति नहीं हो सकती। जो सिद्धिप्राप्त हैं और जिन्हें आधिकारिक अवस्था प्राप्त है, वे इन सब सिद्धभूमियों के अधिष्ठाता हो जाते हैं। जिनमें अधिकार वासना नहीं है, उनका सिद्धभूमि में रहना अथवा न रहना समान है। वे सिद्धभूमि से भी ऊर्ध्व में अवस्थित रह सकते हैं।

ज्ञानगंज की साधन धारा में जिसे आसनकर्म कहा जाता है, उस कर्म के फल से इस प्रकार की सिद्धभूमि की प्राप्ति हो जाती है। वहाँ तक गति भी हो जाती है। तदनन्तर स्वकर्मजनित उत्कर्ष के कारण स्वस्थिति में उन्नीत होते हैं। जो आसन-कर्म से युक्त नहीं है, उसके लिए इस प्रकार की सिद्धभूमि में प्रवेश कर सकना भी असम्भव है। प्राचीन काल में बौद्धगण इस रहस्य से अवगत थे। अतः वे भूमि प्रविष्ट प्रज्ञा को (समाधिजनित प्रज्ञा की तुलना में) श्रेष्ठ मानते थे। उस समय के हीनयान मत से महायान मत की उन्नति का यही कारण था।

विश्व रचयिता के विधान से इस प्रकार की सिद्धभूमियों की सर्वत्र व्यवस्था है। इनकी स्थिति न रहने पर कालराज्य से मुक्त करके आश्रयदान करने तथा कर्मपथ से पूर्णत्व की ओर अग्रसर करने का सुयोग कैसे मिलता? कहीं-कहीं इन्हें दिव्यभूमि भी कहते हैं। यह मायाधीन जगत् में भी है और मायातीत महामाया की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमि में भी विद्यमान रहती है। इनके अधिष्ठातृगण पृथक् होते हैं। इस पृथक्भाव के ऊपर उनका अधिकारक्षेत्र तथा स्थिति निर्धारित है।

जो सिद्धभूमि के अधिष्ठाता होते हैं, उनकी दृष्टि साधारणत: बहिर्मुख एवं अन्तर्मुख (उभयमुखी) होती है। अथवा केवल बहिर्मुखी भी हो सकती है, तथापि केवल अन्तर्मुख नहीं हो सकती। केवल अन्तर्मुखावस्था में वह भूमि किसके आश्रय से प्रकाशित होगी? अतएव उनकी दृष्टि बहिर्मुख होनी चाहिये, किंवा किंचित् अन्तर्मुख एवं शेष बहिर्मुख हो। जैसे मानव-देह में आज्ञाचक्र का जो स्थान है, वही विश्व-रचना में सिद्धभूमि का स्थान है। आज्ञाचक्र विमल है तथा बिन्दु स्थान में अवस्थित है। जैसे वह एक ओर अध:प्रदेश में सक्रिय है, उसी तरह सहस्रदल की ओर भी क्रियाशील रहता है। जैसे दिवा एवं रात्रि की अन्तरालवर्त्ती सन्ध्या मध्यस्थ रूप है, उसी प्रकार सहस्रदल एवं षट्चक्र के अन्तराल में आज्ञाचक्र की सत्ता है। इसी प्रकार समष्टि जगत् में सिद्धभूमि भी सम्पूर्ण संसार की ओर अभिमुखी है, दूसरी ओर वह पूर्ण की ओर भी अभिमुख है।

सिद्धभूमि चित्त की एकाग्र भूमि में स्थापित है। वह ज्ञानमय है। इतने पर भी यह साधक तथा योगी का चरम लक्ष्य नहीं है। एकाग्रता ही चित्त के विकास की पूर्ण परिणति नहीं है। चित्त एकाग्रता-लाभ के साथ-साथ योगभूमि में प्रवेश करता है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि योग का पूर्ण फल प्राप्त करने के लिए एकाग्रता से प्राप्त ज्ञान को भी निरुद्ध करना ही होगा। अज्ञान का नाश करके ज्ञान अपनी सार्थकता को सिद्ध कर देता है। अज्ञान-नाश के पश्चात् सत्य का पूर्ण प्रकाश हो जाने पर ज्ञान भी सफलता प्राप्त करते हुए निरुद्ध हो जाता है। इस ज्ञानातीत सत्य का प्रकाशन करना ही योग का प्रकृत लक्षण है। यह सत्य है आत्मा। यह स्वयंप्रकाश है, अत: सर्वदा अपने निकट प्रकाशमान रहता है। सिद्धभूमि में विद्युत् की वल्लरी के समान इस स्वप्रकाश सत्य का साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि मनुष्य के अध्यात्म जीवन का यही चरम लक्ष्य नहीं है। चरम लक्ष्य है आत्मस्वरूप में स्थिति। आत्म-साक्षात्कार से स्थिति होती है। आत्मा का अनावृत्त स्वरूपदर्शन करने पर ही स्थिति-लाभ हो सकेगा। स्वरूपा-वस्थान देशकालातीत है। वह महाकाल से भी अतीत है। यद्यपि ज्ञानराज्य (ज्ञानगंज) में स्वरूपावस्था का आभास अवश्यमेव प्राप्त होता है, तथापि उसे सत्य रूप में प्राप्त करने के लिए ज्ञान एवं अज्ञान से अतीत होना ही होगा। वह न होने पर चैतन्य स्वरूप मातृक्रोड़ में प्रवेश-लाभ नहीं हो सकता। स्वरूपावस्था में चित्त न रहने की स्थिति में आ जाता है। इस अवस्था में आत्मा परम शिवरूपी है। उसकी शक्ति है पराशक्ति। दोनों में कोई पार्थक्य नहीं है। यही है स्वातन्त्र्यमय बोध अथवा बोधमय स्वातन्त्र्य की अवस्था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मा स्वतन्त्र है। स्वप्रकाश सत्-चित्-आनन्दमय स्वरूप है। उसकी अनन्त शक्ति उसे घेरे रहती है। पराशक्ति उसके साथ अभिन्न है, तथापि उससे पृथक् है। अपराशक्ति उससे भी भिन्न तथा पृथक् है। इन सभी शक्तिसमूह को लेकर आत्मा नित्यलीला के कारण व्यापृत् रहता है। स्वरूपतः वह निष्क्रिय होने के कारण लीलातीत है, तथापि स्वरूपशक्ति के प्रभाव से नित्यलीलामय है। यह लीला है अभेद अथवा प्रेम की लीला। यही है भेदाभेदमय (जीवशक्ति) की लीला अथवा भेदमयी माया लीला, सभी एक साथ! वह अस्पन्द है; तथापि शक्ति के कारण स्पन्दमयता से युक्त प्रतीत हो रहा है। प्रतिक्षण स्पन्दनशील होने पर भी सदा कूटस्थ है और निस्पन्द भी है!

सिद्धभूमि समूह सिद्धपुरुष के नाम के अनुसार अथवा अन्य किसी प्रकार के नियम के अधीन होकर विभिन्न नाम तथा रूप से युक्त होकर श्रीभगवान् की विश्वलीला में अपना कार्य करता रहता है। प्रसिद्धि है कि भगवान् दत्तात्रेय, अगस्त्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषिवर्ग अपने-अपने आश्रम की स्थापना करके ज्ञान-विज्ञान प्रचार करते रहते हैं। सभी का एकमात्र उद्देश्य है कालराज्य के जीवसमूह को किसी भी प्रकार से काल के आवर्त्त से मुक्त करना। उन्हें अपने निजधाम में, शान्ति तथा आनन्दमय धाम में यथासम्भव दीर्घकालीन आश्रय प्रदान करना। यद्यपि इस महान् कार्य में धर्म की एक सार्थकता परिलक्षित होती है, तथापि यह सनातन धर्म का, नित्यसिद्ध मानव धर्म का पूर्ण विकास नहीं है। कारण यह है कि केवल कालराज्य में ही कर्मक्षेत्र की सत्ता रह सकती है। इसी कारण सिद्धभूमियों में भी अवान्तर विभाग परिलक्षित होते रहते हैं। इसका कारण यह है कि कर्मक्षेत्र में (संसार में) कर्मबीज प्राप्त करके, प्रारब्ध के अन्त में खण्डकाल में देहत्याग (मृत्यु) का वरण करते हुए, कर्मभूमि में आगमन द्वारा कर्म के पूर्ण विकास का पथ उन्मुक्त हो जाता है। अतः जो व्यक्ति खण्ड महायोग की धारा से युक्त हैं, वे इस अल्प जीवन में अपना साधनकर्म पूर्ण न होने पर, मृत्यु के उपरान्त ज्ञानगंज में प्रवेश करते हैं, जहाँ उन्हें कर्म को पूर्ण करने का यथोचित अवसर एवं वातावरण प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त और भी अन्य प्रकार की सिद्धभूमियों की स्थिति का वर्णन प्राप्त होता है। वे कर्मभूमि नहीं हैं। अतः वहाँ कर्म को पूर्ण करने की आकांक्षा हो ही नहीं सकती। भावप्रधान-ज्ञानप्रधान तथा अन्यान्य गुणयुक्त सिद्धभूमि का भी अस्तित्व है। यह सिद्धों का कथन है।

•

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिद्धपुरुष रहस्य

भारतवर्ष में सिद्धपुरुषों के सम्बन्ध में सम्भवतः प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ सुनता ही रहता है। सामान्य वर्ग की यह धारणा है कि जो मनुष्य अपने जीवन में एक अलौकिक अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, वे सामान्य व्यक्ति नहीं रह जाते। उन्हें अलौकिक शक्ति प्राप्त रहती है और वे मानव-जीवन के एक महान् आदर्श को प्राप्त होकर अनेकांश में पूर्णत्व प्राप्त कर लेते हैं। प्राक्काल में 84 सिद्ध पुरुषवर्ग की कथा साहित्य में अंकित है। इतने पर भी सिद्धपुरुष मात्र 84 संख्यक नहीं हैं। उनकी संख्या अनन्त है।

इस प्रबन्ध में सिद्धपुरुषों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक आलोचना अभिप्रेत नहीं है। सिद्धावस्था प्राप्ति के उपाय प्रत्येक धर्म में विवेचित हैं। अतएव हिन्दू धर्म के ही समान ईसाई, सूफी, बौद्ध तथा जैनियों में भी सिद्धपुरुषों का वर्णन प्राप्त है। यहाँ यह आलोचना की जा रही है कि किस प्रकार से मनुष्य सिद्ध पदवी से मण्डित होता है।

समग्र सृष्टि अथवा विश्व के मूल में एक ऐसी महाशक्तिशाली सत्ता विद्यमान है, जो अद्वैत तथा अखण्ड है। यह सत्ता चैतन्य एवं आनन्दस्वरूप है। इसमें अनन्त शक्ति अभिन्नतया स्थित है। यह सत्ता एक ओर अद्वितीय, अनादि तथा अनन्त, अक्षत एवं निर्विकार है। यह पूर्णस्वरूप से विभूषित है। यही सत्यस्वरूप भी है। देश-काल तथा निमित्त, इसका स्पर्श भी नहीं कर सकते। यह सत्ता कार्य-कारण भाव तथा नियम एवं शृंखला के द्वारा नियन्त्रित नहीं हो सकती। मनुष्य जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूप अवस्थात्रय से सुशोभित है। पूर्णपुरुष भगवत्स्वरूप इन अवस्थात्रय में रहने पर भी, इससे ऊर्ध्व है। वह नित्य है तथा अतिचेतनरूपेण विद्यमान रहता है। इसे तुरीयावस्था भी कहा जाता है। यह अतिचेतन अवस्था चैतन्य की ही अवस्था है। यह सत्ता अप्रतिहत निरवच्छिन्न साक्षात्कारात्मक प्रकाश की अवस्था है। इससे भी परे एक ऐसी गहन-गम्भीर अवस्था है, जहाँ बोध का भी उन्मेष नहीं रहता। इस स्थिति में बोध का प्रवेश भी नहीं है।

सत्य तो यह है कि यह कोई अवस्था नहीं है। इसे स्थिति कहते हैं। यह अतिचेतन से भी अतीत है, अतः इसे एक प्रकार से अचेतन कहना ही उचित है! अचेतन कहना भी उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यह चैतन्य की अत्यन्त गहन, घनीभूत अवस्था है। यह है प्रकाश का घनीभूत अप्रकाश। यद्यपि आपात् दृष्टि से यह जड़ प्रतीत होती है, तथापि यह जड़ तथा चेतनरूप द्वन्द्व से भी अतीतावस्था है। यही है भगवान् का यथार्थ स्वरूप। उनमें अनन्त शक्ति है, तथापि इस स्थिति से उन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्तियों का प्रयोग किसी भी स्थूल, किंवा सूक्ष्म स्तर में नहीं हो सकता! जो पूर्ण सत्य है, जो सत्य का अपार तथा अतल प्रकाश है, वह स्वयं तत्स्वरूप होने पर भी उसे नहीं जानता! यह स्थिति गम्भीर सुषुप्ति के अनुरूप है।

इस स्थिति से जगत् सृष्ट नहीं होता। जिनका वर्णन सृष्टि-स्थिति-संहारकर्त्ता रूप से प्राप्त होता है, वे हैं इस पूर्ण सत्य से अभिन्न चेतन पुरुष। वे निरन्तर सृष्टि व्यापार में व्यापृत रहते हैं। साथ ही इसका बोध भी उन्हें रहता है। इतने पर भी वे यह नहीं जानते कि वे ही स्वयं अखण्ड परमतत्त्व हैं। उन्हें यह जानने का कोई प्रयोजन भी नहीं रहता। मनुष्य सिद्धावस्था में जिस पूर्णत्व को प्राप्त करता है, उसके साथ भी उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका एकमात्र सम्बन्ध है, सृष्टि प्रभृति व्यापार से। सृष्टिकर्त्ता ईश्वर देश तथा काल से अतीत नहीं हैं और वे कार्यकारण भाव से अवगत हैं। उनके बोधकेन्द्र से अनन्त विश्व का निर्गम होता रहता है। जब तक वे क्रियाशील रहते हैं, उतने कालमान को एक महाकल्प कहा गया है। समस्त विश्व उनके कर्म (क्रिया) क्षेत्र से उद्भूत है।

जिसे हम जीवन कहते हैं, उसकी गणना भी पूर्ण सत्य से पृथक् नहीं की जा सकती। जैसे ईश्वर पूर्ण से अभिन्न है, उसी प्रकार जीव भी पूर्ण से अभिन्न है। दोनों में अन्तर यह है कि ईश्वर चेतन है, परन्तु जीव आंशिक रूप से चेतन है और आंशिक रूप से अचेतन है। जीव अपने क्षुद्र अहं को जानता है। वह यह नहीं जानता कि वस्तुतः वह आत्मा है—अनन्त एवं अखण्ड है। देश-काल तथा कार्यकारण भाव जीव को बद्ध किये रहता है। जीव भी महाकल्पपर्यन्त अवस्थित रहता है। तदनन्तर वह स्वयं को पूर्ण से अभिन्न उपलब्ध करने के पश्चात्, देश-काल की सीमा का अतिक्रमण करने के पश्चात् पूर्ण में स्थितिलाभ करता है।

आत्मस्वरूप में मन-प्राण प्रभृति उपाधियों का योग होने पर जीवरूप में आत्मा का ही आविर्भाव होता है। भगवत्-साक्षात्कार के लिए इन उपाधियों का त्याग करना ही होगा। केवलमात्र मृत्यु से इस अवस्था की प्राप्ति नहीं होती। जागतिक वासना रहने तक मृत्यु के पश्चात् भी जीवभाव समाप्त नहीं हो सकता। जब तक जागतिक वासना विद्यमान है, तबतक मृत्यु के पश्चात् भी जीवभाव उच्छिन्न नहीं हो सकता। जब सम्पूर्ण रूप से वासनाजाल छिन्न हो जाता है, तब देह में रहते हुए भी मुक्ति का आस्वादन सम्भव है। इन वासनासमूह तथा संस्कार का रोध ज्ञान द्वारा होता है। मनुष्य का चित्त सर्वदा इन सब संस्कारों से अनुविद्ध रहता है। अतः चैतन्य स्वयं अपनी उपलब्धि से वंचित रह जाता है। इन सबका उन्मोचन हो जाने पर प्रकृत सत्य का दर्शन सम्भव है। जो आत्मा जीवभाव की संकोचरूपी अवस्था से रहित है, उसे ही शुद्ध आत्मा कहते हैं। अतः जीवन रहते हुए ही जीवभाव से अतीतावस्था का आस्वादन करना आवश्यक प्रतीत होता है। जीव का प्रकृत उद्देश्य है बोधातीत परम वस्तु से ऐक्य प्राप्त करना! इसके लिए सांसारिक तथा दैहिक समस्त वासनासमूह के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समूल रूप का उच्छेदन होना चाहिये। यद्यपि घोर निद्राकाल में प्रत्येक मनुष्य को ऐसी ही अवस्था प्राप्त हो जाती है, तथापि यह ज्ञानपूर्वक प्राप्त अवस्था नहीं है। अतः इस अवस्था में वासनासमूह उच्छिन्न नहीं होता, प्रत्युत् वह कुछ काल के लिए सुप्त हो जाता है। सुप्त होने पर भी वह पुनः जाग्रत् हो उठता है। अतः निद्रा अथवा साधारण मृत्युकाल में वासना उच्छिन्न नहीं हो सकती। मृत्युजनित विस्मृति से पुनः उठने पर, अर्थात् नवीन अवस्था में संक्रमित होने पर जीव यह अनुभव करता है कि एक नूतन देह स्थिति में नूतन आवेष्ठन है। उसे पूर्वस्मृति नहीं रह जाती। परिणामतः उसे कुछ भी अभिज्ञता नहीं रहती। अतः योगीगण कहते हैं कि मर के मरना व्यर्थ है। जो जीवित ही मर गया उसकी स्थिति सार्थक है। जीवित में ही मरना किसे कहते हैं? बोधातीत अवस्था में बोध की रक्षा करना ही जीवितावस्था में मरना है। इस अवस्था में एक ओर निर्मल आत्मस्वरूप का पूर्ण बोध जाग्रत् रहता है, दूसरी ओर देह, मन तथा विश्व की चेतना ही नहीं रह जाती।

जीव मायाजाल का भेदन करके सृष्टिभेदन करता है। अब वह समझने लगता है कि वही शिवरूप है। यह जीव के जीवन की सार्थकता है। वह उस समय अपने प्रकृत स्वरूप की उपलब्धि से आप्यायित हो जाता है। यही है अपने प्रकृत स्वरूप की उपलब्धि! यही अखण्ड सच्चिदानन्द अवस्था कही जाती है। अब उसके सम्मुख स्रष्टा-सृष्टि का भेद, जीव-जगत् का भेद नहीं रह जाता। वह पहले की तरह देश-काल-प्रकृति-नियति के अधीन नहीं रह जाता। अब वह स्वयं की सर्वशक्तिमान पूर्ण सत्य के रूप में प्रत्यभिज्ञा करता है। इस स्थिति का कभी भी ध्वंस नहीं होता। यह जागतिक परिवर्त्तन से उद्वेलित स्थिति नहीं है। अब योगी यह उपलब्धि कर लेता है कि समस्त पशुपक्षी, कीटपतंगादि स्थावर-जंगम में जो है, वही इस अखण्ड सच्चिदानन्द में भी है। यह अभिज्ञता इतिपूर्व नहीं थी। ज्ञानोदय से यह सब बोधगम्य हो जाता है। सर्वशक्तिमान परमतत्त्व के साथ ज्ञान का, चैतन्य का योग हो जाने पर इस अवस्था का उदय होता है। यही है सिद्धावस्था! यही है नित्य जाग्रदावस्था! अब ज्ञाता-ज्ञेय एवं ज्ञान, द्रष्टा-दृश्य, प्रेमिक-प्रेमास्पद-प्रेम अभिन्न होते हैं। एकमात्र सिद्ध ही इसे अनुभव कर सकते हैं। अतीत-अनागत-वर्त्तमान इस भूमि में एक हैं। अज्ञानावस्था से ही उनमें भेददृष्टि का अनुभव होता है।

प्रकृत सत्य यह है कि परमात्मा ही परमतत्त्व है। वही ईश्वर, जीव तथा सिद्धपुरुष रूप से विभिन्न भाव को अंगीकृत करते हुए क्रीड़ा करता है। परमात्म अवस्था में वह परमतत्त्व एक, अखण्ड, तथा अनन्त स्वरूप ज्ञान से अगोचर भाव में स्थित है। वह अनन्त शक्ति, अनन्त सत्ता तथा अनन्त चैतन्य से युक्त है। ईश्वर स्थिति में यह सब उसमें है, तथापि उसे केवल सृष्टि-स्थिति एवं संहार का अनुभव होता है। जीवरूप में भी वह सर्वशक्तिसम्पन्न है, तथापि अपनी वासनाओं के कारण सर्वशक्तिमत्ता के द्वार का उसे सन्धान नहीं है। अतः वह सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वयं को जीवरूप में सीमाबद्ध अनुभव करता है। उसकी सिद्धावस्था सेवात्मक अवस्था है। केवलमात्र इसी सिद्धावस्था में परमात्मा चेतन होकर अपनी अनन्त शक्ति का साक्षात्कार करता है।

यहाँ जिस सिद्धावस्था का निरूपण किया जा रहा है, वह भगवत्-साक्षात्कार की परावस्था है। भगवत्-साक्षात्कार से मात्र भगवद् विषयक परोक्षज्ञान ही का तात्पर्य नहीं है, प्रत्युत् वह भगवान् के साथ युक्तावस्था का द्योतक है। जब इस अवस्था की प्राप्ति हो जाती है, तब साधक ही योगी कहलाने लगता है। इस स्थिति में जीव अपनी पृथक् अवस्था के बोध से मुक्त होकर सर्वप्रकार का द्वैतभाव अतिक्रमित कर लेता है। अब परमात्मा के साथ तादात्म्यज्ञान स्थायी रूप से दृढ़ हो जाता है। उसे उपलब्धि होती है कि "उसकी यह अवस्था अनादिकाल से थी, तथापि योगावस्था प्राप्त होने के पहले उसे इसका बोध और आस्वादन भी प्राप्त नहीं था। यह कोई अभूतपूर्व अनुभव नहीं है।" अब उसे यह भान नहीं रहता कि उसने कोई पृथक् वस्तु की प्राप्ति की है। वह यह उपलब्धि करता है कि मैं जैसा पहले था, वैसा ही अब हूँ। उसके स्वरूप में कोई भी नवीन परिवर्तन नहीं होता। अनादिकाल से क्रम-विकास की यह क्रीड़ा चल रही है और चलती रहेगी। यह एक क्रीड़ा-मात्र है। माया का विलास है। यह एक कौशल-मात्र है, जिससे आत्महारा जीव पुनः स्वयं की उपलब्धि कर लेता है।

मायाजाल में आबद्ध जीव के लिए कभी-कभी यह क्रीड़ा अत्यन्त कष्टदायक प्रतीत होने लगती है। मायाजाल का कारण है जीव का मूल अहंकार। प्राथमिक अवस्था में वह अहंकार रहित रहता है। चैतन्य के विकास-क्रम से उसका अहंकार वर्धित होने लगता है। इसी अहंकार का आश्रय लेकर अविद्या गुप्त भाव से विद्यमान रहती है। यह भगवत्-साक्षात्कार का प्रधान प्रतिबन्धक है। जीव के स्वस्वरूप में अनन्तज्ञान निहित रहने पर भी उसकी अभिव्यक्ति नहीं होती। गम्भीर निद्रा के समय जीवगण परमेश्वर तादात्म्य का उपभोग करते हैं, परन्तु इस उपभोग का सचेतन अनुभव नहीं होता। सुषुप्ति काल में जगत्भ्रम अल्पकाल के लिए तिरोहित हो जाता है, तथापि उससे सचेतन अनुभूति का प्रस्फुटन नहीं होता। इसका कारण यह है कि जब तक अहंकार पूर्णतः निवृत्त नहीं होता और चैतन्यधारा श्रीभगवान् की ओर उन्मुख नहीं हो जाती, तब तक मात्र बाह्यज्ञान निवृत्त हो जाने से ही भगवत्-साक्षात्कार सम्भव नहीं हो सकता।

कभी-कभी किसी अचिन्त्य क्षण में सुषुप्ति की गाढ़ावस्था भग्न हो जाती है तथापि जाग्रदावस्था का उदय नहीं होता। इस प्रकार के सन्धिक्षण में चैतन्य निरालम्ब रूप से अल्पक्षण के लिए आत्मप्रकाश करता है। यह है बोधावस्था। यह जड़त्व नहीं है। यहाँ किसका बोध होता है? जगत्बोध तो होता ही नहीं। इस अवस्था में व्यापक अभावबोध स्फुरित होने लगता है। इसे महाशून्यावस्था कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह है भगवत्-साक्षात्कार की पूर्वसूचना। चैतन्य जगत् के इन्द्रजाल से पूर्णतः मुक्त होने पर अंहकारस्थ अनंत ज्ञान का प्रकाशन ही भगवत्-साक्षात्कार का प्रकाश काल है। एकमात्र सिद्धपुरुष ही अनन्त ज्ञान का विकास प्रत्यक्ष करते हैं। साधकावस्था में, अथवा असाधक अवस्था में बद्ध आत्मा में जो हैं, उनमें यह ज्ञान स्फुरित नहीं हो सकता कि वे ही परमात्मा हैं। अतः भगवत्-साक्षात्कार नितान्त व्यक्तिगत व्यापार है। एक ही परमात्मा सर्वत्र विराजित हैं, तथापि एक आधार में उनका अनन्त स्वरूपज्ञान उन्मुक्त हो जाता है, परन्तु अन्य आधार में उन्मुक्त नहीं रहता। यदि साक्षात्कार व्यक्तिगत व्यापार नहीं होता, उस स्थिति में एक सिद्ध द्वारा भगवत्ता प्राप्त करते ही, इस जगत् की विचित्र भेदलीला का पर्यवसान हो जाता। अतः एक के साक्षात्कार से अभी तक समस्त विश्व का साक्षात्कार नहीं हो सका। कोई-कोई आत्मा साधनबल से पूर्णज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होते हैं, तथापि इस पूर्ण ज्ञान की स्फुरत्ता केवलमात्र उसी आत्मा को अनुभूत होती है। समस्त जगत् इस उपलब्धि से वंचित रह जाता है।

यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि भगवत्-साक्षात्कार के फल से क्या आत्मा को कुछ प्राप्त होता है? इस प्रश्न के समाधान के पहले यह जानना आवश्यक है कि प्राप्ति शब्द का क्या तात्पर्यार्थ है? अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति को प्राप्ति कहते हैं। अतः जिस नित्यप्राप्त वस्तु को मोह के कारण अप्राप्त माना जाता है, (मोह निवृत्ति के अनन्तर) उसकी पुनराभिव्यक्ति को प्राप्ति संज्ञा कैसे दी जा सकती है? आत्मप्राप्ति अथवा भगवत्प्राप्ति इसी पुनराभिव्यक्ति के अन्तर्गत परिगणित है। यह अप्राप्त की प्राप्ति नहीं है, तथापि इसका महत्त्व अपरिसीम है। असिद्ध पुरुष स्वयं को सीमाबद्ध करके सुख-दुःख का भोग करता है। सिद्ध पुरुष की अवस्था एतद्विपरीत है। उसके आनन्द तथा ज्ञान का अन्त नहीं होता।

भगवत्ज्ञान की अभिव्यक्ति जिन नाना उपाय से होती है उनमें प्रेम सर्वश्रेष्ठ उपाय है। प्रज्ञान भी इसी के अन्तर्गत है। विचारमूलक ज्ञान अन्य प्रकार का होता है। प्रेम के द्वारा बुद्धि का अतिक्रमण होता है। इससे पूर्ण आत्मविलोप होता है। आत्मविलोप होते ही भगवान् से मिलन होना अवश्यम्भावी है। दिव्य प्रेम के प्रेमिक अपनी व्यक्तिगत सत्ता का विस्मरण कर देते हैं। इस प्रकार वे मानवीय सीमा का अतिक्रमण करते हैं। क्रम-विकास के फल से उनकी अपनी परमसत्ता विकसित हो उठती है। जब माया तथा द्वैतप्रपंच से आत्मा मुक्त हो जाता है, तभी एकीभाव प्रस्फुरित होने लगता है। अब समग्र मूलसत्ता का आकर्षण जाग्रत् हो जाता है। इस पथ में प्रेम की प्रेरणा ही विशेषभाव से उल्लेखनीय है।

इस पथ के तीन अंश किंवा विभाग हैं। प्रथम अंश के पश्चात् अनेक स्तर हैं। इन्हें भूमि कहा जाता है। यह अंश विस्तृत है दिव्यज्ञान के सूत्रपात से लेकर पूर्ण आत्मविकास पर्यन्त! इस पथ की चरम अवस्था में अहंकार विनष्ट हो जाता है और मायिक धारा से सम्बन्ध भी समाप्त होने लगता है। इसके पश्चात् 'विच्छेद हुआ था'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी भी अभिज्ञता नहीं रह जाती। सूफीगण इस अवस्था को 'फना' कहते हैं। इस दीर्घपथ के यात्री का सम्बल क्या रहता है? उसका सम्बल रहता है शुद्ध आत्मा, उसका आनुषंगिक चेतना संस्कार, अहंकार तथा मन। यह अहंकार शुद्ध आत्मा का विकृत तथा मिथ्या रूप है। इसका पूर्ण विलोप होना ही स्थिति का लक्ष्य है। अहंकार निवृत्ति के साथ-साथ कर्म, वासना, संस्कार प्रभृति लुप्त हो जाते हैं। ये सब अहंकार से पीड़ित होकर मनोमय कोष में अवस्थान करते हैं। अब एकमात्र चेतना अवशिष्ट रह जाती है। उसका लोप नहीं होता। समस्त गुण कर्म आदि का तथा ज्ञान का भी अभाव हो जाता है। इस अभाव का बोध शेष रह जाता है। यही है शून्यबोध। अहंकार के अभाव में यह भी बोध नहीं रह जाता कि "मैं अकिंचन हूँ"। अब भगवान् नहीं हैं, विश्व स्रष्टा, सृष्टि आदि सबका अभाव है। अथच चेतना है।

यही है अचेतन चेतना। इसकी धारणा बुद्धि के द्वारा नहीं हो सकती। यह चेतना स्थूल, मिथ्या, सत्य जगत् भगवान् का विषय नहीं है। अथच चेतना है! इसे उपरागरहित चेतना कहा जाता है। संस्कार, अहंकार, मन प्रभृति का लोप हो जाने पर भी चेतना रहती है। अब 'मैं' का केवलमात्र शुद्ध अंश ही अवस्थित है। साधारण मानव-संस्कार इस शुद्ध 'मैं' का सन्धान नहीं पा सकता। सृष्टि के पूर्व परमात्मा भी अन्तःश्चेतन रहते हैं। सिद्धों का कथन है कि तब वे स्वयं को परमात्मारूप से भी नहीं जानते। अतः यह कहा जा सकता है कि उनमें प्रकृत 'मैं' नहीं रहता। यह सत्य तथ्य है। मिथ्याज्ञान पर ही सत्यज्ञान आधारित है। संस्कारजन्य मिथ्याज्ञानमूलक मिथ्या अहं के ऊपर ही प्रकृत 'मैं' निर्भर रहता है।

पथ के प्रथम अंश के चरम लक्ष्य के रूप में जो शून्यावस्था है, उसे विवेचित किया जा चुका है। अब द्वितीय अंश की विवेचना की जाती है। पूर्वोक्त चेतना के द्वारा प्रकृत 'मैं' की उपलब्धि हो जाती है। इसका इतिहास ही द्वितीय अंश का विषय है। इस समय यही अचेतन चेतना रूपान्तरित होकर 'अहं' चेतना का रूप धारण करती है। यह बोध परमात्मबोध है। यह 'अहं ब्रह्मास्मि' के रूप में आत्मप्रकाशन करता है। द्वितीय अंश के अवसान काल में यह उपलब्धि उदित होती है। सूफीगण इसे 'वका' कहते हैं। यही है यथार्थ भगवद्बोध।

यह भी सिद्धपुरुष की स्थिति नहीं है। सिद्ध की अवस्था इस 'अहं ब्रह्मास्मि' स्थिति से उत्कृष्ट रहती है। दोनों स्थितियों में क्रियागत पार्थक्य है। वास्तव में 'मैं ब्रह्म हूँ' इससे उच्चतर अवस्था हो ही नहीं सकती। चरम अतिचेतना की अवस्था से और अधिक उत्कर्ष की कल्पना कर सकना सम्भव ही नहीं है। ब्रह्मभाव में प्रतिष्ठित हो जाने पर साधक के लिए अप्राप्त अथवा असिद्ध कुछ भी नहीं रह जाता। मन, स्थूल, सूक्ष्म जगत्, देश-काल, चन्द्र-सूर्य, नक्षत्र, लोक-लोकान्तरादि भी नहीं रह जाते। यह है चिन्तन तथा कल्पना से अतीत अवस्था। तब एक ही रह जाता है। द्वन्द्व की प्रक्रिया नहीं रहती। सभी साधनाओं की यही चरम सिद्धि है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिद्धिप्राप्ति के पश्चात् कोई व्यक्ति देह रहने पर भी और अग्रसर नहीं हो पाता। इनका सूक्ष्म तथा स्थूल चेतना से कोई योग नहीं रहता। ये पूर्णरूपेण पूर्णता के प्रतीक हैं। इनकी सत्ता अनन्त तथा असीम है।

पथ का एक और भी अंश है। इसे तृतीयांश कहते हैं। जो सद्गुरु विश्वोद्धार में प्रवृत्त होते हैं, यह अंश उनके लिए है। पथ के तृतीयांश में स्थूल तथा सूक्ष्म चेतना का पुनरुद्धार होता है। यदि ऐसा नहीं होता, तब जनसामान्य (जीव) से सम्बन्ध ही स्थापित नहीं हो पाता और श्रीभगवान् के अनुग्रह विस्तार का जगत् व्यापार में भाग ही लेना सम्भव न होता। आधिकारिक पुरुषों के लिए पथ का यह तृतीय अंश है। आगम में निर्वाण दीक्षा के अनन्तर आचार्य दीक्षा की सम्भावना अंगीकृत है। सिद्ध पुरुष में अतिचेतना अक्षुण्ण रहती है। इसी के साथ उनमें सृष्टि विषयक चेतना भी अभिव्यक्त होती है। पारिमार्थिक दृष्टि से ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् 'मजूब' एवं सद्गुरुभावापन्न 'कुतुब' संज्ञक पुरुष की स्थिति में कोई पार्थक्य नहीं रहता। ब्रह्मनिष्ठ की दृष्टि में सृष्टि नहीं है, किन्तु अनुग्रहकर्त्ता गुरु की दृष्टि में सृष्टि की सत्ता है। ये गुरु ही नररूपी विरुपाक्ष हैं।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमहंस विशुद्धानन्द देव तथा सूर्यविज्ञान

बहुत दिन पूर्व की बात है। जब से महापुरुष परमहंस श्री विशुद्धानन्दजी का परिचय मिला, उस समय से ही उनकी अनेक अलौकिक शक्ति का परिचय मिलता रहता था। उनमें अलौकिकता की व्याप्ति इतनी अधिक तथा अस्वाभाविक थी कि उस पर हठात् विश्वास कर सकना अत्यन्त कठिन-सा लगता था। "योगीगण अचिन्त्य महिमायुक्त होते हैं" इस उक्ति पर विश्वास था तथा देश-विदेश के प्राचीन तथा नवीन युग के विभिन्न सम्प्रदाय में जो विभूतिसम्पन्न योगी एवं सिद्ध महात्मा गण की उक्तियों का ग्रन्थ में पाठ करता था, उनके जीवन की अंकित अलौकिक घटनाओं पर भी विश्वास था। तथापि आज भी हमारे बीच ऐसे योगी महात्मा हैं, प्रत्यक्षदर्शियों से उनका विवरण सुनकर भी उस पर विश्वास नहीं हो पाता था। इसी कारण एक दिन सन्देह नाश करने तथा उत्सुकता निवारणार्थ उन महापुरुष के दर्शन के लिए गया था।

इस समय सन्ध्या निकट थी। सूर्यास्त में कुछ ही समय बाकी था। मैंने जाकर देखा कि बहुसंख्यक भक्त तथा दर्शकों से परिवेष्ठित होकर पृथक् आसन के ऊपर एक सौम्यमूर्ति महापुरुष व्याघ्रचर्मासीन विराजित हैं। सुन्दर लम्बी दाढ़ी, विशाल नेत्र, वर्षीयमान पुरुष, परिपक्व वयस, गले में शुभ्र यज्ञोपवीत, शरीर में रेशमी वस्त्र तथा चरणों में भक्तों के द्वारा चढ़ाये गये पुष्प तथा पुष्पमालादि से सुसज्जित शरीर। पास में ही एक गोलाकार यन्त्र विशेष भी पड़ा था। महात्मा उस समय योगविद्या, प्राचीन आर्षविज्ञान एवं गूढ़तम रहस्य के उपदेश दे रहे थे। उनकी सहजरूप से व्याख्या कर रहे थे। कुछ ही मिनट उनके उपदेशों को सुनने के पश्चात् मैंने यह समझ लिया कि इस उपदेश में अनन्य साधारण विशेषता है। उनकी प्रत्येक बात में इतनी दृढ़ता थी कि वे अपनी अनुभवसिद्ध बातों को कहते थे, केवल शास्त्रवचन की आवृत्ति मात्र ही नहीं करते थे। इतना ही नहीं, वे प्रसङ्गवशात् यह भी कहा करते थे कि शास्त्र की सब उक्तियाँ तथा वाक्य सत्य हैं। प्रयोजन होने पर वे उसे योग्य अधिकारी को प्रत्यक्ष दिखला सकते हैं। इस समय जात्यन्तर परिणाम की आलोचना चल रही थी। वे समझा रहे थे कि जगत् में सर्वत्र ही सत्तारूपेण समस्त पदार्थ सूक्ष्मरूपेण विद्यमान हैं, परन्तु जब जिसकी मात्रा अधिक रूप से प्रस्फुटित हो जाती है, वही अभिव्यक्त तथा इन्द्रियगोचर हो जाता है। जो (मात्रा) प्रस्फुटित नहीं हो पाती, उसकी (वस्तु) अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। अतएव बाबा विशुद्धानन्द देव की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यञ्जना का कौशल सुनकर यह ज्ञात हो रहा था कि किसी भी स्थान से किसी भी वस्तु का आविर्भाव कर सकना सम्भव है।

यही है अभ्यासयोग तथा साधना का प्रकृत रहस्य। हम व्यावहारिक जगत् में जिस पदार्थ को जिस रूप में पहचानते हैं, वह है उसकी आपेक्षिक सत्ता। हम जिस वस्तु को जिस रूप में जहाँ तक पहचान पाते हैं, वह वहीं तक सत्य है। ऐसी उपलब्धि को किसी के पास व्यक्त नहीं किया जा सकता। लौह का टुकड़ा केवल लौह ही होगा, यह बात यथार्थ नहीं है। उसके अन्दर सम्पूर्ण प्रकृति अव्यक्तरूपेण निहित है, परन्तु लौह भाव के उसका प्रधान भाव होने के कारण अन्य समस्त भाव उसमें प्रच्छन्न रहते हैं। किसी भी विलीन भाव को (जो लौह में विद्यमान है) प्रबुद्ध करके उसकी मात्रा बढ़ा देने में उसका पूर्वरूप स्वभावतः अव्यक्त हो जायेगा (लौह भाव अव्यक्त हो जायेगा) तथा अन्यभाव (जैसे उसमें सोना की मात्रा बढ़ा दी जाये) को उसमें बढ़ा देने से वह भाव प्रबल हो जायेगा (अर्थात् यदि सोने की मात्रा बढ़ा दी जाये, तब सोना हो जायेगा)। सर्वत्र यही नियम कार्यरत रहता है। वास्तव में लौह सुवर्ण नहीं हुआ है। वह लौहभाव अव्यक्त हो गया है। तथा जो स्वर्ण उस लौह में अव्यक्त था वह व्यक्त होकर सुवर्णरूपेण प्रकाशित हो गया है। आपाततः लोग तो यही समझेंगे कि लोहा सोना बन गया, तथापि वास्तव में ऐसा नहीं हुआ है। योगी पुरुषगण 'मूलपृथकत्व' अर्थात् अव्यक्त भाव के बीजरूप को ही पृथकता की सत्ता स्वीकार करते हैं। ऐसा न करने से सृष्टिवैचित्र्य का कोई मूल्य ही नहीं रहेगा। भगवान् व्यास कहते हैं कि 'जात्यानुच्छेदेन सर्वं सर्वात्मकम्'। इससे विदित होता है कि जातीय उच्छेद प्रलय में भी सम्भव नहीं है। प्रलय तथा अव्यक्तावस्था में भी जातिभेद रहता है, किन्तु वह अधिष्ठानलोप के कारण अव्यक्त हो जाता है। वह सृष्टि के साथ विकसित होता है। प्रलय के पश्चात् की अवस्था में सम्पूर्ण प्रकृति के ऊपर आवरण छा जाता है, इस कारण उसमें विकारोन्मुख परिणाम नहीं रहता। साधारणतः जिसे सृष्टि कहा जाता है, वह आंशिक सृष्टि है तथा आंशिक प्रलय इसके ही रूप से गण्य होता है। (आंशिक सृष्टि का जो रूप है उसमें उसी रूप आंशिक प्रलय माना जायेगा) जहाँ आवरण नहीं है, वहाँ निरन्तर परिवर्तन रहता है। जहाँ आवरण है, वहाँ कोई परिवर्तन नहीं होता। जहाँ कोई आवरण नहीं रहता, वहाँ प्रकृति सर्वतोभावेन मुक्त होकर अखिल परिणाम की ओर उन्मुख होती है। एक साथ, युगपत्, अन्यान्य अनन्त आकार प्रकाशित होते हैं, इसी कारण किसी विशेष आकार का तात्पर्य नहीं होता। उसकी निराकार स्फूर्ति जो करता है, वही ब्रह्म है। लोहा ही सोना हो गया है, यह कहना उचित नहीं है। यही है योगशास्त्र का जात्यन्तर परिणाम। पतंजलिदेव कहते हैं कि प्रकृति के आपूरण भाव से जात्यन्तर परिणाम हो गया है। एक जातीय वस्तु अन्य जातीय वस्तु में परिणत हो गई है। यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कैसे सम्भव है, इसे भी योगशास्त्र में कहा गया है।[1] यह सब चर्चा चल रही थी। इसी बीच मेरी जिज्ञासु वृत्ति को देखकर उन्होंने मुझसे कहा, "तुमको यह करके दिखलाता हूँ"। यह कहकर उन्होंने आसन के ऊपर से एक गुलाब फूल उठाकर मुझसे पूछा, "बोलो, इसे किस रूप में बदल दूँ?" वहाँ पर जवा पुष्प नहीं था। इसलिए मैंने बाबा से गुलाब को जवा पुष्प के रूप में बदलने की प्रार्थना की। बाबा ने मेरी बात स्वीकार करके बायें हाथ में उस गुलाब के फूल को लेकर दाहिने हाथ से उस स्फटिक यन्त्र द्वारा उसके ऊपर विकीर्ण सूर्य-रश्मि को संहत करने लगे। क्रमशः मैंने देखा कि उसमें एक स्थूल परिवर्तन हो रहा था। पहले एक लाल आभा प्रस्फुटित होने लगी। धीरे-धीरे सम्पूर्ण गुलाब पुष्प विलीन होकर अव्यक्त हो गया तथा उसकी जगह एक ताजा खिला हुआ जवा पुष्प प्रकट हो गया। कौतूहलवशात् मैं उस जवा पुष्प को अपने निवास-स्थान पर ले आया।[2]

---

1. पतंजलिदेव का सिद्धान्त है 'निमित्तमप्रयोजकम्' इत्यादि। उपादानस्वरूपा प्रकृति में निमित्त कारण की प्रेरणा नहीं दी जाती। वह प्रकृतिनिष्ठ आवरण को दूर हटा देता है। आवरण अपसारित होने के अनन्तर आच्छन्न प्रकृति उन्मुख होकर स्वयं ही अपने परिवर्तन के विभिन्न रूपों में परिणत हो जाती है। लौह में जो सुवर्ण प्रकृति है, वह आवरण द्वारा ढँकी रहती है तथा लौह प्रकृति आवरण से मुक्त रहती है। यदि लौह में स्थित सुवर्ण प्रकृति का यह आवरण किसी उपाय द्वारा (योग अथवा आर्ष विज्ञान द्वारा) हटा दिया जाये तब लौह प्रकृति ढँक जायेगी और सुवर्ण प्रकृति परिवर्तन धारा में पड़कर उत्पन्न हो जायेगी। यह कौशल ही है प्रकृति विद्या। इसके द्वारा असत् को सत् में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। केवल अव्यक्त को ही व्यक्त किया जा सकता है। वास्तव में सत् कार्यवाद में सृष्टि मात्र ही अभिव्यक्त होती है।

   जो कभी था ही नहीं, जो कभी होगा ही नहीं उस निमित्त को प्रकृति में प्रेरित किया जा सकता है। प्रकृति में परिवर्त्तनशीलता के प्रति स्वाभाविक प्रेरणा विद्यमान रहती है। प्रतिबन्धक रहने के कारण यह कार्य नहीं हो पाता (नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः)

2, घर लाकर उस पुष्प को रखने का कारण यह था कि नेत्रों से देखने पर भी इस समय मैं यह धारणा नहीं कर पा रहा था कि यह कैसे हो गया? मुझे अस्पष्ट रूप से यह भान हो रहा था कि इसमें कहीं कोई दृष्टिभ्रमता तो नहीं है। कहीं मैं किसी सम्मोहिनी विद्या (मेस्मेरिज़म) के वशीभूत होकर जवा पुष्प की कोई सन्तान होने पर भी जवा पुष्प तो नहीं देख रहा हूँ! Optical Illusion, halluciation, hypnotism इत्यादि शब्द द्वारा ऐसी सृष्टि-प्रक्रिया को समझने की चेष्टा कर रहा था। अज्ञ लोगों में सम्मोहिनी विद्या के प्रभाव से अथवा तज्जातीय अन्य कारणों से इन सब प्रकार की सृष्टि का प्रकाश होता है, वह प्रतिभासिक होती है। स्थायी नहीं होती। ऐसी वस्तु लौकिक व्यवहार में भी नहीं आती। और व्यावहारिक सृष्टि उससे अलग होती है। जैसा भेद स्वप्न तथा जाग्रत् अवस्था के बीच है, उसी तरह प्रातिभासिक एवं व्यावहारिक सत्ता में भेद है। वैदान्तिकगण की जीवसृष्टि एवं ईश्वरसृष्टि का भेद भी यहाँ पर आलोचनीय है। वास्तव में अज्ञानवशात् यह सब सन्देह कर रहा था। यह जवा पुष्प भी जागतिक जवा पुष्प के समान व्यावहारिक सत्तासम्पन्न पदार्थ था। द्रष्टा के दृष्टिभ्रम से उत्पन्न आभास मात्र नहीं था। मैंने बहुत दिनों तक अपने सन्दूक में इसे यत्न से रखा था और अन्य लोगों को भी प्रदर्शित किया था। अनेक दिनों के पश्चात् वह सूख गया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामीजी ने (इस चमत्कार के अनन्तर) कहा—"इस प्रकार से समस्त जगत् में प्रकृति का खेल हो रहा है। जो इस खेल के तत्त्व को कुछ समझ पाते हैं वे ही हैं ज्ञानी। अज्ञानी इस खेल से मोहित होकर आत्मविस्मृत हो जाते हैं। योग के बिना इस ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार विज्ञान के बिना वास्तविक योगपथ का आहरण नहीं किया जा सकता।" मैंने पूछा, "तब तो योगी के लिए सबकुछ सम्भव है?" बाबा ने कहा, "निश्चय! जो यथार्थ योगी हैं, उनके सामर्थ्य की कोई इयत्ता नहीं है। क्या हो सकता है और क्या नहीं हो सकता, इसकी कोई निश्चित सीमारेखा भी नहीं है। परमेश्वर ही हैं आदर्श योगी। इनके सिवाय महाशक्ति का पूर्णज्ञान कौन पा सकता है और प्राप्त होना भी सम्भव नहीं है। जो निर्मल होकर परमेश्वर की शक्ति के साथ जितना युक्त हो सकेगा, उसके समक्ष शक्ति की उतनी ही स्फूर्ति हो सकेगी। इस प्रकार से युक्त होना एक दिन में सम्भव नहीं है। क्रमशः होता है। शुद्धि अथवा पवित्रता जिस दिन पूर्णतः सिद्ध हो जायेगी, तभी ईश्वर का सायुज्य प्राप्त हो सकेगा। तब भी योगी की शक्ति की कोई सीमा नहीं है। उसके समक्ष असम्भव भी सम्भव हो जाता है। उसकी इच्छा होते ही अघटनघटनापटीयसी माया उसे पूर्ण कर देती है।"

मैंने उनसे पूछा, "इस फूल का परिवर्तन (गुलाब से जवा पुष्प) आपने योगबल से किया अथवा अन्य उपाय से?" बाबा ने उत्तर दिया, "उपाय मात्र ही योग है। दो वस्तुओं को एकसाथ करना ही तो योग कहलाता है। यथार्थ योग इससे अलग होता है। मैंने इस पुष्प को सूर्यविज्ञान द्वारा परिवर्तित किया है। योगबल (शुद्ध इच्छाशक्ति) से भी सृष्टि इत्यादि कार्य किये जा सकते हैं, किन्तु विज्ञानकौशल से भी सृष्टि करना सम्भव है।" मैंने इस पर अपनी शंका व्यक्त करते हुए कहा, "सूर्यविज्ञान क्या है?" बाबा ने बतलाया कि "सूर्य ही जगत् के प्रसविता हैं। जो पुरुष सूर्य की रश्मि अथवा वर्णमाला को अच्छी तरह से पहचान लेता है, वह सहज में ही समस्त पदार्थों का संगठन अथवा ध्वंस कर सकता है। वह देखता है कि समस्त पदार्थों का मूल बीज इसी रश्मिमाला के विभिन्न प्रकार के संयोग से ही उत्पन्न होता है। वर्णभेद तथा विभिन्न वर्ण के संयोगभेद से जैसे विभिन्न प्रकार के पद (वाक्य आदि) उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार से रश्मिभेद एवं विभिन्न रश्मियों के मिश्रणभेद से जगत् के नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से अव्यक्त के गर्भ में सभी वस्तु-पदार्थ के बीज सन्निहित रहती हैं। यदि बीज ही न रहता, तब इस प्रकार की संस्थान-विशेष जनक रश्मि विशेष के संयोग-वियोग द्वारा तथा इच्छाशक्ति अथवा सत्य संकल्प के प्रभाव से भी सृष्टि की सम्भावना नहीं होती। यही कारण है कि योग तथा विज्ञान के एक होने पर भी दोनों में किंचित् पृथक् व्यवहार रहता है। रश्मिसमूह को शुद्ध रूप से पहचान कर उसकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योजना करना ही सूर्यविज्ञान का प्रतिपाद्य विषय है। जो ऐसा करने में सक्षम होते हैं, वे समस्त स्थूल एवं सूक्ष्म कार्य करने में समर्थ हो जाते हैं। सुख-दुःख, पाप-पुण्य, काम-क्रोध, लोभ, प्रीति, भक्ति इत्यादि 14 प्रकार की वृत्ति तथा संस्कार भी रश्मि-प्रयोग से ही उत्पन्न होते हैं। अतएव जो इस योजना तथा वियोजना की प्रणाली को जानते हैं, वे सबकुछ कर सकते हैं। निर्माण भी कर सकते हैं तथा संहार एवं परिवर्तन की तो बात ही क्या? यही है सूर्यविज्ञान।''

इस पर मैंने बाबा के समक्ष अपनी जिज्ञासा प्रकट की, ''आपने यह विद्या कहाँ से प्राप्त की? मैंने तो कभी इस विज्ञान (सूर्यविज्ञान) का नाम ही नहीं सुना था।'' वे हँसकर बोले, ''तुम हो शिशुस्वरूप। तुम्हारी जानकारी ही कितनी है? यह विज्ञान भारत की ही वस्तु है। उच्चकोटि के ऋषिगण इसे जानते थे और इसका प्रयोग भी उपयुक्त क्षेत्र में करते थे। आज भी इस विज्ञान के पारदर्शी विद्वान् विराजित हैं। वे हिमालय अथवा तिब्बत में रहते हैं। मैंने स्वयं तिब्बत के एक स्थान पर स्थित ज्ञानगंज नामक योगश्रम में योगी तथा विज्ञानवित् महापुरुष के साथ कठोर साधना करके इस विद्या को तथा ऐसी ही अनेक लुप्त विद्यासमूह को सीखा। यह अत्यन्त जटिल तथा दुर्गम विषय है। इसका दायित्व भी अधिक है। इस कारण आचार्यगण इसे सहसा किसी को नहीं सिखलाते।''

मैंने पूछा, ''इस प्रकार की अन्य अनेक विद्यायें हैं क्या?'' उन्होंने उत्तर दिया, ''हैं तो! चन्द्रविज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, वायुविज्ञान, क्षणविज्ञान, शब्दविज्ञान इत्यादि अनेक विद्या हैं। केवल नाम ही सुनकर तुम क्या समझोगे? तुमने शास्त्रों में जितनी विद्या का नाम सुना है, उनके तथा उनके अतिरिक्त कितनी तुम लोगों को बोधगम्य हो सकी हैं?''

इस प्रकार से वार्तालाप करते-करते सन्ध्या हो गई। पास ही घड़ी रक्खी थी। महापुरुष ने उसे देखा। अब समय नहीं था। वे जल्दी से अपनी नित्य साधना के लिए उठ खड़े हो गये और अपने साधना-कक्ष में चले गये। हम सभी लोग अपने-अपने घरों में लौट गये। इसके पश्चात् मैं प्रायः प्रतिदिन उनके पास जाता था और उनका सत्संग करता था। इस प्रकार से अन्तरंगता बढ़ती गयी। क्रमशः नाना प्रकार की अलौकिक विभिन्न बातें मैंने प्रत्यक्ष देखीं। कितनी देखीं, उसकी संख्या बतला सकना सम्भव नहीं है। स्थूल रूप से, सूक्ष्म रूप से, भौतिक जगत् की, दिव्य जगत् की, यहाँ तक की आत्मिक़ जगत् तक की लोकोत्तर शक्तियों की विभिन्न क्रीड़ा देखकर स्तम्भित हो जाया करता। मैंने स्वयं जो कुछ देखा तथा अनुभव किया, उसे लिखने के लिए उद्यत होने पर एक महाभारत तैयार हो सकती है। किन्तु यहाँ यह सब लिखने की आवश्यकता नहीं है। मैंने यहाँ यथासम्भव निरपेक्ष रूप से अनेक लोगों के अनुरोध की रक्षा करने के लिए बाबा द्वारा उपदिष्ट एवं प्रदर्शित विज्ञान के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्बन्ध में एक-दो बातें लिखी हैं। बाबाजी के सम्बन्ध में मैंने 'श्री श्री विशुद्धानन्द प्रसंग' नामक ग्रन्थ में विस्तृत विवरण अंकित किया है।

सूर्योपनिषद् में सूर्य को जगत् की उत्पत्ति का कारण माना गया है। आचार्य शौनक 'बृहद्देवता' में उच्चस्वर से कहते हैं कि एकमात्र सूर्य से ही भूत-भविष्यत् तथा वर्त्तमान की समस्त स्थायी तथा सचल वस्तु उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाती है। ये ही प्रजापति तथा सत् स्वरूप हैं। ये ही हैं अक्षर-अव्यय-शाश्वत ब्रह्म। ये तीन रूप में विभक्त होकर तीनों लोकों में विराजित हैं। समस्त देवगण इनकी ही रश्मि में निविष्ट हैं। 'सूर्य सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ में अंकित है कि सूर्य समस्त जगत् के उत्स स्वरूप होने के कारण आदित्य हैं। जगत् का प्रसव करते हैं इस कारण सविता हैं। यही हैं तमोमण्डल के उस पार ज्योतिःस्वरूप।

यहाँ जिन परमज्योति की बात कही गयी है, वह है शब्द ब्रह्ममयी मन्त्र-ज्योति। यही है अखण्ड विभक्त वेद। इसी से विभक्त होकर वेदत्रयी (ऋक्, यजुः, साम) का आविर्भाव होता है। 'विद्यामाधव' ग्रन्थ में इसी कारण सूर्य को त्रयीमय नाम से पुकारा गया है। ये ही तीनों जगत् के प्रबोध हेतु भी हैं। तभी शंकर ने भी इनको नेत्ररूप से धारण किया है। सूर्य से सभी वस्तुसमूह के चैतन्य का उन्मेष-निमेष होता है। ऐसा श्रुति का भी कथन है। अग्नि-षोम दोनों ही सूर्य से अभिन्न हैं। विष्णुपुराणोक्त याज्ञवल्क्य ऋषि-कृत 'सूर्य स्तुति' में सूर्य को 'विभूति का द्वार', 'ऋक्-यजुः-सामभूत्', 'त्रयीधामवान् तथा अग्निषोमभूत' कहकर उन्हें 'जगत् का कारणात्मा' तथा 'परम सौषुम्न' भी कहा गया है। सूर्य सिद्धान्त का मत है कि ऋक् ही सूर्य का मण्डल है तथा यजुः एवं साम उनकी मूर्ति हैं। ये हैं कालात्मक, कालकृत्, त्रयीमय, भगवान्। (यह भौतिक सूर्य के विषय में नहीं कहा गया है)।

ये निरन्तर उद्‌गीथ का रव करने के कारण रवि हैं। छान्दोग्योपनिषद् का कथन है कि त्रयीविद्या छन्दोरूप तीन वेद इसी उद्‌गीथ को आवृत करके स्थित हैं। इसके बाहर मृत्युराज्य यह जगत् है। देवगण ने मृत्यु से डर कर सर्वप्रथम वेद की शरण ली और छन्दादि से स्वयं को आच्छादित किया। उन्होंने इस प्रकार अपना गोपन (रक्षण किया) किया। तथापि मृत्यु ने उनको देख लिया था, जैसे जल के भीतर मछली दिखलाई दे जाती है। इसकी जलवत् उपमा से प्रतीत होता है कि वेदत्रयी जल के समान स्वच्छ आवरण मात्र है क्योंकि मधुविद्या में वेद को 'आपः' (जल) कहते हैं। एक प्रकार से यही है कारणवारि। अब मृत्यु द्वारा देख लिये जाने पर देवगण ने वेद से बाहर होकर शब्दाश्रय लिया। तभी वेदान्त में शब्दाश्रय लिया गया है। इसके पश्चात् छान्दोग्य श्रुति में स्पष्ट कहते हैं कि उद्‌गीथ अथवा प्रणव ही सूर्य हैं। ये सर्वदा शब्द करते हैं। इन प्रणव सूर्य की दो अवस्था है। एक अवस्था में इनकी रश्मिमाला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्दिक् विकीर्ण होती रहती है[1] द्वितीय अवस्था में समस्त रश्मिमाला संयत होकर मध्यबिन्दु में विलीन हो जाती है। यह द्वितीय अवस्था ही है प्रणव का कैवल्य अथवा शुद्धावस्थान। ऋषि कौषीतक प्राचीन काल में इसके उपासक थे। (प्रथम अवस्था है सृष्टि की ओर उन्मुख अवस्था) ऋषि कौषीतक ने अपने पुत्र को सर्वप्रथम इसी प्रथम उपासना करने को कहा था (सृष्टि की ओर उन्मुख अवस्था की उपासना)। प्रणव के अधिदेव हैं सूर्य। अध्यात्म दृष्टि से यही हैं प्राण।

प्रश्नोपनिषद् (5/1–7) में अंकित है कि ॐकार का अभिध्यान मृत्युकाल-पर्यन्त करने से अभिध्यान की विभिन्नता के कारण विभिन्न लोक अधिकृत हो जाते हैं। यह ॐकार ही है पर तथा अपर ब्रह्म। एक मात्रा के अभिध्यान के फलस्वरूप जीव उसके द्वारा संवेदित होकर शीघ्र ही पृथ्वी को प्राप्त होते हैं। इस समय उसे ऋक् मनुष्य लोक में पहुँचा देता है। इस स्थान में वह तपस्या, ब्रह्मचर्य एवं श्रद्धा द्वारा सम्पन्न होकर महिमा का अनुभव करता है। द्विमात्रा के अभिध्यान के कारण मनःसम्पत्ति उत्पन्न हो जाती है। इस समय यजुः उसे अन्तरिक्ष में ले जाता है। वह सोम लोक को जाता है, वहाँ विभूति का अनुभव करके पुनरावर्त्तन के कारण वापस आ जाता है। त्रिमात्र अर्थात् ॐ अक्षर द्वारा परम पुरुष के अभिध्यान के प्रभाव से तेज अथवा सूर्य में सम्पत्ति उत्पन्न होती है। अब साधक का सूर्य के साथ तादात्म्य हो जाता है। जैसे साँप की केंचुल संकुचित होती है, उसी प्रकार सूर्यमण्डलस्थ आत्मा का समस्त पाप अथवा मल विमुक्त हो जाता है। इस स्थान से सोम उसे ब्रह्मलोक ले जाता है। साधक सूर्य में ही परात्पर पुरुष में शायित पुरुष का दर्शन करते हैं। तीन मात्रा ही पृथक्-पृथक् विनश्वर तथा मृत्युमुखी हो जाती है, परन्तु एकीभूत होने पर वही अजर तथा अमरता को प्राप्त कराती है।

---

1. ये रश्मिमालाएँ पूर्णतः पथ के समान हैं। जैसे पथ एक गाँव से दूसरे गाँव तक विस्तृत रहता है, ऐसे ही समस्त रश्मियाँ इहलोक से परलोकपर्यन्त विस्तृत रहती हैं। इसका एक छोर सूर्यमण्डल में रहता है, दूसरा छोर नाड़ीचक्रपर्यन्त रहता है। सुषुम्नि में जीव-इसी नाड़ी में प्रवेश करते हैं। सुषुप्ति में स्वप्न नहीं रहता। शान्ति रहती है। वह है तेजस्थान। देहत्याग के अनन्तर जीव इन्हीं रश्मियों का अवलम्बन करके ॐकार भावना की सहायता से ऊपर उठ जाता है। संकल्प मात्र से मन में वेग आता है, तथा इसी वेग से वह सूर्यपर्यन्त ऊर्ध्व में उठ जाता है। सूर्य है ब्रह्माण्ड का द्वारस्वरूप। ज्ञानी इस द्वार का भेदन करके सत्य में अथवा अमरधाम में नहीं जा सकता। हृदय के चारों ओर असंख्य नाड़ियाँ (पथ) विस्तृत रहती हैं। केवल एक सूक्ष्म पथ ही ऊपर की ओर जा रहा है। इस सूक्ष्म पथ द्वारा चलने पर ही सूर्यद्वार का अतिक्रमण सम्भव है। अन्यान्य सभी पथ से चलने पर भुवनकोश में आबद्ध हो जाना पड़ता है। अभी तक भुवनकोश के केन्द्र में सूर्य के होने के कारण समस्त भुवन एक ही प्रकार से सौर लोकान्तर्गत रहते हैं। तथापि केन्द्र में प्रविष्ट न होने के कारण सौरमण्डल से बाहर जा सकना असम्भव हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इससे यह हृदयङ्गम होता है कि वेदत्रय पृथक् रूप से लोकत्रय को प्राप्त कराने वाले हैं। ऋक् भूलोक को, यजुः अन्तरिक्षलोक को तथा साम स्वर्गलोक को प्राप्त कराता है। ये तीनों पुनरावर्तनशील लोक हैं। यही है तीन मात्रा। वेदत्रय को घनीभूत करने के बाद ही ॐकार रूप ऐक्य का स्फुरण होता है।[1] इसके द्वारा पुरुषोत्तम का अभिध्यान होता है। जब वेदत्रय ही सूर्य एवं प्राण है, वेदों का घनीभूत प्रकाश है, तब सूर्य से ही प्रणव का विकास होता है, यह निःसन्दिग्ध तथ्य है।

हमारे ऋषियों का वक्तव्य है कि शुद्ध आत्मतेज अंशतः सूर्यमण्डल पार करके जगत् में आता है। शुद्धभूमि से जगत् में अवतीर्ण होने के लिए एवं जगत् में शुद्धधाम में जाने के लिए सूर्य ही द्वार है। पाइथागोरस (Pythagoras) कहते हैं कि सूर्य मात्र एक तेजधारक Lens मात्र हैं। इनसे आत्मज्योति जगत् में प्रकाशित होती है। प्लेटो का वक्तव्य है कि ज्योति (Kabalist) से परम पदार्थ का प्रथम विकास हुआ है। इसका नाम है Divine Intelligence। अपनी रश्मि से ईश्वर जिस तेज को प्रज्वलित करते हैं, वही है सूर्य (देखें - Timaeus)। सूर्य आलोक अथवा ताप का प्रभव नहीं है। यह है Focus। यह एक लेन्स मात्र है, जिसके द्वारा आद्य ज्योति के रश्मिसमूह स्थूल (Material) होकर हमारे सौर जगत् में एकत्र हो जाते हैं तथा नाना शक्ति की उत्पत्ति होती है।

सूर्य रश्मिमाला अनन्त है, जाति से तथा संख्या से भी अनन्त है। मूल प्रभा एक ही है। उससे शुक्लवर्ण ही लाल-नीला प्रभृति विभिन्न वर्णों का रूप लेता है और लाल-नीला इत्यादि वर्ण परस्परतः मिलित होकर और भी अनेक उपवर्णों के रूप में प्रकाशित होने लगता है। शुक्ल वर्ण से भी अतीत जो वर्णातीत तत्त्व रहता है, उसके साथ शुक्ल का संघर्ष होने पर इस प्रथम भूमि का विकास होता है। यह है अन्तः-संघर्षण का फल। यह वर्णातीत तत्त्व ही है चिद्रूपा शक्ति। इस प्रथम स्तर के परस्पर संयोग अथवा बहिः संयोग के कारण द्वितीय स्तर का आविर्भाव होता है। आपेक्षिक दृष्टि से प्रथम है शुद्ध सृष्टि, द्वितीय है मलिन सृष्टि।

इसे अन्य प्रकार से भी समझ लेना चाहिये। ब्रह्म हैं एक और अखण्ड। यह अविभक्त अवस्था में हैं, तथापि पुरुष एवं प्रकृतिरूप में द्विधा विभक्त हो जाते हैं। इस आत्मविभाग (Self Division) अथवा अन्तःसंघर्ष से उत्पन्न है स्वाभाविक

---

1. श्री वैष्णव भी स्वीकार करते हैं कि सूर्यमण्डल में प्रवेश किये बिना जीव का लिंगशरीर नष्ट नहीं होता। लिंगशरीर से मुक्ति मिले बिना जीव मुक्त कैसे होगा? जीव सूर्यमण्डल प्राप्त होने के पश्चात् ही पवित्र होता है। उसके क्लेश तभी समाप्त होते हैं। ऐसा महाभारत में भी कहा गया है। Pythagoras का मत है कि शुद्धिमण्डल सूर्य में स्थिर है। सूर्य जगत् के मध्य में स्थित है। जीव मात्र जिस स्थान में आने मात्र से अपने आत्मभाव को प्राप्त करते हैं तथा पवित्र हो जाते हैं, वह यह स्थान है। अरस्तू का भी मन्तव्य है कि जो पाइथागोरस के मत से शुद्धिमण्डल Sphere of Fire सूर्य है, उसका नाम है Jupitors Prison.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सृष्टि। निम्नवर्ती सृष्टि पुरुष एवं प्रकृति के परस्पर सम्बन्ध अथवा बहि:संघर्ष से आविर्भूत होती है। यही है मलिन मैथुनी सृष्टि। सूर्यविज्ञान का मूल सिद्धान्त हृदयङ्गम करने के लिए अवर्ण, शुक्लवर्ण, मौलिक विचित्रवर्ण तथा यौगिक विचित्र उपवर्णों को समझना चाहिये। विशेषत: शुक्लवर्ण, मौलिक विचित्रवर्ण तथा यौगिक विचित्रवर्ण को।

यहाँ जिस शुक्लवर्ण की बात कही गयी है, यही विशुद्ध सत्व है। इसके ऊपर जो अनन्त विचित्र रंगों की क्रीड़ा निरन्तर हो रही है, वही है विश्वलीला, वही है संसार। जैसे बाहर का रूप है, उसी तरह भीतर भी एक व्यापार विद्यमान है। पहले गुरु प्रदर्शित क्रम से इन सभी श्वेत स्फुरण को प्राप्त करके, उसके ऊपर यौगिक विश्लेषण से प्राप्त मौलिक विचित्र वर्णों को अलग-अलग (एक-एक करके) पहचानना होगा। मूल वर्ण को पहचानने के लिए सादे रंग की सहायता आवश्यक है। क्योंकि जिस प्रभा से रंग को पहचानना होगा, यदि वह प्रभा स्वयं रंगीन हो जाती है, तब उसके वास्तविक रंग का परिचय प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं है। क्योंकि रंगीन चश्मे से जो कुछ भी देखा जायेगा, वह दृश्य का रूप नहीं हो सकता। जैसे योगशास्त्र के अनुसार चित्तशुद्धि के अभाव में तत्त्वदर्शन सम्भव नहीं है, उसी प्रकार सूर्यविज्ञान में वर्णशुद्धि के अभाव में वर्णभेद का तत्त्व जान सकना असम्भव है। हम जो कुछ देखते हैं, वह सबकुछ मिश्रण है। उसका विश्लेषण करने के अनन्तर संघटक शुद्ध वर्ण का साक्षात्कार मिलता है। इन सभी वर्णों को पृथक्-पृथक् सादे वर्ण के ऊपर स्थापित करके पहचानना होगा। सृष्टि में कहीं भी शुद्ध शुक्लवर्ण नहीं है। जो है भी वह आपेक्षिक है।

प्रथमत: कौशल द्वारा विशुद्ध शुक्लवर्ण को प्रस्फुटित करना होगा। यह प्रस्फुटित करना और कुछ नहीं है, क्योंकि पहले ही कहा जा चुका है कि समस्त जगत् शुद्ध श्वेतवर्ण पर क्रीड़ा कर रहा है। इन सभी रंगों के खेल को स्थान विशेष में अवरुद्ध कर देने मात्र से वहाँ तत्क्षणात् शुक्ल तेज का विकास हो जाता है। इस शुक्ल को कुछ समय स्तम्भित करके पूर्वोक्त सभी विचित्र वर्णों के स्वरूप को पहचान लेना होगा। इस प्रकार से वर्ण-परिचय हो जाने के अनन्तर सकल वर्ण संयोजक एवं वियोजक को अपने अधीन कर लेना होगा। कुछ वर्णों के निर्दिष्ट क्रम से मिलन के अनन्तर निर्दिष्ट वस्तु की सृष्टि होती है। क्रमभंग हो जाने से सृष्टि नहीं होती। यह सीखना होगा कि किस वस्तु में कौन-कौन वर्ण विद्यमान रहता है? इन सभी वर्णादि को उस क्रम से सजाने से ही ठीक उसी वस्तु की उत्पत्ति होगी। अन्यथा नहीं होगी। जगत् के समस्त पदार्थ ही जब मूलत: वर्ण-संघर्ष से युक्त रहते हैं, तब जो पुरुष वर्ण परिचय तथा वर्ण संयोजन एवं वियोजन की प्रणाली जानते हैं, उनके लिए इन सब पदार्थों की सृष्टि तथा संहार न कर सकने का कोई कारण नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधारणत: लोक में जिसे वर्ण कहा जाता है, वह सूर्यविज्ञान की दृष्टि में वर्ण नहीं है, वर्ण की छटा-मात्र है। शुद्ध सत्व का आश्रय लिये बिना वास्तविक वर्ण की खोज का कोई उपाय ही नहीं है। काकतालीय न्याय से भी प्राप्त कर सकना कठिन होता है, क्योंकि एक ही वर्ण से सृष्टि नहीं होती। एकाधिक वर्ण के संयोग से सृष्टि होती है। भारतवर्ष में प्राचीन काल में वैदिक लोगों के समान तांत्रिक लोग भी इस विज्ञान का तत्त्व भली प्रकार जानते थे। इसे जानकर ही वे लोग मन्त्र, मन्त्रेश्वर, मन्त्र-महेश्वर के पद पर आरोहण कर सकने में समर्थ होते थे। क्योंकि वे वर्णशुद्धि के तत्त्व को जानते थे। उन्हें ज्ञात था कि वर्ण एवं कला नित्य संयुक्त रहते हैं।

सूर्यविज्ञान के अनुसार सृष्टि-प्रक्रिया के आरम्भ का मैंने वर्णन किया। यहाँ स्मरण रखना होगा कि वैज्ञानिक सृष्टि मूल सृष्टि नहीं है। विषय को और भी स्पष्ट रूप से कहना है। दृष्टान्त रूप से मान लिया कि कर्पूर की सृष्टि करना है। मान लिया कि सूर्यविज्ञान के अनुसार क-म-त-र इन चार रश्मियों का इस प्रकार का संयोग कर्पूर को उत्पन्न करता है। अब उद्बुद्ध श्वेत वर्ण के ऊपर क्रमश: क, म, त, र इन चार रश्मियों को छोड़ने से कर्पूर की गन्ध मिलेगी। परन्तु एकसाथ 4 रश्मियों को डालने से कोई लाभ नहीं होगा। सृष्टि सर्वदा काल में सम्पन्न होती है। क्रम है काल का धर्म। अतएव क्रमलंघन सम्भव नहीं है। इस कारण सत्वशोधन करके उसके ऊपर प्रथमत: 'क' वर्ण की (शुद्ध श्वेत वर्ण के ऊपर 'क' वर्ण की रश्मि पातन) किरण का अर्पण करने से शुद्ध स्वच्छ श्वेतवर्ण 'क' आकार में आकारित तथा वर्ण से रंजित हो जायेगा। शुद्ध स्वच्छ वर्ण (शुद्ध सत्व) ही वास्तविक आकर्षण है। शक्ति का मूल है। इसी से यह 'क' को आकर्षित करके रखता है। स्वयं भी उस भाव में भावित हो जाता है। इसके अनन्तर 'म' वर्ण की रश्मि के पातन (अर्पण) से वह उसमें मिलकर उसके अन्तर्गत हो जायेगी। इसी प्रकार 'त' तथा 'र' के विषय में भी यही होगा। 'र' अन्तिम वर्ण है। इसे अर्पित करते ही कर्पूर अभिव्यक्त हो जायेगा। अव्यक्त कर्पूर की अभिव्यक्ति का यही होगा आदिक्षण।

अब यदि क-म-त-र इन रश्मियों के इस संघात को अक्षुण्ण रखा जाये, तब यह अभिव्यक्ति अक्षुण्ण रहेगी। इनकी अव्यक्तावस्था नहीं आयेगी। परन्तु दीर्घकाल-पर्यन्त उसे रख सकना कठिन होगा। इसके लिए विशेष चेष्टा करनी होगी, क्योंकि जगत् गमनशील है। यहाँ एक रहस्यमय गम्भीर बात है। अव्यक्त कर्पूर जहाँ व्यक्त हो गया, उसे पुष्ट करने के लिए, धारण करने के लिए यन्त्र का प्रयोजन है। यह है योनि। यह व्यक्त कर्पूर तो लिंगमात्र है। योनिरूपा शक्ति है प्रकृति की अन्तर्निहित लालिमा। उसका आविर्भाव भी शिक्षा सापेक्ष है। यद्यपि समस्त वर्ण के समान यह लालिमा विश्वव्यापी है, तथापि इसकी भी अभिव्यक्ति होती है। अन्तिम वर्ण 'र' के संघर्ष से जिस समय कर्पूर सत्ता केवल लिंगरूप से अलिंग-अव्यक्त सत्ता से आविर्भूत थी, उस समय यह लालिमा ही अभिव्यक्त होकर उसको धारण करती और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे स्थूल कर्पूररूपेण प्रसव करती है। विश्वसृष्टि की यवनिका की ओर से यही गर्भाधान तथा प्रसव-क्रिया निरन्तर चलती रहती है।

सूर्यविज्ञानवेत्ता प्रकृति के इसी कार्य को देखकर उसके ऊपर अधिकार करने की चेष्टा करते हैं। संयोग की तीव्रता के अनुसार सृष्टि-विस्तार का तारतम्य होता है। कर्पूर का सत्वरूप से आविर्भाव है विलक्षण-अभिनव सृष्टि। उसके परिणाम अथवा मात्रा की वृद्धि होगी quantitive सृष्टि। मात्रा वृद्धि अपेक्षाकृत सहज कार्य है। जो एक चुटकी कर्पूर निर्माण कर सकते हैं, वे उसे क्षण काल में लाख गुना कर सकते हैं। प्रकृति का भण्डार जो है, वह है अनन्त-अपार। उससे संयोजन करके दोहन कर सकने पर जिस किसी भी परिमाण में वस्तु का आकर्षण हो सकता है।[1] परन्तु वस्तु की सत्ता का आविर्भाव करा सकना कठिन कार्य है। वही है स्थूल जगत् की बीज-सृष्टि।

यह बीज-सृष्टि भी प्रकृत-सृष्टि नहीं है। मूल बीज की भी सृष्टि नहीं है। ऊपर जिस अव्यक्त कर्पूर की सत्ता की बात कही गयी है, वही है मूल बीज। जिस लिंगरूप से बीज की बात कही गयी है, वह है स्थूल बीज। स्थूल बीज विभिन्न रश्मियों के क्रमानुकूल संयोग-विशेष से अभिव्यक्त होता है। परन्तु मूलबीज है अलिंग-अव्यक्त-प्रकृति रूप आत्मभूत तथा नित्य। ऐसे अनन्तबीज विद्यमान हैं। प्रत्येक बीज में एक आवरण है। उसके कारण वह विकारोन्मुख नहीं हो सकता, स्थूल बीजरूप में परिणत नहीं हो सकता। सूर्यविज्ञान द्वारा रश्मि विन्यास प्रक्रिया से इस मूल बीज को व्यक्त करके सृष्टि का कार्य किया जाता है।

इस बीज को व्यक्त करने के अन्य अनेक कौशल हैं। वायुविज्ञान-शब्दविज्ञान इत्यादि विज्ञानों द्वारा बिना रश्मि विन्यास के ही अन्य उपाय से वस्तु की अभिव्यक्ति का कार्य होता है। पूज्य विशुद्धानन्ददेव ने इन विज्ञानों द्वारा भी सृष्टि-प्रक्रिया कैसे संघटित होती है, यह योग्य अधिकारीगण को दिखलाया था। इन पंक्तियों के लेखक ने भी सौभाग्यवशात् वह सब अनेक बार देखा था।

सृष्टि की आलोचना करते-करते तीन प्रकार की सृष्टि की बात कही जाती है। प्रथम है परासृष्टि, द्वितीयतः ऐश्वरिक सृष्टि, तृतीय है वैज्ञानिक अथवा ब्राह्मी

---

1. शून्य को किसी बड़ी से बड़ी संख्या में गुणा करने पर भी एक बिन्दुमात्र सत्ता की उपलब्धि नहीं होगी। परन्तु अति सूक्ष्म सत्ता की संख्या से गुणा करने पर मात्रा-वृद्धि हो जाती है। यदि किसी में सरसों भर भी पवित्रता है, कृपा द्वारा महापुरुष उसका उद्धार कर सकते हैं। कुछ रहने पर ही उसकी वृद्धि हो सकती है। लेकिन जहाँ कुछ है ही नहीं, अर्थात् अभिव्यक्त रूप से विद्यमान नहीं है, वहाँ बाहर की सहायता से कोई लाभ नहीं है। तब साधक को अपनी चेष्टा से उसको भीतर से जाग्रत् करना होगा। यही है पौरुष।

श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के पात्र से बिन्दु बराबर अन्न लेकर उससे हजारों ऋषिगणों को तृप्त किया था। देश-विदेश के महापुरुषों के जीवन में ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सृष्टि। सूर्यविज्ञान के बल द्वारा जिस सृष्टि का वर्णन किया है, वह तृतीय प्रकार की ही सृष्टि है।

महासृष्टि

सूर्यविज्ञान में सृष्टि (वस्तु-सृजन) की स्थिति कही गयी है। इसी के साथ महासृष्टि का भी तत्त्व हृदयङ्गम करना आवश्यक है। सृष्टि का आदि है, अन्त है, साथ ही इसका आदि भी नहीं है, अन्त भी नहीं है। अज्ञान, माया तथा शक्ति की क्रीड़ा अनादि काल से चलती चली आ रही है। किन्तु वह तो शेष हो जायेगी। अनादि सान्त! जिसमें स्फुरण है उसकी beginning है, end नहीं है। सादि अनन्त। दो को एकत्र करने पर वह अनादि अनन्त रह गया। यह सब वेदान्तीगण कह गये हैं।

इस सृष्टि को हम खण्ड दृष्टि से देखते हैं। इस सृष्टि की पृष्ठभूमि में महासृष्टि है। यह Conception पृथ्वी की किसी फिलॉसॅफी में नहीं है। यह महासृष्टि की कल्पना सम्पूर्ण विश्व में कहीं भी नहीं है। महासृष्टि कहने से जो स्थिति आगमशास्त्र में है, उसे सामान्यत: तंत्रज्ञ भी नहीं जानते। अभिनवगुप्त प्रभृति बड़े-बड़े तांत्रिकों ने उसे Point out (व्यक्त) किया है। महासृष्टि में सबकुछ छिपा रहता है। और जो श्रेष्ठ योगी हैं, उसे Utilise (उपयोग) करते हैं। खण्ड सृष्टि तो सब जानते हैं। महासृष्टि को समझ पाना अत्यन्त कठिन है। अथच यह है। जो सिद्ध महापुरुष हैं, उनको महासृष्टि का सन्धान मिला है। वह क्या है? मान लो कि 10 लोगों के साथ बुद्धदेव भिक्षा करने निकले। इस प्रसंग में वह एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ कोई भिक्षा मिल ही नहीं सकती, अथच क्षुधा जोरों से लग गयी! जिसे जो चाहिये, देना होगा। सब वस्तु Ready-made तैयार! कहाँ से मिले? मैं उत्तर में कहता हूँ 'महासृष्टि से मिलेगी।' तब यह सुनकर बाबा विशुद्धानन्दजी ने कहा, "महासृष्टि की बात तो कही, क्या एक-एक तैयार करके मिलेगा? यह नहीं, सबकुछ वहीं है।" ऐसी अनेक घटनाएँ बताई जा सकती हैं। ईसाईयों में, मुसलमानों में, सब स्थान पर है, किन्तु उसके Interpretation को पूर्ण रूप से कहीं नहीं किया गया। सब कहते हैं कि चमत्कारी शक्ति (Miraculous Power) जो है, उससे हो जाता है। यह समझने की, खोजने की अवस्था किसी की नहीं है। जो महासृष्टि है, उसमें सबकुछ तैयार है। तुरन्त खा सके ऐसी गरम-गरम पूड़ी आदि भी है। माँ के पास सब है। माँ क्या Philosophy करती हैं? माँ Philosophy नहीं करतीं, किन्तु वहाँ सबकुछ है।

200 लोगों को निमन्त्रित किया गया था। 500 लोग आ गये। तब स्वामीजी नहीं थे। किसी कार्य से गये थे। सब भूख से छटपटा रहे थे। समय हो गया, भूख लगी है, तब जगह करके बैठाने की व्यवस्था हो रही थी। तब बात हो रही थी कि बैठाने की जगह करके क्या होगा? 500 लोग बैठ जायेंगे और खाना तो 200 लोगों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का तैयार है! सबको कैसे खिलाया जा सकेगा? न खिला पाना तो लज्जा की बात है। तब यह तय हुआ कि देर से बैठाया जाये (ताकि विलम्ब से कुछ लोग वापस चले जायें)। वैसी ही विलम्बित व्यवस्था होने लगी। उधर सभी Complaint करने लगे कि भूख लग रही है। माँ (माँ आनन्दमयी) के कानों में बात पहुँची। माँ आकर कहने लगीं, "जगह करके बैठाओ।" तब माँ से असलियत बतायी गयी। तब माँ ने कहा, "मैं तो हूँ। बैठा दो।" सबका भोजन आनन्दपूर्वक सम्पन्न हो गया।

"मैं तो हूँ" इस एक वाक्य में कितनी बड़ी Philosophy निहित है। ऐसी घटना ईसाईयों में, अनेक में है। How to enterepret it? वे इसकी Philosophy नहीं जानते। एक गिरजाघर के पादरी के पास खाना था चार लोगों का और आ गये 15-20 लोग! किन्तु सबने भरपेट खाया। कहाँ से आया? इससे यह लगा कि एक Divine Power है। वह Miracle करता है। यह Miracle नहीं है। समझने की बात है। समझें तो कैसे? बात बुद्धि से अतीत की है। अथच यह सब सत्य है।

महासृष्टि के सम्बन्ध में यदि किसी की धारणा हो अथवा न हो, तथापि यदि गुरुकृपा है, तब एक सेकेण्ड पर्याप्त है। लेकिन वह वस्तु तो होनी चाहिये (वस्तु = आधार)। यदि नहीं है, तब उपादान को पकड़े-पकड़े वह किया जा सकता है। और महाशक्ति का (महासृष्टि का) Conception जिसे Clear हो गया हो (भीतर में) और वह आकर्षण-विकर्षण कर सके, तब महासृष्टि से सबकुछ आ सकता है। महासृष्टि में सभी है। उसके सम्बन्ध में एक लाख वर्ष भी कहा जाये, तब भी वर्णन का अन्त नहीं होगा। वहाँ (उस स्थिति में) जो कुछ कल्पना किया जाये, सब सत्य, सब वहाँ है। यह सब समझाने के लिए महासृष्टि की Theory कह रहा हूँ। वहाँ तो सब है।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यविज्ञान (परिशिष्ट)

सूर्यविज्ञान जगत् का शिरोमणि है। इसकी बात सुनकर कोई यह न समझे कि यह पाश्चात्य विज्ञान के समान जड़ विज्ञान है। वास्तव में जड़ नामक कोई वस्तु नहीं है। जिसे हम साधारणतः जड़ विज्ञान कहते हैं, वह भी जड़ नहीं है। विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। तथाकथित जड़ तथा चेतन, ये दोनों ही विज्ञान के विषय हैं। सूर्य इसका केन्द्र है और प्रधान आश्रय होने के कारण इसे सूर्यविज्ञान भी कहते हैं। शास्त्र कहता है कि ऐसा एक पदार्थ है जिसका ज्ञान मिल जाने पर सर्वविषयक विज्ञान स्वयमेव उपलब्ध हो जाता है। श्रुति का यह अनुशासन ब्रह्मविज्ञान का अवलम्बन करके प्रवृत्त होता है। किन्तु उस विज्ञान का स्वरूप क्या है, किस उपाय से उसे कार्यक्षेत्र में आयत्त करना पड़ता है, इसका बाबा विशुद्धानन्ददेव ने विशेषतः अनुसन्धान किया था। उनको ज्ञात था कि सूर्य ही समस्त विज्ञान का मूलस्तम्भ है। सृष्टि-स्थिति-संहार, एक प्रकार से जागतिक तथा व्यावहारिक सबकुछ सूर्याधीन है। इच्छाशक्ति-ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति का प्रसार सूर्य से ही होता है। यही नहीं, सूर्य ही देवयान पथ का लक्ष्य भी है। इसे मुक्तिद्वार कहना भी अत्युक्ति नहीं है। विशुद्ध आत्मज्ञान, स्वरूपोपलब्धि के लिए सौर तत्त्व का आश्रय ग्रहण करना पूर्णतः आवश्यक है। अतः योग का जो चरम उद्देश्य है, विज्ञान का भी वही है। सूक्ष्मतः आलोचना से यह विदित होगा कि विज्ञान भी एक प्रकार से महायोग है और जिसे हम योग कहते हैं, वह भी मूलतः विज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं है। केवल प्रणाली का भेद-मात्र है। अतः साधक के लिए दोनों में समान रूप से समभाव आवश्यक है। योगपथ में विज्ञान सहायक है। वैसे ही विज्ञानपथ में योग परम सहायक है।

सूर्यविज्ञान आयत्त करने पर अन्यान्य विज्ञान (जो कि उसके अंग हैं) सहज ही आयत्त हो जाते हैं। योगशास्त्र में सर्वज्ञातृत्व एवं सर्वभावाधिष्ठातृत्व नामक सिद्धि जैसी समस्त खण्डसिद्धियों का चरम उत्कर्ष है। विज्ञानराज्य इसी सौरविज्ञान के अन्तर्गत का खण्ड विज्ञानराज्य है। बाबा विशुद्धानन्द देव ने प्रतिभा-बल से योग तथा विज्ञान, दोनों क्षेत्र में समान रूप से प्रवीणता प्राप्त की थी। ऐसा मणिकाञ्चन योग अन्यत्र दुर्लभ है। प्राचीन ऋषियों में शिक्षा का जोर था। उन्होंने गुरुकृपा से तथा अपने अध्यवसाय के बल से उसका उपार्जन किया था। तभी वे जगत्, जगदीश्वर तथा अनादि महाशक्ति के रहस्य का प्रत्यक्ष कर सके थे। प्राकृतिक शक्तियों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी इच्छा के वश में करने का अधिकार प्राप्त किया था। उन्होंने लक्ष्य तथा अपने बीच किसी भी प्रकार के आवरण को नहीं रहने दिया। केवल शास्त्रवाक्य सुनने से धर्मजीवन की प्राप्ति नहीं होती। शास्त्रवाक्य आर्ष है, एक प्रकार से अभ्रान्त है, तथापि वह पूर्ण ज्ञान का प्रसव नहीं कर सकता। केवल वाक्यों से वस्तुविषयक प्रत्यक्ष ज्ञान उद्भूत नहीं होता। साथ ही प्रत्यक्ष के बिना आवरण भंग होना भी सम्भव नहीं है। गुरुपदेश का अवलम्बन करके धैर्य, श्रद्धा, संयम तथा अध्यवसाय के साथ अक्लान्त रूप से कठोर तपस्या करके उन्होंने जिस गम्भीर सत्य की हृदय के अन्तर्देश में उपलब्धि की थी, जिस संशयरहित परिपूर्ण विज्ञान-तत्त्व को आयत्त किया था, वह केवल ग्रन्थ-पाठ से सम्भव नहीं हो सकता।

जो विज्ञान विज्ञान-जगत् का शिरोमणि है, जिस पर अधिकार हो जाने पर समस्त अभाव दूर हो जाते हैं, तथा जीव अपनी जन्मकालीन अर्थात् व्यक्तिगत प्रकृति का आमूल परिवर्तन करके विशुद्धावस्था आयत्त कर लेता है, जो भारत का निजस्व होकर भी इस समय देश से लुप्त हो चला है, उसे अत्यन्त दुष्कर क्लेश से दुर्गम पर्वतीय प्रदेश से प्राप्त करके सुदीर्घकालीन साधना द्वारा उन्होंने सिद्ध किया था। इस विज्ञान की क्षमता असाधारण है। यहाँ तक कि उसे असीम क्षमता-युक्त भी कहा जा सकता है। बाबा कहते थे कि योगशास्त्र में ऐसी कोई भी अलौकिक सिद्धि वर्णित नहीं है, जो इस विज्ञान द्वारा प्राप्त न हो सके। पातञ्जल योगदर्शन, शिवपुराणादि पौराणिक ग्रन्थ, तन्त्र, बौद्ध तथा जैन योगविषयक ग्रन्थ, सूफी, ईसाई सिद्धों की ग्रन्थमाला कथा में ऐसी कोई सिद्धि वर्णित नहीं है, जो सूर्यविज्ञान द्वारा न पाई जा सके।

बाबा विशुद्धानन्द के अनुसार ज्ञान से विज्ञान श्रेष्ठ है। ज्ञान का सार ही विज्ञान है। तत्त्व को सामान्य भाव से जानना है ज्ञान। उसे विशेष रूप से जानकर सम्पूर्ण रूप से अपने अधीन करना है विज्ञान। ज्ञान से परमात्मा की तृतीय भूमि-पर्यन्त गति होती है। किन्तु तुर्यातीत महाशक्ति का स्वरूप जानने के लिए, परमतत्त्व को पाने के लिए विज्ञान ही एकमात्र गति है। ज्ञानी का चित्त भी भगवती महामाया के मायाचक्र में पतित होकर मोहावर्त्त में डुबकी खाने लगता है, किन्तु जब ज्ञान विज्ञान रूप में परिणत हो जाता है, जब एक ओर शुद्धा भक्ति तथा दूसरी ओर शुद्धा कृपा उदित होकर महाशक्ति के सुशीतल अंक में भक्त का आकर्षण कर लेती है, तब अब पतन की आशंका नहीं रह जाती। विज्ञान के उज्ज्वल आलोक में ज्ञान तथा अज्ञान समसूत्र होकर निष्प्रभ हो जाता है। द्वैत-अद्वैत, नित्य-अनित्य, गति-स्थिति का समभावेन दर्शन करने के लिए विज्ञान ही एकमात्र आश्रय है।

सूर्य का आश्रय लेकर ही ज्ञान तथा विज्ञान विकसित होता है। विज्ञान का उद्देश्य है कि इस विराट् इन्द्रजाल के मूलसूत्र का आविष्कार करना। वर्णमाला के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संयोग तथा वियोग से ही जगत् के समस्त व्यापार संघटित होते हैं। सृष्टि-प्रलय इसी का ही अवश्यम्भावी फल है। विज्ञानवित् कार्यमात्र के उपादान तथा निमित्त के स्वरूप से विशेषतः अवगत होकर विधाता का कला-कौशल साक्षात् रूप से पकड़ लेते हैं। यहाँ तक कि कुछ अंश में विधाता का ऐश्वर्य भी प्राप्त कर लेते हैं। यही नहीं, इच्छा करने पर विधाता को भी अतिक्रम करके सर्व मूलभूता अनादि महाशक्ति के श्रीचरणपर्यन्त उपस्थित हो जाते हैं।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यविद्या (सूर्यविज्ञान)

(कविराजजी ने समय-समय पर इस सम्बन्ध में जो स्फुट संकेत दिये थे, यह उनका संकलन उनकी ही भाषा में है, सूत्ररूप है।)

बीज के कार्य और कल्पना में क्या अन्तर है? यह बाह्य जगत् कल्पना मूल है। अन्तर में इसी के आभासमान होने से कल्पना स्फुटित होती है। लेकिन अन्तर में जाकर स्थिर रहती है। जैसे फोटोग्राफ स्थिर है। Flow हीन वैसे। अन्तराकाश में इस आभास को फोकस करके स्पष्ट किया जा सकता है, प्रत्यक्ष किया जा सकता है, तथापि यह सत्य नहीं है, क्योंकि उसकी Life नहीं है। उसमें Flow नहीं है। जैसे कोई गुलाब। मन में उनका आभास है। एकाग्रवत् करने से वह स्पष्ट होता है। अभी उसमें Flow नहीं है। ठीक से एकाग्र करने पर Flow आ सकता है। एकाग्रता से ही बीज को आकृष्ट किया जा सकता है। वह एक काल का है। उसमें Becoming नहीं है। बीज इसके ठीक विपरीत है। उस आभास को कारण में ले जाने पर बीज मिलेगा, गुलाब की मूल सत्ता मिलेगी। उससे जीवन्त Flowing गुलाब को मिलेगी।

❑ ❑ ❑

गुलाब-प्रकृति = शुद्ध गुलाब, मिश्र नहीं। स्थूल नहीं सूक्ष्म। वही गुलाब की आत्मा अथवा Idea है। गुलाब प्रकृति को Isolated भाव से देखा जा सकता है। Isolated भाव से देखने पर उससे जात्यन्तर परिणाम नहीं हो सकता। स्व-प्रकृति के तरंगरूप में देखने से उस गुलाब प्रकृति की Coordinate सोना प्रकृति भी देखी जा सकेगी। (सभी वस्तु सर्वात्मक है, अतः गुलाब में गुलाब प्रकृति बाहर होने से वह गुलाब प्रतीत होता है। अन्य प्रकृति उसमें निहित है। यदि सुवर्ण प्रकृति देखना हो, लौह प्रकृति देखना हो—वह सब उसमें है। बस कौशल से बाहर करना होगा) फिर उस सोना-प्रकृति में सकाम ईक्षण करते ही उसकी आपूर्ति होकर सुवर्ण का आविर्भाव होगा। उस समय गुलाब का आविर्भाव नहीं रहेगा। तथापि गुलाब प्रकृति अवश्य रहेगी। क्योंकि प्रकृति का ध्वंस नहीं होता। इस तरह से एक विकार अन्त में बदलता है। प्रकृति में लौटकर बदलता है।

सभी प्रकृति का मूल है सत्व (शुद्ध)। अतः गुलाब की प्रकृति उज्ज्वल ज्योतिरूपेण प्रकट होती है। सुवर्ण आदि की प्रकृति वहीं पर मिलेगी। प्राकृतिक सत्व में मूल प्रकृति है। इसमें इस जगत् का सभी सत्व है। अप्राकृत सत्व में इस जगत् का कोई उपादान नहीं है। इसमें दो व्यापार हो सकते हैं। पहला है योग, इसमें व्यापक प्रकृति दर्शन के रूप में सोना प्रकृति के दर्शन की इच्छा आवश्यक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकाम ईक्षण करने से सोना प्रकृति सोना (सुवर्णरूपेण) प्रकट हो जाती है। योगसृष्टि में ज्ञान गौण है, इच्छा प्रधान है। योगी की इच्छा ही प्रकृति को क्षुब्ध करके इच्छित विषयीरूप में आविर्भूत होती है।

लेकिन सूर्यविज्ञान में व्यापक प्रकृति दर्शन के अंगरूप में सुवर्ण की प्रारम्भिक इच्छा रखनी होगी। तदनन्तर कौशल से प्रकृति को क्षुब्ध करना होगा। तब इच्छित वस्तु प्राप्त होगी। निर्मित होगी।

❑ ❑ ❑

मान लीजिये एक गुलाब है। यह एक प्रकार का सत्व है। मूल सत्व अखण्ड है। पहले उसका विकास चाहिये। उसमें खण्ड (विशिष्ट खण्ड सत्व) का विकास चाहिये। यह सत्वांश बहिर्गत होते ही अर्थात् जड़ स्तर में पड़ते ही वह स्थूलावरण से घिरेगा। यही है गुलाब सृष्टि। यह सत्वांश अव्यक्त है। गुलाब रूप कार्य है। तत्तत् रंग के समावेश का तात्पर्य है, इस सत्व का प्राकट्य। उस विशिष्ट समावेश के न होने तक ही सत्वांश अव्यक्त—अप्रकट है। वैसा समावेश होने से ही सत्वांश बाहर आ जाता है। सूक्ष्म ही स्थूल हो जाता है। अव्यक्त वस्तु व्यक्त हो जाती है। रंग तो केवल व्यंजना ही है। विज्ञान सूर्य-रश्मि अथवा रंग से कार्यारम्भ करता है। अर्थात् भिन्न-भिन्न रंग का समावेश कर देता है। उसी के अनुसार सत्वांश स्थूलता प्राप्त करके इच्छित वस्तु के रूप में व्यक्त हो जाता है।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यविज्ञान का चमत्कार

एक दिन सन्ध्या के पश्चात् पुरीधाम आश्रम में बाबाजी सन्ध्यादि प्रक्रिया के अनन्तर आश्रम के बरामदा में विश्राम कर रहे थे। तब अचानक मेरे मन में चैतन्य चरितामृत का एक श्लोक याद आ गया जिसमें श्रीकृष्ण भगवान् की अंगगन्ध का उल्लेख है। मैंने बाबाजी से पूछा, "चैतन्य चरितामृत में तथा गोविन्द लीलामृत प्रभृति ग्रन्थों में श्रीकृष्ण की जिस अंगगन्ध का वर्णन है, क्या वह स्निग्ध है?" बाबाजी ने कहा कि, "उक्त श्लोकों में किन-किन द्रव्यों से उस अंगगन्ध की वर्णना की गयी है?" मैंने बाबाजी को उन श्लोकों में वर्णित नीलोत्पल, कस्तूरी प्रभृति द्रव्यों का नाम बतलाया। बाबाजी एक-एक द्रव्य का नाम सुनकर हस्त संचालन करने लगे। जब सभी द्रव्य उल्लिखित हो गये, तब उन्होंने अपनी हथेली मेरे सामने करके कहा कि "यह श्रीकृष्ण की अंगगन्ध को सूँघो। तुमने जिन-जिन द्रव्यों का नाम कहा था, मैंने साथ-साथ उस उपादान का आकर्षण करके सबकी गन्ध को सम्मिलित कर दिया। देखो कैसा बोध होता है।" देखा कि अपूर्व दिव्य गन्ध। जगत् में जिसकी तुलना नहीं है। अगले दिन एक शीशी भर कर इस अपूर्व गन्ध को बाबाजी ने सूर्य-रश्मि द्वारा तैयार किया। मैंने पूछा, "बाबा, इतनी विभिन्न वस्तुओं का केवल नाम सुनकर आपने कैसे उनका आकर्षण कर लिया?" बाबा ने बतलाया, "इसमें कष्ट क्या? यदि स्वयं में आकर्षण करने की क्षमता है तथा उपादन का ज्ञान है, तब कठिनाई क्या? जहाँ तक सूर्य-रश्मि का विस्तार है, तहाँ तक जो कुछ है उसे खींच कर लाया जा सकता है। बृहत्-बृहत् स्थूल वस्तु तक को दूरदेश से अल्प समय में ही लाया जा सकता है। इसमें आश्चर्य की कोई भी बात नहीं है। समस्त जगत् में विधाता का जो अपूर्व कौशल चल रहा है, उसे तुमलोग पकड़ नहीं सकते, इसी कारण इसे आश्चर्य मान रहे हो। जब कौशल सीख लोगे, तब समझोगे कि एक ब्रह्माण्ड-रचना करना भी असम्भव नहीं है।" मैंने उन्हें विज्ञान द्वारा थर्मामीटर का आकर्षण करके काम हो जाने पर उसे वापस विज्ञान-शक्ति द्वारा प्रत्यावर्तित करते प्रत्यक्ष देखा था।

❑ ❑ ❑

सन् 1931 ई० में वाराणसी स्थित विशुद्धानन्द कानन आश्रम में नवमुण्डी आसन की प्रतिष्ठा का अवसर था। मेरे अन्यतम गुरुभाई डॉ० शोभाराम बसु के ऊपर समस्त व्यवस्था का भार था। इसके लिए 4 सिल्क की चादर का मूल्य 80/- देने का भार मुझ पर रखा गया। अगले दिन मैं 10/- के आठ नोट एक लिफाफा में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखकर आश्रम आया। तब अपराह्न का समय था। बाबा तब वहाँ दूसरी मंजिल के एक कमरे में आराम कर रहे थे। एक ओर बाबा के अन्य भक्त वहीं बैठे थे। वहीं डॉ० शोभाराम भी बैठे थे। मैंने रुपयों वाला लिफाफा बाबा के हाथों में देना उचित समझा। मैंने बाबा से कहा कि, "नवमुण्डी आसन की चादर के लिए यह 80/- दे रहा हूँ।" बाबा ने आश्चर्य प्रकट किया "एक चादर का दाम 80/-! इतना दाम!" डॉ० शोभाराम ने कहा कि, "20/- के हिसाब से 4 चादरों का दाम ठीक करके आया हूँ।" बाबा ने कहा, "इतने चादरों का क्या होगा। एक ही यथेष्ट है।" यह कहकर बाबा ने 10/- के दो नोट लिफाफा से निकाल कर रख लिये और बाकी छः नोट लिफाफे सहित मुझे लौटा दिये। साथ ही मुझे सचेत भी किया कि धन का अपचय अथवा अपव्यय नहीं करना चाहिये। मैंने उत्तर दिया कि, "यह रुपया सत्कार्य हेतु लाया हूँ, अतः इसे वापस लेने की इच्छा नहीं है। इसे किसी धर्मकार्य में लगा दिया जाये।" बाबा ने कहा कि, "ऐसा नहीं होगा। क्योंकि ज्ञानगंज से इसका प्रतिवाद होगा। अतः ज्ञानगंज का परामर्श तथा आदेश लेना होगा।" यह कहकर वे भीतर चले गये और कुछ समय पश्चात् वापस आकर कहा, "ठीक है। यह रुपया उमा भैरवी ज्ञानगंज के लिए ले जायेंगी।" तब मैंने कहा, "आप ही उन्हें दे दीजिएगा।" बाबा ने उत्तर दिया, "ना, मैं क्यों दूँगा। स्वयं भैरवी माँ तुम्हारे हाथों से ले जायेंगी।"

तब शीत का दिन था। चादर में सर छिपाये बैठा था। बाबा के आदेशानुसार इस लिफाफा को मुट्ठी में ताकत से बन्द करके उसे चादर के अन्दर छिपाकर उत्सुक रूप से प्रतीक्षा करने लगा। बाबा से यह भी जानना चाहा कि भैरवी माँ कितने समय में इसे ले जायेंगी? बाबा ने बतलाया कि इसी समय ले जायेंगी। तब बाबा ने अपनी आराम कुर्सी के हत्थे पर हाथ रखकर मुझसे पूछा, "क्या कुछ अनुभव किया?" मैंने उत्तर दिया, "स्पन्दन के अतिरिक्त कुछ भी अनुभव नहीं किया।" तब बाबा ने लिफाफा खोलकर देखने को कहा। मैंने चादर से हाथ निकाल कर लिफाफा को बाहर किया। देखा कि वह बन्द तो वैसे ही है, लेकिन भीतर नोट नहीं हैं। मैंने वह लिफाफा यत्नपूर्वक रख लिया। उसके ऊपर तथा भीतर भी अपूर्व सुगन्ध थी।

□ □ □

एक बार बाबा काशी वाले पुरातन आश्रम (हनुमानघाट के पास) में निवास कर रहे थे। प्रायः 8 बजे रात्रि 4-5 जन उपस्थित थे। मैं भी वहीं था। उस समय हमारी वार्ता पौराणिक विषयों पर आधारित थी। तभी एक उपस्थित व्यक्ति ने कहा, "पुराणों में अनेक अलौकिक अविश्वास्य बातों का उल्लेख है जो विश्वासयोग्य नहीं हैं। जैसे विष्णु की नाभि से निकले कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति। यह रूपक से अलग कुछ भी नहीं है।" यह सुनकर बाबा कह उठे, "जो वस्तु तुमलोगों की बुद्धि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से अगोचर है अथवा तुम्हारे ज्ञान से परे है, उसे तुम अस्वीकार न करो। तुम लोगों के प्रत्यक्ष तथा ज्ञान के बाहर भी अनेक वस्तुएँ हैं। परन्तु सत्य वस्तु तो सत्य ही रहती है। नाभिकमल था तथा वह अभी भी है।'' इस पर उस व्यक्ति ने कहा, ''नाभिकमल हमने कभी देखा नहीं तथा किसी ने देखा हो ऐसा भी नहीं सुना। ऐसी बात को कोई साइंटिस्ट कभी स्वीकार नहीं करेगा।'' तब बाबा ने कहा, ''तुम्हारे वैज्ञानिक कितना जानते हैं? देहतत्त्व अत्यन्त गम्भीर है। तब भी यदि तुमलोग नाभिकमल देखना चाहते हो, मैं दिखला सकता हूँ।''

यह कहकर वे अपने नाभिप्रदेश को हिलाने लगे तथा उसके ऊपर हाथ फेरने लगे। पहले नाभिप्रदेश में एक गहरा गढ़ा जैसा हो गया। तदनन्तर रक्तवर्ण हो गया। कुछ क्षण के अनन्तर उसमें से $1\frac{1}{2}$ फीट लम्बा अतीव सुगन्धयुक्त एक कमल बहिर्गत हो गया। देखकर सभी मन्त्रमुग्ध से बैठे थे। बाबा बोले, ''इस समय सूर्य का तेज अधिक नहीं है। नहीं तो छत तक के इतना बड़ा कमल हो जाता''। कुछ समय के अनन्तर वह कमल संकुचित होकर पुनः नाभि में चला गया।

❑ ❑ ❑

एक बार मैंने बाबा से आश्रम में एक प्रश्न किया। उस समय बाबाजी वाराणसी के पुरातन आश्रम (हनुमानघाट के पास) में निवास करते थे। तब प्रकृति-पुरुष के विषय में आलोचना चल रही थी। बाबाजी ने बतलाया, ''दो वस्तुओं का संघर्ष न होने से कार्य उत्पन्न नहीं होता। जगत् में जो वस्तु देखते हो, सभी संघर्ष के द्वारा उत्पन्न है। प्रकृति तथा पुरुष का विचार छोड़ दो। सभी वस्तुओं में प्रकृति-पुरुष का अंश है। अणु-परमाणु तक में यह विभाग है। जिसमें प्रकृति का भाग अधिक है, पुरुष का अंश अल्प है, उसमें पुरुष भाव अभिभूत हो जाता है। प्रकृतिभाव की प्रधानता हो जाती है। इसी प्रकार पुरुषांश की प्रधानता से प्रकृतिभाव अभिभूत हो जाता है। पुरुषांश प्रधान हो जाता है।''

इस समय बाबाजी के आसन पर एक गुलाब फूल पड़ा था। मैंने जिज्ञासा की, ''बाबा, यह गुलाब फूल पुरुष है या स्त्री है? इसकी प्रकृति में क्या पुरुषांश अधिक है?'' बाबा ने पुष्प को हाथ में लेकर देखा। बाद में कहा, ''यह स्त्री पुष्प है।'' और स्त्री पुष्प के लक्षण आदि के सम्बन्ध में समझाया। तदनन्तर आदेश दिया कि, ''एक पुरुष गुलाब फूल ले आओ, ताकि एक प्रक्रिया दिखलायी जा सके।'' वहाँ फूल नहीं था। तब अपराह्न भ्रमण का समय हो गया। मैंने अनुमति माँगते हुए कहा, ''यहाँ तो गुलाब नहीं है। यदि आपका आदेश हो, तब बाहर से लाया जाये''। बाबा ने कहा, ''बैठो! प्रयोजन नहीं है। तुम इस गुलाब की पंखुड़ियाँ अलग-अलग कर दो। तब मुझे देना।'' मैंने वही किया। बाबाजी ने पंखुड़ीविहीन उस पुष्प को हाथ में लेकर दो प्रकार से ऊर्ध्व-अधः संचालन किया और कहा, ''सूर्य-रश्मि का अवलम्बन लेकर पुरुष गुलाब का बीजाकर्षण करके पुष्प का गर्भाधान किया। इसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब एक कोमल आवरण के मध्य अथवा अपनी मुट्ठी में कई मिनट बन्द करो, ताकि बाहर की शीत वायु उसका विशेषतः स्पर्श न कर सके। देखोगे कि कई मिनटों में ही एक अभिनव बृहदाकृति तथा अभिनव सुगन्धियुक्त गुलाब की सृष्टि होगी।'' दलहीन फूल को मैंने अपनी मुट्ठी में रखा और बीच-बीच में उसे खोलकर देखने लगा। प्रायः 5 मिनट में देखा कि एक बृहद् गुलाब फूल बन गया। इसका आयतन पत्ती तोड़े गये पुष्प से दूना था। वर्ण तथा गन्ध में भी भेद था।

□ □ □

प्रायः प्रत्येक वर्ष ग्रीष्मकाल में बाबा पुरी आश्रम में विश्राम करने आया करते थे। तब बाबाजी के ही एक पुराने शिष्य श्री कामाख्या बनर्जी समुद्र में स्नान करते समय असावधानी के कारण लहरों की भीषण चपेट से आघातग्रस्त हो गये। उन्हें एक माह से अधिक समय से व्यथा थी और क्रमशः यह वातव्याधि में परिणत हो गया। इस प्रकार व्यातव्याधि रहने पर भी कामाख्या बाबू सर्वदा आश्रम में सत्संगार्थ आते थे। एक दिन इस प्रकार एक दिन कटक से आये नवागत डॉक्टर भी सत्संग में आये। बाबा ने कामाख्या बाबू के रोग का विवरण इन डॉक्टर साहब को बतलाकर उनसे इस रोग की औषधि पूछी। डॉक्टर साहब ने उत्तर दिया कि, ''कुछ दिनों पूर्व जर्मनी में एक नयी औषधि खोजी गयी है। वह इस प्रकार के रोग के लिए कारगर है, यह सुना है। लेकिन वह औषधि यहाँ प्राप्त नहीं की जा सकती। कलकत्ता में हो सकता है मिले। यह तैलाक्त है।''

तब बाबा ने कहा कि ''इस औषध के उपादान की बात बताओ।'' डॉक्टर बाबू ने कहा, ''यह मैं नहीं जानता''। बाबा ने तब डॉक्टर बाबू से प्रश्न किया, ''तुमने क्या स्वयं इस औषधि का व्यवहार किया है?'' तब डॉक्टर बाबू ने उत्तर दिया, ''हाँ किया है।'' तदनन्तर बाबा को पत्थर का एक टुकड़ा लाकर दिया गया। इसके पश्चात् बाबा ने उसे हाथ में उठा लिया, तब एक पात्र के भीतर इस पत्थर से धीरे-धीरे तैल जातीय पदार्थ निकलने लगा। पात्र प्रायः भर गया। तब बाबा ने संकेत से डॉक्टर बाबू से कहा, ''यही तो तुम्हारे द्वारा कथित औषध है, क्या कहते हो?'' तब डॉक्टर बाबू ने कहा, ''हाँ''।

बाबा ने इस रहस्य की व्याख्या की, ''तुम्हारे भीतर चित्त के संस्काररूप में जिस औषधि के दर्शन की स्मृति संचित थी, उसे मैंने भौतिकरूपेण उत्पन्न कर दिया।'' कामाख्या बाबू इसका सेवन करके कुछ दिनों में स्वस्थ हो गये।

□ □ □

ग्रीष्म ऋतु बंगाब्द 1338 में बाबाजी पुरी आश्रम मे आये थे। उस समय पुरी के प्रसिद्ध पण्डित महामहोपाध्याय सदाशिव मिश्र उनके दर्शनार्थ बीच-बीच में आया करते थे। एक दिन बात ही बात में उन्होंने कहा कि श्रीकृष्ण ने अपनी देह में अर्जुन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को जो विश्वरूप दिखलाया था, वह मनुष्य की धारणा के भी अतीत है। साढ़े तीन हाथ की देह में पुराणों में वर्णित विशाल दृश्य दिखलाना क्या सम्भव है? बाबाजी ने कहा कि, "साढ़े तीन हाथ की तो बात क्या? भागवत में नहीं पढ़ा है कि श्रीकृष्ण ने अपने मुख में ही यशोदा को विश्व ब्रह्माण्ड दिखलाया था? नरदेह में मुख कितनी जगह घेरता है, बिन्दु में सिन्धु की बात सुनी नहीं है क्या?"

मिश्रजी ने कहा, "सुना तो है। कैसे यह सम्भव है इसे मैं नहीं समझ सकता।" ऐसे बात करते-करते बाबाजी ने अपना मुख खोलकर मिश्रजी से कहा, "देखो, मुख में क्या है?" मिश्रजी ने उत्तर दिया, "कुछ विशेष तो नहीं देख रहा हूँ।" बाबाजी बोले, "अच्छी तरह से देखो"। बाबाजी ने मुख खोला। हठात् भाग्यवान पण्डित महाशय की दृष्टि खुल गयी। मिश्रजी देखते हैं कि बाबाजी के मुख में उत्ताल लहरी समन्वित सुविशाल समुद्र जिसके आर-पार का पता नहीं, लहरा रहा है। हठात् पट-परिवर्तन होता है। मिश्रजी देखते हैं वहाँ पर वृक्षलता समन्वित विशाल ऊँचा पर्वत है। पट-परिवर्तन होता गया। मिश्रजी देखते हैं वहाँ क्रमशः खेत, प्रान्तर, वन, नगर आदि का दृश्य है। लेकिन इसे वहाँ उपस्थित कोई भी नहीं देख सका। प्रायः 15 मिनट तक मिश्रजी ने यह सब देखा। तदनन्तर बाबा ने मुख बन्द कर लिया। अब मिश्रजी की भी बाह्य दृष्टि वापस आ गयी।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुमारी-पूजा

ज्ञानगंज की व्यवस्था में सूर्यविज्ञान हेतु कुमारी-पूजा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाकाल संहिता में कहा गया है कि शिव को जगाने का श्रेष्ठ मार्ग है कुमारी-पूजा तथा उनको भोजन से आप्यायित करना। कौलाचार्य कुमारी-पूजन रात्रि में कराते हैं तथा स्मार्त्तगण अपराह्न में कुमारी-पूजन करते हैं। कुमारीगण द्वारा सुचारुरूप से स्नान करने के अनन्तर उन्हें रंगबिरंगे परिधान पहनने के लिए देना चाहिये और सुन्दर रूप से उन्हें सुसज्जित कराना चाहिये। कुमारी ऐसी हो कि उनका चित्त कामकलुषित न हो तथा प्रेम में न पड़ी हों। उनकी आयु 7 से 9 वर्ष के बीच की हो, जो उत्तम है। वे उज्ज्वल गौर वर्ण समन्वित हों, अच्छे वंश की हों तथा उनके माता-पिता जीवित हों। उनका अंग विकृत न हो, बाल लम्बे हों, दाँत बाहर से न दीखते हों, वे किसी की वाग्दत्ता न हों।

यामलग्रन्थों में तीन प्रकार की कुमारी का उल्लेख है। यथा—परा, अपरा, परापरा। ब्रह्माण्ड-सृष्टि के पूर्व एकमात्र कुमारी थीं। अत: उन्हें आद्याशक्ति अथवा मूलशक्ति कहते हैं। 1 वर्ष से लेकर 16 वर्ष तक की कुमारीगण का क्रमिक रूप से उल्लेख इस प्रकार है। एक वर्ष वाली—सन्ध्या। दो वर्ष वाली—सरस्वती। तीन वर्ष वाली—त्रिधामूर्ति। चार वर्ष वाली—कालिका। पाँच वर्ष वाली सुभगा। छ: वर्ष वाली उमा। सात वर्ष वाली मालिनी। आठ वर्ष वाली कुब्धिका। नौ वर्ष वाली काल-संघर्षा। दस वर्ष वाली अपराजिता। ग्यारह वर्ष वाली रुद्राणी। बारह वर्ष वाली भैरवी। तेरह वर्ष वाली महालक्ष्मी। चौदह वर्ष वाली कुलनायिका। पन्द्रह वर्ष वाली क्षेत्रमा तथा सोलह वर्षीया चण्डिका कहलाती है।

महाकाल संहिता में पूजा-पद्धति के सम्बन्ध में कहा गया है कि कुमारीगण को उस स्थान में जहाँ उनका पूजन होना है, वाद्य संगीत के साथ (बाजे-गाजे के साथ) ले जाना चाहिये। कुमारीगण की सम संख्या न हो। असम संख्या हो अर्थात् 2-4-6-10 इत्यादि प्रकार से न हो। ये सम संख्याएँ हैं। वे 5-7-9-11 इस प्रकार की असम संख्या में हों। इनमें जो सर्वाधिक सुन्दरी हो उसे मुख्य कुमारीपद दिया जाये। यदि अधिक कुमारी न मिलें तब 1 से भी कार्य हो सकता है। काम्य एवं नैमित्तिक पूजन में 1 कुमारी का प्रयोजन है। किन्तु शारदीया पूजन में अनेक कुमारी का प्रयोजन है। उन्हें एक लाइन में खड़ा कराये तथा उनकी दृष्टि भूमि की ओर हो। पूजा करने वाला मुख्य कुमारी को देवी के साथ ऐक्य भावना के साथ देखे। एकमात्र सुरा लेकर प्राणायाम करके वहाँ भूतापसारण करके गुरु तथा गणेश को प्रणाम करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुए दिक्‌बन्धन करना चाहिये। तब उन खड़ी हुई कुमारीगण का चरण धोये। चरण के जल को भक्तिपूर्वक अपने मस्तक पर छोड़ना चाहिये। अब अपने उत्तरीय के एक कोने से उनके चरणों को पोछना चाहिये। अब अक्षत द्वारा विघ्नों का अपसारण करे। अशुभ शक्ति के अपसारणार्थ अनुष्ठान पुनः करना होता है। इसका कारण यह है कि यह पूजन देखने के लिए अनेक अप्रधान देवी-देवता कुमारी माताओं के साथ पूजा-मण्डप में प्रवेश कर जाते हैं और प्रायः 'गोलमाल' करते हैं। पूजक अपने वाम हाथ से कुमारी का दाहिना हाथ पकड़े। अब पहले अपना दाहिना पैर आगे बढ़ाये और इस प्रकार मुख्य कुमारी को आसन की ओर ले जाये। अन्य लोग कुमारीगण की प्रशंसा में 5 श्लोक का उच्चारण करें जो कि महाकाल संहिता में अंकित है। यथा—"त्र्यम्बकं जगतामास्ते जगत् आधार रूपिणी" इत्यादि।

मुख्य कुमारी के पूजन से ही समस्त कुमारीगण सन्तुष्ट हो जाती हैं। इसके अनन्तर गौण देवतागण के लिए एक पूजोत्सव का अनुष्ठान करना चाहिये। तत्पश्चात् कुमारी का न्यास होता है। 18 कुमारियों का नाम तथा शरीर के विभिन्न भाग में उनका अवस्थान इस प्रकार से कहा गया है—

नाम	शरीर में स्थान (न्यास हेतु)
महाचन्द्र योगेश्वरी	शिर
सिद्धिकराली	मुख
सिद्धिविकराली	नेत्र
महान्तामारी	कान
वज्रकपालिनी	नासिका
मुण्डमालिनी	गाल
अट्टहासिनी	दंतपंक्ति
चण्डकपालिनी	कन्धा
कालचक्रेश्वरी	हृदय
गुह्यकाली	बाहु
कात्यायनी	जठर (उदर)
कामाख्या	पीठ
चामुण्डा	नितम्ब
सिद्धिलक्ष्मी	जंघे का जोड़
कुब्जिका	जंघा
मातंगी	पैर
चण्डेश्वरी, कौमारी →	सम्पूर्ण शरीराकृति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

9 देवीगण की आराधना करे। यथा शुद्धा, कालिका, ललिता, मालिनी, वसुन्धरा, सरस्वती, रमा, गौरी तथा दुर्गा। अब दो देवताओं का पूजन करे। एक 5 वर्षीय बालक में बटुक का तथा 9 वर्ष के बालक में गणेश का पूजन करना चाहिये। साथ ही अष्ट भैरव का पूजन करे। यथा असितांग, रुद्र, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण तथा संहार भैरव। तदनन्तर आठ देवीगण का पूजन करे। यथा—महामाया, कालरात्रि, सर्वमंगला, दमारुका, राजराजेश्वरी, सम्पद्प्रदा, भगवती एवं कुमारी। अब देवीगण की छः परिचारिकाओं का पूजन करना चाहिये। यथा—अनंगकुसुमा, मन्मथा, मदना, कुसुमातुरा, मदनातुरा एवं शिशिरा।

मुख्य कुमारी के पूजनोपरान्त बाकी कुमारीगण की पूजा की जाती है। उन्हें शान्तिपूर्वक भोजन प्रदान करे। भोजन के समय वाद्ययन्त्रादि अथवा किसी प्रकार का कोलाहल न हो। पूजक तब हाथ जोड़कर कुमारीस्तोत्र का पाठ करता रहे। यह 16 अनुष्टुप छन्द के श्लोक महाकाल संहिता में अंकित हैं। आहारोपरान्त उन्हें पान (लगा हुआ) प्रदान करना चाहिये। और दक्षिणा प्रदान करके विसर्जन अनुष्ठान करे। उनका बचा जूठन शृगाल को प्रदान करना चाहिये अथवा जमीन में गाड़ देना चाहिये।

कुमारी-पूजा नवरात्रि के सभी दिवसों में कराने का शास्त्रोपदेश है। 9 दिन जिन नवदुर्गा की एक-एक दिन पूजा करनी है उनके नाम हैं—हल्लेखा, गगना, रक्ता, मतोच्छूष्मा, करालिका, इच्छा, ज्ञान, क्रिया एवं दुर्गा।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभूति खण्ड

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यविज्ञान जनित विभूति

माहाता के ताल्लुकेदार शौरीन्द्रकृष्ण स्वामीजी की विभूति की चर्चा सुनकर उनके पास आये थे। करीब 1904 ई० की घटना है। तब स्वामीजी गुष्करा में रहते थे। इनके एक सम्बन्धी के यहाँ विवाह के अगले दिन जामाता के हाथ की अँगूठी चोरी चली गयी। यह घरवालों के लिए अत्यन्त लज्जा का प्रसंग था। अनेक प्रयास करने पर भी अँगूठी का सन्धान नहीं मिला। तभी एक व्यक्ति ने इनसे कहा कि गुष्करा में स्वामीजी के यहाँ जाओ। वे सही सन्धान देंगे। शौरीन्द्रजी स्वामीजी के पास आये। उनके कुछ कहने के पूर्व ही स्वामीजी ने कहा—"तुम माहाता से आये हो। जो अँगूठी खोई है उसे तुम्हारे नौकर भोलानाथ पाल ने लिया है, और तुम्हारे ही घर में अमुक स्थान (स्थान का नाम बताया) छिपा दिया है। वह कागज में बँधी है, लेकिन नौकर को कुछ भी नहीं कहना।" शौरीन्द्रजी को यथास्थान अँगूठी मिल गई। कुछ दिनों बाद उन्होंने स्वामीजी का शिष्यत्व ग्रहण किया।

❑ ❑ ❑ ❑

राय बहादुर गिरीन्द्रनाथ बाँकुड़ा में पुलिस अधीक्षक थे। उन्हें स्वप्न में मन्त्र तथा देवता का दर्शन मिला था। उन देवता की वैसी ही मूर्ति कारीगर से बनवा कर एक बक्से में उन्होंने रख छोड़ी थी। वे स्वप्न वाली बात से अनुप्राणित होकर दीक्षा के लिए प्रयत्नशील थे और निश्चय कर रखा था कि जो स्वप्न वाली बात बता देगा वही गुरु होगा। अनेक साधु-सन्तों से मिले लेकिन कोई भी उनका समाधान नहीं कर सका। अन्त में स्वामीजी से मिले।

स्वामीजी ने उन्हें देखते ही कहा—"तुमने स्वप्न में मन्त्र पा लिया?"

गिरीन्द्र—"किनने बताया?"

स्वामीजी—"देखो यह मन्त्र तुमने पाया है (मन्त्र उनको गुप्त रूप से बतलाया) तुम्हारे पास उनकी मूर्ति भी है।"

गिरीन्द्र—"जी नहीं।"

स्वामीजी—"मैं तुम्हारे घर से उस मूर्ति को निकाल दूँगा।"

इस पर गिरीन्द्र की स्वीकृति मिलने पर स्वामीजी उनके घर आये, तथा वह बक्सा दिखलाया जिसमें मूर्ति रखी थी। गिरीन्द्र ने यह चमत्कार देखकर उनकी चरणधूलि सिर पर चढ़ायी तथा दीक्षा के लिए उनसे प्रार्थना की।

❑ ❑ ❑ ❑

डिमला के राजकुमार यामिनीवल्लभ तथा डॉ० अक्षयकुमार दत्त की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुलाकात स्वामीजी से उमेशचन्द्र बंदोपाध्याय के घर पर हुई थी, जो कोयला खानों के मालिक थे। उनके समक्ष स्वामीजी ने सूर्यविज्ञान से कुछ वस्तु निर्मित की थी। तब दत्त साहब ने इसे हाथ की सफाई मान कर स्वामीजी के हाथ पकड़ लिये थे। स्वामीजी इससे विरक्त हो गये और उनकी भर्त्सना करते हुए जिस आसन पर बैठे थे, उसमें से कुछ रेशे निकाल कर उसे सूर्यविज्ञान से अथवा अपनी इच्छाशक्ति से एक मूँगा रत्न में परिवर्तित कर दिया और उसे यामिनीवल्लभ को दे दिया, जो उनकी वंश-परम्परा में अब भी रक्षित है। यही नहीं, तभी उन्होंने योगबल से वहाँ पड़ी आधी तकिया को अपनी नाभि से शरीर के अन्दर कर दिया। यह देखकर दत्त महाशय भयभीत और मूर्च्छित हो गये थे।

❑ ❑ ❑ ❑

एक बार स्वामीजी पुरी गये हुए थे। सभी लोग समुद्र के किनारे घूम रहे थे, तभी बाबा ने समुद्र के किनारे एक रंगीन पत्थर देखा और उठा कर कहा "इससे एक हीरा तैयार किया जा सकता है। किसे चाहिये? लेकिन 750/- रुपये (कुमारी सेवार्थ) खर्च करना होगा।" तभी डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर कुञ्जबिहारी घोष ने, जो स्वामीजी के साथ थे, कहा "मैं दूँगा।" स्वामीजी ने उसे दो उँगलियों में दबाया और उसपर हथेली का संचालन करने लगे। एक मिनट के पश्चात् दिखलाकर कहा—"देखो यह नरम हो गया है।" तदनन्तर बाबा उसे उँगलियों में दबाकर पुनः उस पर हाथ फेरने लगे। एक मिनट के हस्त संचालन के अनन्तर एक कटिंग किया हुआ सुन्दर हीरा तैयार हो गया।

❑ ❑ ❑ ❑

बाबा ने विलासीपाड़ा (असम) के राजा नृपेन्द्रनारायण के आग्रह से उनके घर में एक सादे रूमाल को केवल अपनी दृष्टि निःक्षेप से ऐसा कर दिया कि बीच में सिंहवाहिनी दुर्गा की मूर्ति (रंगीन) उभर आई तथा चारो कोनों पर पुष्प छप गये। राजा साहब ने उसे सयत्न अपने पूजाघर में सुरक्षित कर दिया।

❑ ❑ ❑ ❑

नेपालचन्द्र चट्टोपाध्याय बाबा के पुरातन शिष्य थे। वे वर्द्धमान पुलिस ऑफिस में कार्यरत थे। वर्द्धमान निवास-काल में बाबा से उनका प्रगाढ़ सम्बन्ध हो गया। बाबा एक दिन रामेश्वरी तैल पका रहे थे। आधा मन (करीब 19 किलो) तिल तेल लोहे के कड़ाह में पकाया जा रहा था। खौलते तेल में बार-बार बाबा हथेली द्वारा देख रहे थे कि पाक ठीक है, अथवा नहीं। नेपाल बाबू ने भी उसमें हाथ डालना चाहा। उनके इस प्रस्ताव के लिए बाबा ने अनुमति दे दी। नेपाल बाबू ने निर्भय होकर खौलते तेल में हथेली डाली, उन्हें हाथ तनिक भी गर्म नहीं लगा।

❑ ❑ ❑ ❑

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक दिन बाबा ने चन्द्रविज्ञान से संदेश (बंगला मिष्ठान्न) प्रस्तुत किया। उन्होंने रात्रि में (चन्द्रालोक में) एक मिट्टी की हाँडी में लेन्स से चन्द्र-किरण को फोकस करके कपड़े से ढँककर रख दिया। (सबने देखा था कि क्रिया करने के पूर्व वह खाली थी) बाबा ने बताया कि इसमें संदेश उत्पन्न हो रहा है। जब तीन चौथाई हाँडी संदेश से भर गई तब बाबा ने कहा कि अब और नहीं बन सकता। उतना ही फोकस किया गया था।

एक दर्शक ने पूछा—"यह फोकस का व्यापार क्या है?"

बाबा ने कहा—"यह लेन्स है। इससे किरण को पकड़कर पात्र में डालने से (लेन्स के माध्यम से) वहाँ एक घेरा बन जायेगा। यह किरण का घेरा है। वहीं वस्तु के परमाणु संचित होंगे।"

कुञ्ज बाबू ने हमें बतलाया था कि यही हुआ। जब लेन्स से किरण डाली गयी तब पात्र में नीचे एक सूक्ष्म नीला घेरा बना था।

बाबा ने वह संदेश वहाँ बैठे लोगों में वितरित किया। उसमें बेल की गन्ध आ रही थी। बाबा ने कहा कि उसमें बेल, आम, बेदाना, अनार, अंगूर तथा अदरख का रस, छेना तथा मक्खन इतनी वस्तु के परमाणु आकर्षित करके संदेश बनाया गया था। यह तुरन्त हजम होगा। पेट शुद्ध रहेगा। अधिक खाने से शरीर का ताप बढ़ जायेगा।

❑ ❑ ❑ ❑

अमेरिका से आये एक सज्जन तथा उनकी पत्नी के विशेष आग्रह पर बाबा ने एक खाली शीशी पर पहले एक नीला कागज लपेट कर उसपर पतला ताँबे का तार लपेटा और उस पर लेन्स से सूर्य-किरणें छोड़ीं। एक अपूर्व गन्धयुक्त आधी शीशी इत्र तैयार हो गया।

बाबा ने बतलाया कि शीशी पर ताँबे का तार लपेटना आवश्यक था अन्यथा शीशी फट जाती।

❑ ❑ ❑ ❑

एक बार एक संन्यासी गिरीन्द्रनाथ के यहाँ आये। उनके पास एक इतना ज्योतिर्मय शिवलिंग था जिसकी ओर देख सकना (एकटक) सम्भव नहीं था। जो जितना अधिक देख सके, वह उतना शक्तिशाली होगा, यह संन्यासी का कहना था। संन्यासी बाबा की परीक्षा करने के लिए प्रयत्नशील थे। गिरीन्द्र बाबू उन्हें लेकर बाबा के पास आये। संन्यासी ने कुछ क्षण बाबा से बात करके उनकी परीक्षा हेतु उस शिवलिंग की ओर देखने के लिए बाबा से कहा। बाबा ने पूछा, "क्या यह तुम्हारा शिवलिंग है?" संन्यासी ने कहा कि वास्तव में यह उसका नहीं था, लेकिन फिलहाल है।

बाबा—"यदि यह नष्ट हो जाये, तब?"

संन्यासी—"हो जाये तो हो जाये।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसपर बाबा ने शिवलिंग एक जगह रखकर सबको दूर चले जाने को कहा तथा कई क्षण उस शिवलिंग की ओर देखा। तभी वह आवाज करते हुए फट कर दूर-दूर तक छिटक गया। यह देखकर संन्यासी की हालत खराब हो गयी। उसकी महामूल्यवान् सम्पत्ति नष्ट हो गयी। वह इसके लिए प्रस्तुत नहीं था। वह रोने लगा। बाबा ने पूछा, "क्यों रोते हो?"

संन्यासी—"आपने दूसरे की मूल्यवान् वस्तु नष्ट कर दी। उन्हें क्या उत्तर दूँगा?"

बाबा (हँसते हुए)—"बापू! जिसने तोड़ दिया है, वह इसे गढ़ भी सकता है। ऐसा कर्म अब नहीं करना। अन्यथा अनिष्ट होगा।"

बाबा ने उस लिंग के टुकड़ों को एकत्र करके उन पर कुछ क्षण हस्त संचालन किया। पुनः पहले जैसा लिंग तैयार हो गया।

❑ ❑ ❑ ❑

एक दिन बाबा कुमारी कन्याओं को भोजन करा रहे थे। एक कुमारी जब बाबा के पास आई तब बाबा ने एक चम्पा का फूल उसे प्रदान किया। एक फूल लेकर बाबा सूँघ रहे थे। कुछ क्षण पश्चात् बाबा ने फूल मुट्ठी में बन्द करके वहीं पास बैठे अक्षय बाबू से कहा देखो कैसी गन्ध है? बद्ध मुष्टि को सूँघकर अक्षय बाबू ने कहा कि इसमें चम्पा की गन्ध है। बाबा ने हँसकर मुट्ठी खोली। आश्चर्य! चम्पा का फूल एक विलायती फूल में परिणत हो गया, लेकिन गन्ध चम्पा की ही थी।

❑ ❑ ❑ ❑

महामहोपाध्याय डॉ० पं० गोपीनाथ कविराज लिखते हैं कि कितने समय से न जाने कितने विषय देखता हूँ, उसकी गिनती नहीं है। अघेला से सोने की गिन्नी तैयार कर देना, नारियल तेल, पुराना घृत, ताजा घृत, चटनी, नाना प्रकार के संदेश, रसगुल्ला, चमचम, हीरा, सुवर्ण, मकरध्वज, मुक्ता, प्रवाल प्रभृति सैकड़ों वस्तु का निर्माण करते बाबा को देखा था। जीवों में मक्खी आदि जीव-जन्तु का निर्माण सूर्यविज्ञान आदि विज्ञान से करते देखा। सभी का वर्णन सम्भव नहीं है।

❑ ❑ ❑ ❑

प्रियगोपाल बन्दोपाध्याय बाबा के पुराने शिष्य थे। ये पोस्टल विभाग के अधिकारी थे और अब अवकाश ग्रहण कर लिया था। इनकी दौहित्री को बाबा बहुत मानते थे। इनके सामने की घटना है। उस दिन कुमारी भोजन कराया जा रहा था। एक कुमारी ने कहा, "बाबा! कल स्वप्न देखा कि मानो आपको मैंने गोद में उठाया है।" सुनकर बाबा हँसे और कहा ऊपर चलो। कुमारीगण ऊपर के मंजिल पर बाबा के साथ गयीं। वहाँ जाकर बाबा ने सबसे छोटी कुमारी से कहा "अब मुझे गोद में उठाओ।" कुमारी ने बाबा को उठाया। उसे बाबा बिल्कुल हल्के लगे। यह आश्चर्य घटना थी।

❑ ❑ ❑ ❑

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बार पुरी में बाबा ने योगेश बसु तथा अतुल बसु के पुत्र अरुण बसु को रूई से (सूर्यविज्ञान द्वारा) भ्रमर जैसा एक कीट (जीवित) तैयार करके दिखलाया था। पहले तो वह रूई ओस के एक कण के रूप में परिवर्तित हो गयी। कुछ मिनटों बाद बढ़कर उसने एक भ्रमर जैसी आकृति ग्रहण की। अन्त में उसे पंख आदि उगा और वह उड़ गया।

❑ ❑ ❑ ❑

बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त तथा कलकत्ता हाईकोर्ट के विख्यात वकील सर मन्मथनाथ बाबा के पास बैठे थे। इन लोगों ने बाबा से कुछ विशेष प्रक्रिया दिखलाने की प्रार्थना की थी। बाबा ने इनकी विनम्र प्रार्थना सुनकर पास पड़ी एक मुरझाई माला डॉक्टर साहब के हाथ में दी। तदनन्तर कुछ फूल उस माला से तोड़कर अपनी हथेली की तीन उँगलियों से उन्हें दबाकर कई बार वायु में हथेली को हिलाया। वे पुष्प अतीव सुगन्धित कर्पूर के रूप में परिणत हो गये।

❑ ❑ ❑ ❑

दिनांक 3 अगस्त 1933 ई० को बाबा आश्रम में शिष्यों से वार्तालाप कर रहे थे। उन्होंने बताया कि हिमालय पर जिस मार्ग से युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण किया था, उस पर जहाँ तक सम्भव था, वे भी गये थे। बदरीधाम के पश्चात् बालगोपाल नामक स्थान पड़ता है। उसके आगे शिवसंकट स्थान है। उसके आगे जाना सम्भव नहीं हो सका, क्योंकि दुर्गम तुषार मण्डित ऊँचे पर्वत हैं। जहाँ तक जा सके, वहाँ से दूर एक तोरण जैसा परिलक्षित होता है। यही स्वर्गद्वार है। समय-समय पर वहाँ गीत-वाद्य का स्वर दूर तक सुनाई पड़ता है। अनेक अप्सरा एवं गन्धर्व गायन करते हैं। शिवसंकट पर अनेक स्त्रियाँ दिखलाई पड़ती हैं।

❑ ❑ ❑ ❑

बाबा के पास रायसाहब हरिसाधन तथा रिटायर्ड इंजीनियर मनीन्द्र चक्रवर्ती बैठे थे। बाबा ने बातचीत के दौरान अपनी खाली हथेली को दिखला कर कहा कि एक चटपट वस्तु आ रही है। कुछ समय के लिए मुट्ठी बन्द करके पुनः खोली तो देखा गया कि एक पतली हरिद्राभ वर्ण की कागज जैसी वस्तु आई है। बाबा उसे हवा में हिलाते रहे, वस्तु पतली हो गई। बाबा ने बतलाया कि यह एक प्रकार के वृक्ष का पत्ता है जो स्वर्ग के बाग का पत्ता है। इसे वहाँ मुञ्जीपत्र कहते हैं। सबको दिखलाकर (मुट्ठी में रख कर) मुट्ठी बन्द कर ली और मनीन्द्र बाबू से कहा— "मेरी यह मुट्ठी दबाये रहो।" मनीन्द्र बाबू ने दबाने पर अनुभव किया कि हथेली में एक प्रकार का विचित्र स्पन्दन हो रहा है। बाबा ने मुट्ठी खोली, तब वह पत्ता गायब हो चुका था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाबा ने बतलाया कि मुञ्जीपत्र 4 प्रकार का होता है, जिनमें से एक है उग्रमुञ्जी। उसे देह में प्रविष्ट करा देने पर मन सर्वदा आनन्द से पूर्ण हो जाता है। अन्य है तड़ितमुंजी। इसे शरीर के अन्दर कर देने से भी वह गतिशील रहता है। मन में कुभाव नहीं आ पाता। बाबा ने कहा कि कुमारी भोजन का संकल्प लो, तब सब दिखला सकता हूँ। क्योंकि ऐसा ही ज्ञानगंज का आदेश है। यह भी बाबा ने बतलाया कि मुंजीपत्र देह में लेने के लिए 700/- कुमारी भोजनादि में व्यय करना होगा। तडितमुंजी का तो खर्च और भी अधिक पड़ेगा।

चतुर्थ तथा सर्वोत्कृष्ट मुंजी के सम्बन्ध में बाबा ने कोई प्रसंग नहीं उठाया, न तो समागत लोगों ने ही उठाया। अतः यह प्रसंग यहीं तक ही रह गया।

❑ ❑ ❑ ❑

अक्षय चक्रवर्ती रिटायर्ड पुलिस इन्सपेक्टर थे। ये बाँकुड़ा निवासी थे। इन्होंने अपना अनुभव बतलाया था। बाबा ने रूई के ऊपर ज्ञानगंज से प्राप्त सूर्यविज्ञान के लेन्स से फोकस किया तब 2-3 मिनट में रूई पर एक जल-बिन्दु जैसा कुछ उभर आया। (जैसे कमल के पत्ते पर जल-बिन्दु लक्षित होता है)। कुछ समय और फोकस करने पर वह घनीभूत होकर हीरक खण्ड के रूप में परिणत हो गया। जब वह और सख्त हो गया तब बाबा ने एक दूसरे लेन्स से उस पर फोकस किया। अब उसकी आकृति पहलदार नग जैसी हो गयी। समस्त क्रिया सम्पन्न होने में 15 मिनट लगे।

❑ ❑ ❑ ❑

एक बार वर्द्धमान आश्रम में रहते समय बाबा संन्ध्या काल में रोज की तरह पूजन-कक्ष में गये। वहाँ पर्याप्त मात्रा में धूप नहीं थी। बाबा ने बाहर खड़े वीरेन बाबू से कहा कि "दरवाजा बन्द कर रहा हूँ। तुम धूपदानी में धूप देकर जरा सा दरवाजा खोल कर भीतर खिसका देना और पुनः दरवाजा बन्द कर देना।"

धूपदानी में अग्नि जलाने में कुछ समय लगा। वीरेन बाबू ने धूपदानी कमरे में खिसकाते समय अनुमति से अधिक दरवाजा कुतूहलवश खोलकर देखा। बाबा आसन पर थे ही नहीं। उनका शरीर ऊपर शून्य में पद्मासनस्थ था। देख कर लगा कि उन्होंने अपराध किया जो दरवाजा अधिक खोला। जब बाबा साधना पूर्ण करके बाहर आये, तब हरिसाधन बाबा उनके समक्ष क्षमाप्रार्थी हो गये। बाबा ने इतना ही कहा "ऐसा भविष्य में कभी नहीं करना।"

❑ ❑ ❑ ❑

एक दिन अक्षयकुमार दत्त गुप्त बाबा के पास बैठे थे। तभी बाबा ने अपने बायें हाथ को तनिक संचालित किया। इसी क्रम में उनके हाथ की तर्जनी में एक अतिक्षुद्र स्वच्छ बिन्दु के समान कुछ दिखलाई पड़ने लगा। बाबा ने बतलाया कि स्फटिक के परमाणु आ रहे थे, उनमें कुछ को पकड़ लिया था। अब बाबा उसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार से हथेली को संचालित करने लगे। क्रमशः वह बिन्दु स्पष्ट होने लगा। बाबा ने कहा कि इसमें छिद्र भी होगा। क्रमशः छिद्र भी हो गया। बाबा ने उसे अक्षय बाबू के हाथ में दे दिया। वह कोने से कुछ मलिन था। जिज्ञासा करने पर बाबा ने बतलाया कि "यह अविद्या मल है। इसके न रहने पर सृष्टि हो ही नहीं सकती। फिर भी यह क्रमशः कट जायेगा।" तत्पश्चात् मेरे हाथ से लेकर बाबा ने हथेली संचालित करके उसे अर्द्धगोलक के रूप में परिणत कर दिया। तत्पश्चात् उसे दबाते-दबाते एक बड़े गोलाकृति स्फटिक के रूप में परिवर्तित कर दिया।

❑ ❑ ❑ ❑

एक बार बाबा ने अपने यहाँ बैठे दर्शनार्थियों से पूछा कि कृष्ण की आयु कितनी थी? एक ने बतलाया 75 वर्ष रही होगी। उसी समय महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराजजी का आगमन हुआ। उन्होंने भी इस मत का समर्थन किया। तभी डॉ० शोभाराम ने बतलाया कि बाबा ने एक शीशी में कृष्ण की अंग गन्ध का सूर्यविज्ञान से निर्माण किया था। इस पर गोपीनाथजी ने प्रश्न किया कि क्या सभी देवताओं की एक ही प्रकार की अंग गन्ध होती है। बाबा का कथन था कि सबकी पृथक् अंग गन्ध होती है। तब बाबा ने चन्द्रदेव की अंग गन्ध का आकर्षण किया। यह अलौकिक सुगन्ध थी। तदनन्तर सूर्यदेव की अंग गन्ध का आकर्षण किया। वह अतीव मनोरम होने पर भी चन्द्रदेव की गन्ध की तुलना में अति तीव्र थी। इसी प्रकार बाबा ने उस दिन सूर्यविज्ञान द्वारा अनेक प्रकार की अलौकिक गन्धों का आकर्षण किया था। इस पर गोपीनाथजी ने पूछा कि इतने प्रकार की गन्ध आप कहाँ से लाते हैं? बाबा ने उत्तर दिया था कि प्रणव के झरने से आकर्षित करता हूँ।

❑ ❑ ❑ ❑

बाबा एक बार मोटर से वाराणसी में सारनाथ गये थे। वापस आकर पूछा कि बुद्धदेव कितने वर्ष पूर्व जीवित थे। अक्षय बाबू ने बतलाया करीब 2500 वर्ष पूर्व वे थे। उस समय वाराणसी के सीटी मुंसफ देवीप्रसाद मेहरोत्रा भी उपस्थित थे। तदनन्तर बाबा ने वायु में उँगली संचालित की। उनकी उँगली पर कुछ स्वच्छ-सी वस्तु वायुमण्डल से आ गई। उस आविर्भूत वस्तु में लाल बिन्दु, नीले बिन्दु, सब्ज बिन्दु परिलक्षित हो रहे थे। बाबा ने बतलाया कि बुद्धदेव के परमाणु के साथ 5 और लोगों के भी परमाणु आये हैं। सबने उसकी अलौकिक गन्ध को भी सूँघा।

बाबा ने बतलाया कि ये बुद्ध के प्रधान शिष्यों के परमाणु हैं। आनन्द के साथ 5 लोगों के परमाणु आये थे। सारिपुत्र का परमाणु नहीं आया था।

बाबा ने एक बार सारनाथ के स्तूप पर लेन्स का प्रयोग करके बुद्धदेव के परमाणु को आकर्षित करके एक शीशी में रखा था। बाबा का कथन था सभी महान् पुरुषों के तत्कालीन परमाणु आकाश तथा वायु में घूमते रहते हैं। प्रक्रिया विशेष से सूर्यविज्ञान द्वारा वे उनका आकर्षण करते थे।

❑ ❑ ❑ ❑

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक दिन एक सैनिक वेषधारी व्यक्ति 18-19 वर्ष की कन्या के साथ कलकत्ता में बाबा से मिलने आये। उन्होंने बाबा को उनकी ही बहुत पुरानी फोटो दिखलाई। बाबा ने उसे देखकर कहा "हाँ! याद आ गया। क्या चाहिये?" सैनिक वेशधारी ने बतलाया कि नेपाल के मन्त्री जंगबहादुर राणा की कन्या कई वर्षों से शिर:पीड़ा का कष्ट भोग रही है। अनेक चिकित्सा से भी कोई लाभ नहीं है। कन्या को अपना जीवन व्यर्थ लग रहा है। राणा साहब का विनम्र निवेदन है कि बाबा कन्या को ठीक करें। बाबा ने कन्या को बुलवाया। उसे सहारा देकर बाबा के पास लाया गया। बाबा ने उसे लिटा कर अपने दाहिने हाथ से उसके कपाल को दोनों ओर से पकड़ लिया। कुछ क्षण ऐसा करके कहा कि तुम्हारी बीमारी ठीक हो गई। अब यह बीमारी नहीं रहेगी।

वास्तव में कन्या ने बहुत राहत का अनुभव किया। वह अत्यन्त प्रसन्न होकर धूपदानी में धूप लेकर बाबा के चारो ओर नाचने लगी। कुछ मिनट ऐसा करके सैनिक के साथ चली गयी। बाबा ने बतलाया कि संन्यासी दशा में वे नेपाल के जंगल में कुछ समय टिके थे। उस समय एक दिन जंगबहादुर अपने सिपाहियों के साथ उधर से निकले। उन्होंने उन्हें प्रणाम करके सेवा-कार्य पूछा। राणा साहब ने बाबा के आदेश पर तत्काल प्रचुर परिमाण में काष्ठ की व्यवस्था की और तभी बाबा का एक चित्र भी खीचा था। यह वही चित्र था।

❑ ❑ ❑ ❑

बाबा के शिष्य गौरीराय उस समय वर्द्धमान आश्रम में आये थे। तब आश्रम बन रहा था। वहाँ एक पेड़ उगा था जिसे काट कर दीवार बनाने की योजना हो रही थी। बाबा सामान्यत: वृक्ष काटने की अनुमति नहीं देते थे। उन्होंने कहा कि वृक्ष क्यों काटते हो? इसके फल से जन्माष्टमी को गोपाल की सेवा होगी। देवेन्द्रजी (जो वहाँ का कार्य देख रहे थे) ने कहा कि वृक्ष पर जटा आ गयी है। यह पुरुष जातीय है। इसमें फल नहीं होगा। तब भी बाबा ने उसे काटने का अनुमोदन नहीं किया। कुछ समय पश्चात् देखा कि उसमें फल लगने लगे। यह एक आश्चर्य था।

❑ ❑ ❑ ❑

उस समय बाबा काशी आश्रम में आये थे। कुछ शिष्यों की इच्छा थी कि उन्हें ज्ञानगंज का सूर्यविज्ञान वाला लेन्स मिले। उनमें से डॉ० शिवपद तथा शचीन्द्र दत्त का नाम उल्लेखनीय है। बाबा ने कहा कि आज शिवपद के लिए लेन्स मँगाता हूँ। यह कहकर दो बार उन्होंने ताली बजायी। 5 मिनट बीतते-बीतते शून्य से एक लेन्स बाबा की शय्या पर आ पड़ा। लोगों ने स्पष्ट देखा कि ऊपर से गिरा था।

अगले दिन बाबा ने अक्षय बाबू से कहा कि "आज तुम देर से आये, नहीं तो तुम्हारा लेन्स भी मँगवा देता, अब कल आना।" अगले दिन अक्षय बाबू ने बाबा से लेन्स के लिए प्रार्थना की। बाबा ने घड़ी देखी और हाथ से तीन बार आघात किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ क्षण पश्चात् पूर्णतः जादूगर की तरह एक रूमाल दिखला कर कहा—"इसमें क्या है?"

अक्षय बाबू ने कहा—"इसमें कुछ भी नहीं है।"

बाबा—"जो बोलोगे इसमें आयेगा"।

अक्षय बाबू—"तब मेरा लेन्स आ जाये।"

बाबा—"वह तो आयेगा ही, और कुछ देखना है।"

अक्षय बाबू—"यदि बाबा की इच्छा है, तब जो आप चाहें।"

तभी उस खाली रूमाल में एक सेब फल आ गया। उस सेब को हटाया गया। उसमें अपूर्व सुगन्ध थी। ठीक इसी समय रूमाल में बाबा के सिर के पीछे से एक कागज का पैकेट आ गिरा। पैकेट खोलने पर उसमें एक लेन्स था और अटपटे अक्षरों में Rs. 255/- अंकित था। मूल्य ज्ञानगंज भेजा गया। इसकी भी एक कहानी है। अगले दिन अक्षय बाबू 255/- रुपये लाये, साथ में धन भेजने के लिए मनिऑर्डर कमीशन भी देना चाहा। तब बाबा ने कहा कि इसे वायुविज्ञान से भेजूँगा।

❑ ❑ ❑ ❑

बाबा की फाउन्टनपेन खराब हो गयी थी। एक पेन खरीदने का निश्चय हुआ। बाबा ने पूछा कि कौन सी पेन अच्छी होती है? केदार दादा ने पार्कर पेन हेतु अपनी राय दी। बाबा ने कहा कि "तब ऐसी कलम लायी जाये।" और बाबा एक खाली पैकेट लेकर घुमाने लगे। कुछ समय पश्चात् उसमें नये Case में रखी एक नयी पार्कर पेन आ गयी। बाबा ने पूछा, "इसका क्या दाम होगा।" केदार दादा ने बतलाया 10/- होगा। बाबा ने (जिस प्रकार से पेन आयी थी) उसी प्रकार से 10/- भेज दिया। कुछ देर बाद डॉ० शोभाराम के पुत्र आये। उनसे जब मूल्य पूछा गया तब उन्होंने बतलाया कि इसका मूल्य 15/- है। अब बाबा ने उसी प्रक्रिया की तरह 5/- भी भेज दिया। बाबा ने कहा कि जहाँ कलम थी वहीं ये 15/- भी रहेंगे। दूकानदार सोचेगा कि भूल से कुछ बेचकर रुपये उधर रख दिये थे।

❑ ❑ ❑ ❑

एक दिन बाबा पुरी के आश्रम में सायंकाल बैठे हुए थे। तभी पुरी के विद्वान् महामहोपाध्याय सदाशिव मिश्र उनके दर्शनार्थ आये। उस समय महामहोपाध्याय गोपीनाथजी कविराज भी वाराणसी से आये हुए थे। मिश्रजी का कहना था कि महाभारत में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को विश्वरूप दिखलाया था। इसकी धारणा मनुष्य-शरीर में (जो साढ़े तीन हाथ का है) कैसे हो सकती है? ऐसे उन्होंने यशोदा को भी अपने मुख में विश्व ब्रह्माण्ड दिखलाया था। नरदेह के छोटे से मुख में स्थान ही कितना होता है?

बाबा—"क्या बिन्दु में सिन्धुदर्शन सुना है?"

मिश्रजी—"सुना तो है, परन्तु यह सम्भव कैसे है?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाबा का चित्त उस दिन अत्यन्त प्रसन्न था। उन्होंने अपना मुख खोला और देखने के लिए संकेत किया।

मिश्रजी ने मुख में देखकर कहा—"कुछ भी तो नहीं है।"

बाबा ने कहा—"अच्छी तरह देखो।"

अब मिश्रजी ने देखा कि अन्दर सुविशाल समुद्र है। आर-पार नहीं है। हठात् दृश्य बदला। वहाँ वृक्ष-लतायुक्त विशाल पर्वत, कृषि क्षेत्र, वन, नगर, दिव्यलोक, अनेक दिव्य दृश्य भी देखा। 10 मिनट तक यह क्रीड़ा चली।

❑ ❑ ❑ ❑

बागबाजार के निवासी घोष बाबू एक दिन अपनी कन्या तथा पत्नी के साथ आये और बाबा से पूर्वजन्म का वृत्तान्त पूछा। पहले बाबा ने कहा कि वह बतलाना निषिद्ध है। परन्तु जब वे हठ करने लगे तब बाबा ने कहा "तुम पूर्व जन्म में बकरा थे।"

उन्होंने कहा—"प्रमाण।"

बाबा ने प्रमाण रूप से उनके इस जन्म के छागलोचित एक अतिगर्हित स्वभाव का उल्लेख किया, जिसे कोई नहीं जानता था। यह सुनते ही घोष बाबू की वाणी बन्द हो गयी तथा तुरन्त अपने परिवार के साथ आश्रम से चले गये।

❑ ❑ ❑ ❑

एक बार गोपीनाथजी कविराज प्रभृति कई शिष्यों के समक्ष बाबा ने अमावस्या की रात्रि में चन्द्रज्योति का प्रदर्शन सूर्यविज्ञान से किया था। इसके लिए तय हुआ कि वे सब मिलकर 600/- खर्च करके कुमारी भोजन करायेंगे। बाबा ने इन सबको रात्रि में पूजागृह में बैठाकर कमरे की खिड़की दरवाजा आदि बन्द करा दिया। फिर कुछ क्षण के लिए खिड़की को खुलवा दिया, ताकि लेन्स से फोकस करके चाँदनी लायी जा सके। क्रमशः कमरे के भीतर पूर्णिमा की तरह चन्द्रज्योति फैलने लगी। कमरा ज्योत्स्नामय हो उठा। शिष्यगण 600/- एकत्र नहीं कर पाये। मात्र 300/- एकत्र हो सके। शेष 300/- बाबा ने अपने पास से लगाया। तब कुमारी भोजन हो सका।

इस पर अमूल्य दत्तगुप्त ने बाबा से पूछा—"बाबा विभूति प्रदर्शनार्थ कुमारी भोजन का क्या सम्बन्ध?"

बाबा—"जो विशुद्ध वस्तु देखने के अधिकारी नहीं हैं, उनको विशुद्ध वस्तु दिखलाना अपराध है। जो अनधिकारी इनको देखता है, उसे भी अपराध होता है। यह काटने के लिए भगवती का आश्रय लेता हूँ। वे इसे काट देती हैं। मानवीय कुमारी भगवती की ही प्रतीक हैं।"

❑ ❑ ❑ ❑

एक बार बाबा ने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का अर्थ पूछा। उनके शिष्य अक्षयकुमार दत्तगुप्त ने स्वमति के अनुसार इनका अर्थ कहा, जिसका अनुमोदन बाबा ने किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा था "शंकराचार्य कृत आनन्दलहरी स्तोत्र के अनुसार ये चारो जगन्माता से आते हैं।" बाबा ने वामबाहु संचालित करके कहा "तुम्हारे द्वारा आनन्दलहरी के पाठ के साथ-साथ उसके परमाणु भी आ रहे हैं।" उन्होंने अपनी हथेली सुँघायी, एक अपूर्व गन्ध उसमें आ रही थी। उपस्थित केदार बाबू ने पूछा "क्या स्तोत्र के भी परमाणु होते हैं?"

बाबा—"सभी वस्तु के होते हैं"।

बाबा ने जिसे परमाणु कहा वह Atom नहीं है। वह तन्त्रोक्त कला है। परमाणु अर्थात् परम पदार्थ के अणु।

❑ ❑ ❑ ❑

केदार भौमिक महाशय की पत्नी बेरी-बेरी रोग से आक्रान्त थीं। उनका गाल गला भीषण रूप से फूल गया, भोजन, पानी तक बन्द हो गया। इसी बीच बाबा के शिष्य तथा केदार बाबू के जामाता हरिहर मैत्र ने एक टेलीग्राम इस सम्बन्ध में बाबा को भेजा किन्तु बाबा के पुत्र दुर्गादादा ने उसे बाबा को नहीं दिखलाया। क्योंकि वे जानते थे बाबा दया के कारण उस रोगिणी की बीमारी अपने शरीर में खींच लेंगे।

अगले दिन अपराह्न तक रोगिणी की हालत और भी भयानक हो उठी। वे तन्द्रा में चली गयीं। तन्द्रा भंग होने पर उन्होंने क्षीण स्वर में कहा "बाबा ने चार पुड़िया औषधि लाकर अभी-अभी मुझे एक पुड़िया खिलायी। शेष 3 पुड़िया कहाँ गयी?" (ज्ञातव्य है कि रोगिणी बंगाल में थी तथा बाबा काशी में थे)। खोजने पर भी औषधि नहीं मिली। शाम को केदारबाबू उठकर जप करने लगे, तभी उन्हें अपने शरीर में एक वैद्युतिक क्रिया का अनुभव हुआ। वे कुछ सेकेण्ड के लिए बाह्य ज्ञान से रहित हो गये, तभी एक ज्योतिर्मय मण्डल में बाबा का दर्शन भी मिला। इसके अगले दिन रोगिणी की अवस्था इतनी द्रुतगति से ठीक होने लगी कि सब चकित हो गये। तीसरे दिन सूजन आदि का नामोनिशान नहीं रह गया।

❑ ❑ ❑ ❑

बाबा की लीला-कथा के अनगिनत चमत्कार उनके भक्तों की स्मृति में अंकित ही रह गये, और सभी परमधाम सिधार चुके हैं। तथापि जो कुछ सामग्री प्रामाणिक रूप से प्रामाणिक स्रोत से मिल सकी, यहाँ उसका किंचित् आभास देने का प्रयत्न किया गया है।

लोगों से बाबा की विरुदावलि सुनकर पुरी में बाबा के अवस्थान काल में दयानिधिदास आये थे। ये आते ही दीक्षाप्रार्थी हो गये। स्वामीजी ने उत्तर में अपने नियमानुसार उनसे कहा कि "अच्छा मैं ज्ञानगंज को लिखूँगा।" तदनन्तर कुछ क्षण पश्चात् अपने प्रकोष्ठ में चले गये। वापस आये तब दयानिधि ने पूछा—"बाबा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आप गुरुपीठ को मेरे सम्बन्ध में कब लिखेंगे?" इस पर बाबा ने उत्तर दिया—"वह तो लिख आया हूँ।"

दयानिधि—"यह कैसे? आपको तो मैंने अपना नामधाम कुछ नहीं बताया?"

बाबा—"यह सब क्यों बताओगे? क्या तुम अपरिचित हो? तुम्हारा नाम है दयानिधिदास। अमुक वर्ष, अमुक माह में अमुक दिन अमुक समय पर तुम्हारा जन्म हुआ है। और क्या जानना चाहोगे?" दयानिधि तो अवाक् रह गये।

❑ ❑ ❑ ❑

बाबा के एक शिष्य को साधना द्वारा तथा गुरुकृपा द्वारा भविष्य-दर्शन की क्षमता मिल गई थी। बाबा ने उन्हें मना किया था कि अपने परिवार तथा सम्बन्धी लोगों के भविष्य न देखें, लेकिन जब भाई का पुत्र रोग से आक्रान्त हो गया, तब गुरु के आदेश को ताक पर रखकर इन्होंने उसका भविष्य ध्यान में देखा, होनी देखकर शोकाकुल हो गये। इन शिष्य ने कालान्तर में गोपीनाथजी कविराज को बतलाया कि भविष्य-दर्शन करते ही एक देवी ने तत्काल आविर्भूत होकर कहा कि "अब मेरा रहना सम्भव नहीं है, मैं जा रही हूँ।" उसी क्षण से उनकी भविष्य-दर्शन-शक्ति समाप्त हो गयी। गुरु-आज्ञा की अवहेलना का यह परिणाम था।

❑ ❑ ❑ ❑

बाबा जब पुरी में थे, पं० गोपीनाथ कविराजजी के साथ श्री मुकुन्द शास्त्री तथा सुरेश देव भी बाबा के दर्शनार्थ गये थे। मुकुन्द शास्त्री ने पारा को ठोस बनाने की विधि किसी प्राचीन ग्रन्थ से पढ़कर एक शुद्ध पारद का शिवलिंग बनाया था। वह लिंग उन्होंने बाबा को दिखलाया। बाबा ने देखकर कहा कि यह सामग्री शुद्ध नहीं है। मैं इस शिवलिंग को खाऊँगा। मुकुन्द शास्त्री गम्भीर व्यक्ति थे। बाबा से कहा, "खा जाइये।" और बाबा ने उसे निगल कर अपना मस्तक दिखलाया और कहा कि वह यहाँ पर है। बाबा जब मस्तक हिलाते तो वहाँ ठक् ठक् की ध्वनि आती। बाबा ने बहुत दिनों पश्चात् (जब मुकुन्द शास्त्री मिलने आये) उस शिवलिंग को मस्तक से बाहर करके उन्हें दिखलाया। तब उसका आकार कुछ छोटा हो गया था। और उज्ज्वलता बढ़ गयी थी। बाबा ने बतलाया कि इसके अशुद्ध परमाणु समाप्त हो गये हैं, अंत: कुछ छोटा हो गया है।

❑ ❑ ❑ ❑

पं० गोपीनाथ कविराजजी से मिलने 1941 ई० की 25वीं अगस्त को एक गुजराती व्यक्ति काशी आये। नाम था हीरालाल त्रिवेदी। ये गुजरात के बालनिसोर के निवासी थे। इन्होंने 'कल्याण' के 'योगांक' में 'सूर्यविज्ञान' विषयक कविराजजी का लेख पढ़ा था। गोपीनाथजी को पत्र भेजकर उन्होंने 'श्री श्री विशुद्धानन्द प्रसंग' के कई खण्डों को मँगवाकर उसे पढ़ने के लिए बंगला भाषा सीखी। इनके मन में यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सब पढ़कर बाबा के दर्शन की तीव्र इच्छा थी, परन्तु बाबा का शरीरान्त हो चुका था। अब वे बाबा के चित्र की नित्य अर्चना करने लगे। उन्होंने गोपीनाथ कविराजजी से कहा था कि वे उनके ग्रन्थों के आधार पर बाबा के सम्बन्ध में कुछ गुजराती भाषा में लिखना चाहते थे, परन्तु लिखना प्रारम्भ करते ही उनके नेत्र तथा कानों में तीव्र पीड़ा होने लगी। इसी बीच उन्हें स्वप्न में बाबा का दर्शन मिला जिन्होंने कहा कि वे गुजराती में उनके सम्बन्ध में कुछ न लिखें। अतः उन्होंने पुस्तक लिखना बन्द कर दिया। उन्होंने गोपीनाथ कविराजजी से यह भी बतलाया कि उनकी कन्या (12 वर्षीय) भयानक वसन्त रोग से पीड़ित हो गई थी। बचने की कोई सम्भावना नहीं थी। तब उन्होंने बाबा के चित्र की अर्चना करके उनका चरणामृत कन्या को देकर प्रार्थना की जिससे कन्या की मृत्यु के उपरान्त उसे सद्‌गति मिले। इसी समय उन्होंने कन्या के कमरे में तीव्र पद्मगन्ध का अनुभव किया। कन्या भी उस गम्भीर तकलीफ के रहते निद्रामग्न हो गयी। जब जागी तब उसने बताया "गुरुजी आये थे। बोले बाप के रहते बेटी को क्या भय। तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध अनेक काल से है। इसके उपरान्त पंखे से हवा करने लगे।" अब कन्या को बहुत राहत प्रतीत हो रही थी। उसे अत्यन्त द्रुतगति से लाभ होने लगा। अतः हीरालाल त्रिवेदी काशी आश्रम में दर्शन करने के लिए आये थे।

❑ ❑ ❑ ❑

मनीन्द्रनाथ गंगोपाध्याय की पत्नी कुछ कार्य से रात्रि में अपने घर की तीसरी मंजिल स्थित छत के एक पार्श्व में बने पूजागृह में गयीं। छत पर कोई नहीं था। वे भूत के भय से आक्रान्त हो गयीं। उनका शरीर काँपने लगा। हठात् देखती हैं कि सामने बाबा खड़े हैं। बाबा ने कहा "माँ! क्यों भय करती हो। यह मैं तुमको पूजा घर में पहुँचा देता हूँ।" उन्होंने उन महिला का हाथ पकड़ कर पूजा घर तक पहुँचाया और अन्तर्ध्यान हो गये।

❑ ❑ ❑ ❑

एक बार बाबा के शिष्य लीचू बाबू की पत्नी को अक्किल दाढ़ निकलने में बहुत भयंकर कष्ट हो रहा था। वेदना असह्य होने पर लीचू बाबू बाबा के पास गये। उन्होंने बाबा से वृत्तान्त कहा। बाबा ने कहा "डॉक्टर बुलाकर चीरा लगवा दो।" लीचू बाबू ने घर जाकर पत्नी को बाबा का आदेश बतलाया और कहा कि ऑफिस से लौट कर सायंकाल डॉक्टर के पास ले चलूँगा। ऑफिस से लौटकर देखते हैं कि पत्नी पूर्णतः स्वस्थ हैं। सुना कि दाँत की पीड़ा में असह्य यन्त्रणा के कारण कमरा बन्द करके पड़ी थीं। हठात् सामने बाबा खड़े दीखे। उन्होंने कहा, "क्यों माँ! बड़ा कष्ट हो रहा है। अच्छा देखता हूँ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह कहकर उनकी दाढ़ को अपनी उँगली से कुछ घिस दिया, तभी वे (लीचू बाबू की पत्नी) घोर निद्रा में मग्न हो गयीं। कुछ समय के अनन्तर आँखें खुलने पर सोचा कि बाबा का हाथ धुलवा दूँ। परन्तु बाबा वहाँ कहाँ? कमरा तो पहले से ही भीतर से बन्द था।

लीचू बाबू वृत्तान्त सुनकर बाबा के पास आश्रम आये। बाबा ने पूछा ''बहू माँ कैसी हैं?''

लीचू बाबू—''बाबा, आपने स्वयं जाकर ठीक किया।''

बाबा—''बेटी ने बहुत पुकारा जो था।''

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

अध्यात्म, योग, तंत्र, धर्म, दर्शन, संस्कृति विषयक प्रमुख ग्रन्थ

जपसूत्रम् (प्रथम व द्वितीय खण्ड)	स्वामी श्री प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती
वेद व विज्ञान	स्वामी श्री प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती
वेदान्त और आइन्सटीन	अनिल भटनागर
सृष्टि-तत्त्व तथा राजा एवं प्रजा	भार्गव शिवरामकिंकर योगत्रयानन्द
परलोक तत्त्व	भार्गव शिवरामकिंकर योगत्रयानन्द
मानव-तत्त्व तथा वर्ण विवेक	भार्गव शिवरामकिंकर योगत्रयानन्द
योग वासिष्ठ की सात कहानियाँ	भरत झुनझुनवाला
कुण्डलिनी शक्तियोग तथा समाधि एवं मोक्ष	डॉ० दिनेशकुमार अग्रवाल
साधना और सिद्धि (योग से आरोग्य)	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
बृहत श्लोक संग्रह (सर्वधर्म सार)	प्रो० कल्याणमल लोढ़ा
हिन्दी ज्ञानेश्वरी	अनु० : ना०वि० सप्रे
श्रीमद् एकनाथी भागवत	अनु० : ना०वि० सप्रे
तुकाराम गाथा (संतश्रेष्ठ तुकाराम के चुने हुए अभंगों का भावानुवाद)	अनु०: ना०वि० सप्रे
मनीषी की लोकयात्रा (पं०गोपीनाथ कविराज का जीवन-दर्शन)	डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह
सूर्य विज्ञान प्रणेता योगिराजाधिराज स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव : जीवन और दर्शन	नन्दलाल गुप्त
योगिराजाधिराज श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस	अक्षयकुमारदत्त गुप्त कविरत्न
योगिराज विशुद्धानन्द प्रसंग तथा तत्त्व कथा	पं० गोपीनाथ कविराज
स्वर से समाधि	स्वामी कृष्णानन्दजी 'महाराज'
यंत्र-मंत्र रहस्य	स्वामी कृष्णानन्दजी 'महाराज'
गुप्त भारत की खोज	पाल ब्रंटन

म०म०पं०गोपीनाथ कविराज की अध्यात्मपरक कृतियाँ

भारतीय धर्म साधना * क्रम-साधना * अखण्ड महायोग * श्री साधना
श्री कृष्ण प्रसंग * शक्ति का जागरण और कुण्डलिनी * तत्त्वजिज्ञासा
सनातन-साधना की गुप्तधारा * साधु दर्शन एवं सत्प्रसंग (भाग 1-2, 3 व 4)
ज्ञानगंज * प्रज्ञान तथा क्रमपथ * परातंत्र साधना पथ * तत्त्वानुभूति * दीक्षा
साधन पथ * योग-तन्त्र साधना * रहस्यमय सिद्धभूमि तथा सूर्यविज्ञान

₹ 90.00
ISBN:978-81-7124-776-9
9 788171 247769

विश्वविद्यालय प्रकाशन
पो०बॉ० 1149, विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
e-mail : sales@vvpbooks.com

www.vvpbooks.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi